☐ अखण्ड सौभाग्यं

☐ व्याख्याता
आचार्य श्री नानेश

☐ सम्पादक
शान्तिचन्द्र मेहता

☐ प्रथम संस्करण १९८७/११०० प्रतियां
द्वितीय संस्करण जुलाई १९९८/११०० प्रतियां

☐ अर्थ सहयोगी
सोहनलाल कमलचन्द सिपानी, बैंगलोर

☐ मूल्य : 13) रु.
☐ (सिपानी परिवार के अर्थ सौजन्य से रियायती मूल्य)

☐ प्रकाशक
श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
बीकानेर—३३४००५

☐ मुद्रक
जैन आर्ट प्रेस
समता भवन, बीकानेर

प्रकाशकीय

"अखण्ड सौभाग्य" की द्वितीयावृत्ति श्रद्धालुजनों, आत्म रसिकों एवं सामान्य पाठकों के हाथों प्रस्तुत करते हुए असीम प्रसन्नता की अनुभूति हो रही है। आचार्य श्री नानेश की इस औपन्यासिक कृति की लोकप्रियता इसी से स्वयं सिद्ध है कि प्रथमावृत्ति के अप्राप्य होने पर इसका श्रमणोपासक में धारावाहिक प्रकाशन प्रारम्भ किया गया। फिर भी इसकी मांग मे निरन्तर अभिवृद्धि होती रही।

इसकी प्रथम आवृत्ति का प्रकाशन आचार्य भगवन् के आचार्य पदारोहण के रजत जयन्ती वर्ष (२५वें) के उपलक्ष्य मे ग्यारह वर्ष पूर्व हुआ था। आचार्य श्री के प्रवचनों के आधार पर श्री शान्तिचन्द्र जी मेहता द्वारा सम्पादित यह कृति श्री गणेश जैन ज्ञान भण्डार मे सुरक्षित थी, जिसे प्राप्त कर प्रकाशित किया गया। ज्ञातव्य है कि श्री गणेश जैन ज्ञान भण्डार, रतलाम की स्थापना श्री अखिल भारत-वर्षीय साधुमार्गी जैन संघ द्वारा शान्त क्रांति के अग्रदूत श्रीमद् गणेशा-चार्य की स्मृति में की गई। इसमें हजारो प्रकाशित एवं हस्तलिखित ग्रन्थ संगृहीत हैं। हस्तलिखित अप्रकाशित ग्रन्थों को ज्ञान भण्डार से प्राप्त कर अ. भा. साधुमार्गी जैन साहित्य समिति सर्व जन हितार्थ प्रकाशित कराती है।

उल्लेखनीय है कि श्रमण सस्कृति की पावन धारा को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए समय-२ पर अनेक दिग्गज एवं प्रभावक आचार्यों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। इनमे हुक्मेश संघ के आद्याचार्य क्रियोद्धारक श्री हुक्मीचन्द जी म. सा. का नाम विशिष्ट है, जिन्होंने तत्कालीन शिथिलता, धार्मिक जड़ता एवं आडम्बर का उन्मूलन कर उत्कृष्ट संयम साधना, साध्वाचार तथा धर्म दृढ़ता को प्रतिस्थापित किया। आपने श्रुतनिधि का गहन अध्ययन कर अपनी कालजयी वाणी में जो प्रवचन दिये वे भारतीय सन्त परम्परा के प्रवचन साहित्य की अमूल्य निधि हैं। आपने मुमुक्षु आत्माओं को दीक्षा प्रदान की और श्रद्धानिष्ठ भाई - बहिनों को देश व्रती बनाकर जिस चतुर्विध संघ को प्रवर्तित किया वह साधुमार्ग मे मील का पत्थर बनी और उसकी पृथक् पहचान हो गई। इसे पश्चात्वर्ती

आचार्यों ने निरन्तर आगे बढ़ाया तथा यह संघ सम्यक् साध्वाचार का प्रतीक बन गया ।

हुक्मेश संघ के अष्टमाचार्य वर्तमान शासन नायक समता विभूति, समीक्षण ध्यानयोगी, जिनशासन प्रद्योतक, धर्मपाल प्रतिबोधक विद्वद् शिरोमणि, चारित्र चूड़ामणि, परम पूज्य, प्रातः स्मरणीय, श्रद्धास्पद श्री नानालाल जी म. सा. के नेतृत्व में अभूतपूर्व विकास व क्रान्ति हुई है । आपने एक ओर रत्नत्रय की साधना से साधुमार्गी श्रमण संघ का निरन्तर विकास किया और अब तक ३४० मुमुक्षु भाई-बहिनों को महाव्रतो के राजमार्ग में अग्रसर किया है तो दूसरी ओर विपुल साहित्य-सृजन कर जन-जन को संस्कार धारा से जोड़ा है । आपने लाखो धर्मपालों को प्रतिबोधित कर व्यसन मुक्त जीवन का मार्ग प्रशस्त किया और सामाजिक क्रान्ति के इतिहास मे नया अध्याय जोड़ा है तो विश्व शांति व तनाव मुक्त जीवन जीने हेतु समता दर्शन एवं समीक्षण ध्यान का चिन्तन-नवनीत भी प्रदान किया ।

आचार्य श्री नानेश के प्रवचन चिन्तन प्रधान है फिर भी अनेक बार आप प्रवचनों के दौरान किसी प्रेरक आख्यान को धारा-वाहिक रूप मे भी फरमाते हैं । इससे श्रोताओं में उत्सुकता बनी रहती है और कथानक के चरित्रो के माध्यम से जीवन को [illegible] मूल्यों, शास्त्रीय सूक्ष्म ज्ञान व सम्यक् ज्ञान-दर्शन-चारित्र का नि[illegible]पण भी सरलता, सरसता व रोचकता से हो जाता है ।

"अखण्ड सौभाग्य" इस दृष्टि से विशिष्ट उपन्यास है, जि[illegible] महाराजा चन्द्रसेन, उनकी पटरानी और युवराज आनन्दसेन के मा[illegible] से समतामय जीवन-साधना और आदर्श नृपति के कर्त्तव्यों का प्र[illegible] पूर्ण चित्रण किया गया है । विद्याधर पुत्री विश्व सुन्दरी की प्रा[illegible] महाराजा चन्द्रसेन का उससे विवाह, सलखू नाइन के सहयोग से [illegible] सुन्दरी और उसके अंगजात आनन्दसेन के विरूद्ध रानियों द्वारा प्र[illegible] घातक षडयन्त्र, फक्कड़ बाबा ब्रह्मानन्द द्वारा रक्षा, आनन्दसेन [illegible] चम्पकमाला का अपने माता-पिता से मिलन तथा अन्ततः आर्य [illegible] सेन से उद्बोधित होकर मुमुक्षु आत्माओं का संयम धारण के [illegible] न केवल कौतूहल-वर्धक हैं वरन् सामायिक की समता-भावना, [illegible]

कार महामंत्र की महत्ता और तपाराधना की गरिमा के जीवन्त प्रतीक भी। स्थान-स्थान पर इस सत्य को रेखांकित किया गया है कि जहां समता व आस्था है, सत्य व शील है, विनय व क्षमा है, पवित्रता व सहनशीलता है, वहां अखण्ड सौभाग्य है। यही उपन्यास के नाम की सार्थकता है और इसकी सफल सिद्धि भी।

प्रस्तुत आवृत्ति का प्रकाशन श्री सोहनलाल जी कमलचन्दजी सिपानी, बेंगलोर (मूल निवासी उदयरामसर) के अर्थ सौजन्य से हो रहा है अतः सघ उनके प्रति साधुवाद व आभार ज्ञापित करता है।

उपन्यास के सम्पादन हेतु श्री शान्तिचन्द्र जी मेहता व प्रूफ-संशोधन तथा प्रस्तुति में अमूल्य सहयोगार्थ श्री उदय नागोरी के भी हम आभारी हैं।

श्री जैन आर्ट प्रेस के व्यवस्थापक श्री राजेन्द्र रामपुरिया व सम्बद्ध कर्मचारी भी धन्यवाद के पात्र है।

पूरा विश्वास है कि पाठक प्रस्तुत आख्यान मे निहित दार्शनिक/शास्त्रीय/सैद्धान्तिक तत्त्वों को आत्मसात कर लाभान्वित होगे।

भवदीय

गुमानमल चोरड़िया	सागरमल चपलोत	इन्द्रचन्द बैद
अध्यक्ष/संयोजक	महामन्त्री	सह-संयोजक

भंवरलाल कोठारी   चम्पालाल डागा
उपाध्यक्ष

सरदारमल कांकरिया   केशरीचन्द सेठिया   मोहनलाल मूथा
नेमीचन्द तातेड़   कमल सिपानी   सायरचन्द छल्लानी
डॉ. संजीव भानावत

सदस्यगण, साहित्य समिति, श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ

अर्थ सहयोगी परिचय

प्रस्तुति कृति अखण्ड सौभाग्य की द्वितीय आवृत्ति का प्रकाशन स्व. सेठ भैरूंदान जी सिपानी एवं श्रीमती धन्नी देवी की स्मृति में उनके आत्मज श्री सोहनलाल जी एवं पौत्र श्री कमलचन्द जी के अर्थ सौजन्य से हुआ। गुरु निष्ठा, धर्म परायणता, शासन समर्पणा एवं समाज सेवा में वेजोड़ पिता–पुत्र की जोड़ी पर बीकानेर, श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ ही नही, समग्र जैन समाज गौरवान्वित है।

श्री भैरूंदान जी सिपानी मूलत: बीकानेर जिलान्तर्गत उदयरामसर ग्राम के निवासी थे। आप स्कूली शिक्षा अधिक प्राप्त नहीं कर सके परन्तु अपनी श्रमनिष्ठा, लगन, अनुपम प्रतिमा एवं व्यावसायिक कुशलता से आपने अर्थोपार्जन तो किया ही, धार्मिक/सामाजिक कार्यो में अग्रणी रहकर मुक्त हस्त से दान भी किया। आपकी धर्मपत्नी की कुक्षि से पुत्र–त्रय (सर्व श्री सोहनलाल जी, गोकलचन्द जी एवं रिधकरण जी) व पुत्री–द्वय (श्रीमती छगनी देवी दस्सानी व मोहनी देवी लूणिया) का जन्म हुआ, जिन्हें धर्मनिष्ठा तथा सेवा के संस्कार मातुश्री एवं संघ/शासन निष्ठा तथा जनकल्याण के संस्कार पितृश्री से मिले।

श्री भैरूंदान जी ने सर्वप्रथम कलकत्ता में स्लेट का व्यवसाय प्रारम्भ किया और तदनन्तर आन्ध्र प्रदेश के मारकापुर कस्बे मे विस्तार कर स्लेट वनाने का कारखाना स्थापित किया। साथ ही हसन तथा चिकमंगलूर मे लकड़ी का कारखाना भी खोला। आपने दिन-व-दिन साफल्य के सोपान तय किये और कुछ वर्षों में अपनी प्रामाणिकता व ईमानदारी में अपना पृथक् स्थान बना लिया। आपकी धार्मिक/सामाजिक प्रवृत्तियो मे भी विशिष्ट रुचि रही। आप आजीवन समाज उन्नयन हेतु सजग, सचेष्ठ व तत्पर रहे।

श्री सोहनलाल जी आपके ज्येष्ठ पुत्र हैं, जिनका जन्म वि. सं. १९८५ मिगसर सुदी ५ को उदयरामसर में हुआ। आपका पाणिग्रहण गंगाशहर निवासी स्व. श्री चांदमल जी डागा की सुपुत्री श्रीमती जेठी देवी के साथ हुआ।

चूंकि आपको व्यावसायिक कुशलता व धर्मपरायणता के सस्कार अपने पूर्वजों से मिले थे आपने व्यवसाय मे प्रविष्ट होते ही उद्योगो का उल्लेखनीय विस्तार किया। बेंगलोर मे वर्तमान मे H.P.D. की चार फैक्ट्रियां व एक प्लास्टिक की बोतल बनाने तथा लकड़ी का कारखाना कार्यरत है। सम्पूर्ण व्यवसाय सिपानी ग्रुप ऑफ इन्डस्ट्रीज के नाम से सुख्यात है।

व्यवसाय सचालन के साथ आप अनेक सामाजिक/धार्मिक/शैक्षणिक/सास्कृतिक संस्थानो मे सम्बद्ध रहकर अनुपम सेवा कार्य कर रहे हैं। सम्प्रति आप मुख्यत: निम्नांकित सस्थानो के पदाधिकारी हैं–

१. श्री साधुमार्गी जैन संघ, बेंगलोर—अध्यक्ष
२. एस. एम. जैन श्रावक संघ विल्सनगार्डन, बेंगलोर—अध्यक्ष
३. आगम अहिसा, समता एवं प्राकृत संस्थान, उदयपुर—अध्यक्ष
४. श्री सुरेन्द्र कुमार साड शिक्षा सोसायटी, नोखा—अध्यक्ष
५. श्री जैन शिक्षा समिति, बेंगलोर—अध्यक्ष
६. बीकानेरी समुदाय, बेंगलोर—अध्यक्ष

आप संघ के सर्वतोमुखी विकास हेतु सदैव प्रयासरत रहे व हैं। सामाजिक/धार्मिक कार्यो हेतु आप उदारता पूर्वक तहेदिल से सहयोग प्रदान करते है। आपने बेंगलोर में सिपानी समता भवन का निर्माण भी कराया है। जनकल्याण के कार्यो हेतु भी आपका उल्लेनीय योगदान रहा है। अपनी जन्म भूमि के विकासार्थ आप अनवरत सहयोग प्रदान करते हैं। उदयरामसर के अभावग्रस्त छात्रों की पढ़ाई-लिखाई व रोगग्रस्त व्यक्तियो की चिकित्सा हेतु सहयोग के लिये आप सदैव तत्पर रहते है।

आपके चार पुत्र (सर्व श्री सुन्दरलाल, राजकुमार, कमलचन्द व विमलचन्द) है एवं पुत्री–श्रीमती सरला देवी बेताला है। सभी सुशील, विनयवान एव संघनिष्ठ है। आपके हर कार्य में उनका सहयोग/योगदान रहता है।

श्री कमलचन्द सिपानी आपके तृतीय पुत्र हैं। इनका जन्म सं. २००९ मिती वैशाख शुक्ला २ तदनुसार २६ अप्रेल १९५२ को गंगाशहर मे हुआ। आपका पाणिग्रहण भीनासर निवासी श्री बालचन्दजी सेठिया की आत्मजा विमलादेवी के साथ हुआ है। आप

धार्मिक संस्कारों से ओतप्रोत, सामाजिक कार्यों के प्रति समर्पित एवं गुरु भगवन्त-द्वय के प्रति अटूट आस्थावान युवक है तथा श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ के उत्साही कार्यकर्ता। व्यावसायिक कुशलता के साथ सामाजिक/धार्मिक के प्रति निष्ठा भाव होना विरासत मे प्राप्त सस्कारों का सुफल ही है। आचार्य भगवन् का साहित्य अविलम्ब व अधिकाधिक प्रकाशित हो यही आपकी भावना है। संघ श्रीमान् सोहनलाल जी एवं श्री कमलचन्द जी सिपानी के प्रति आभार ज्ञापित करता है।

सम्प्रति श्री कमलचन्द जी निम्नांकित संस्थानों के पदाधिकारी है और इनके उन्नयन हेतु सतत प्रयासरत भी—

१. श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ—मंत्री एवं सदस्य—साहित्य समिति
२. समता युवा संघ, बैंगलोर—अध्यक्ष
३. राजस्थान यूथ एसोसिएशन बैंगलोर—उपाध्यक्ष

पूरा विश्वास है कि संघ को सिपानी परिवार से साहित्य प्रकाशन में सहयोग मिलता रहेगा।

प्रस्तोता—उदय नागोरी, बीकानेर

: १ :
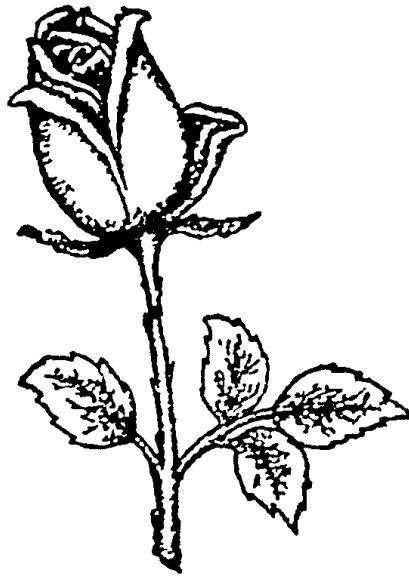
ऐतिहासिक चम्पा नगरी के राज्य वैभव का वर्णन इतिहास के पृष्ठो मे अंकित है। महाराजा दधिवाहन इसी नगरी में हुए तो इसी नगरी मे सती चन्दनवाला का जन्म भी हुआ। कई प्रकार के स्वभाव वाले राजा होते हैं, किन्तु चम्पा नगरी के राजा अधिकांशत: समता भाव वाले हुए तथा वे राज्य लिप्सा से दूर जनहित के प्रति निष्ठावान रहे। राजा दधिवाहन का स्वभाव भी समता से ओतप्रोत था। जब उनका शत्रु आक्रान्ता बनकर उनके राज्य पर चढ़ आया, उस समय उन्होने ऐसा आदर्श प्रसंग उपस्थित किया कि सब कुछ सुखद बन गया।

इसी परम्परा मे सम्राट् चन्द्रसेन हुए। वे राजनीति मे निपुण थे किन्तु धर्मनीति मे वांछित रूप से निपुण नही थे। गृहस्थाश्रम मे रहते हुए मनुष्य अपने मन मे कई प्रकार की कामनाए करता है और उनकी पूर्ति की चिन्ता मे लगा रहता है। चन्द्रसेन भी ऐसी ही एक कामना से ग्रसित थे। उनके कोई सन्तान नही थी—इस कारण वे सोचते रहते थे कि जिस प्रकार मेरे पिता ने मुझे राज्य सौंपा, उसी प्रकार मैं भी अपने पुत्र को अपने राज्य का उत्तराधिकारी बनाऊं, अत: सन्तान की नितान्त आवश्यकता है। यह चिन्ता चन्द्रसेन के मन मे निरन्तर लगी रहती थी, किन्तु चाह से ही सन्तान हो जाय—ऐसा नही है। जब विवाह किये काफी समय गुजर गया और सन्तान की प्राप्ति नही हुई तब चन्द्रसेन का मन अधिकतर खिन्न रहने लगा।

चन्द्रसेन तब यह सोचने लगे कि संतान प्राप्ति के लिए क्या किया जाय? जिस व्यक्ति को जितना ज्ञान होता है, उसी के अनुरूप वह चिन्तन करता है। उनके मन मे विचार उठा कि शायद मेरे ऊपर देवी-देवताओ का प्रकोप है जिसके कारण ही सतान लाभ नही हो रहा है। यह सोचकर वे देवी-देवताओं की मनौतियां मांगने लगे।

यह सोचने की बात है कि क्या देवी—देवता किसी को कुछ

दे सकते हैं ? यदि ऐसा हो सकता हो तो कर्म सिद्धांत ही विफल हो जाय । व्यक्ति जैसे कर्म करता है, वैसा ही फल उसे मिलता है। ऐसा नहीं होता कि कर्म करे कोई और फल भोगे कोई । अच्छे और बुरे कर्म करने वाले को ही उनका अच्छा या बुरा फल भोगना पड़ता है। तब तक चन्द्रसेन सन्तो को संगत में नही गये थे और न ही वीतराग वाणी सुनने का प्रसंग आया था, अतः वे इधर-उधर मिन्नते करते हुए भटकने लगे ।

कई बार बहिनों में पुरुषो की अपेक्षा भी अधिक जागृति होती है । महाराजा चन्द्रसेन की महारानी भी उनसे अधिक ज्ञानवंती एवं समतावती थी । वह नियमित रूप से सत्संग मे पहुंचा करती थी, सामायिक का विधि-विधान जानती थी एवं कर्म बंधन की प्रक्रिया में भी विश्वास रखती थी कि मनुष्य जैसा कर्म करता है, वैसा ही उसको फल मिलता है ।

इस रूप में महारानी का व्यवहार चन्द्रसेन के लिए हितकर थी किन्तु चन्द्रसेन को धर्मनीति तथा सत्संग के विषय में समुचित ज्ञान नहीं था । इस कारण महारानी के सद्व्यवहार के बावजूद भी वे महारानी की भर्त्सना करते रहते कि तुम कैसी आई हो कि मेरे आंगन में संतान तक नही आ सकी । मेरे उत्तराधिकारी नही होगा तो मेरे राज्य का क्या होगा ? महारानी तो समता भाव लेकर चलती थी अतः वह उत्तर देती कि आप संतान न होने का जो दोषारोपण मुझ पर करते है, वह योग्य नहीं है । आप संतान की प्राप्ति के लिए देवी-देवताओं की मनौतियां करते है—वह रास्ता भी गलत है । इस तरह आप अपनी आत्मा को विषम बना रहे है। देवी-देवताओं की मनौतियों से संतान नहीं होगी ।

ऐसी बात सुनकर चन्द्रसेन रुष्ट हो जाते और क्रोध पूर्वक पूछते कि तब संतान कैसे होगी ? महारानी फिर समझाती कि जैसे कर्म होते है, वैसा फल मिलता है । अतः समभाव में रहिये और वीतराग वाणी का श्रवण कीजिये । लेकिन महाराजा को महारानी के ऐसे उत्तर से संतोष नही होता । उस दशा में वे भाग्य को कोसने लगते ।

अधिकांश मानव भाग्य को लेकर विक्षुब्ध होते है लेकिन

वे नहीं जानते कि भाग्य आखिर होता क्या है ? भाग्य के भरोसे बैठे रहने वाले लोगों को पुरुषार्थी नही माना जाता है और हकीकत में भाग्य अपने ही द्वारा पूर्व जन्म मे किये हुए कर्मों के अलावा और कुछ नही होता जिनका फल इस जन्म मे प्रकट होता है । इसी प्रकार इस जन्म मे जैसे कर्म किये जाते है, वे ही फल की दृष्टि से अगले जन्म का भाग्य बन जाते हैं । संतान नहीं होती है तो इसे कर्म का फल मानिये अथवा यह भी हो सकता है कि पुरुष या स्त्री मे किसी तरह की शारीरिक कमी हो । किन्तु इस प्रकार के विचारवान महाराजा चन्द्रसेन नही थे । वे अक्सर महारानी पर उत्तेजित हो जाया करते थे और जब महारानी धर्माचरण की बात कहती तो वे झिडक देते कि मुझे धर्म नही, सतान चाहिए ।

महाराजा के अधिक उत्तेजित हो जाने पर एक दिन महारानी ने कह दिया कि संतान प्राप्ति के सम्बन्ध में यदि उन्हे मुझ से संतोष नही है तो वे दूसरा विवाह कर सकते हैं, उसे कोई आपत्ति नहीं होगी । महारानी जैसी समभाव मे रहने वाली महिला ही ऐसी अनुमति दे सकती थी और महाराजा को ज्योही ऐसी अनुमति मिली तो उन्होने दूसरा विवाह करने का निश्चय कर लिया ।

संयोग की बात है कि महाराजा का दूसरा विवाह भी जल्दी ही हो गया, किन्तु दूसरे विवाह से भी उन्हे संतान की प्राप्ति नहीं हुई । महाराजा को तब तो यह स्थिति शूल की तरह चुभने लगी और वे नई महारानी को भी उल-जलूल बाते कहने लगे । आखिर नई महारानी भी क्या करती ? वह रोज उदास रहने लगी । उस समय मे बडी महारानी ने उसे स्नेह पूर्वक सांत्वना दी कि चूंकि महाराज को सत्य सिद्धातों का ज्ञान नही है अत: ऐसी बाते करते है किन्तु तुम घबराओ मत और समभाव के साथ रहने की कला सीखो । जैसे मैंने महाराजा को दूसरा विवाह करने की अनुमति दे दी थी, वैसे ही तुम भी उन्हे तीसरा विवाह करने की अनुमति दे दो । फिर जिस समभाव से मैं आनन्दमय जीवन बिता रही हूं, उसी तरह तुम भी आनन्दमय जीवन बिताओ । पहले तो भीतरी कमजोरी के कारण नई महारानी कुछ ऊंची-नीची हुई लेकिन गहराई से समझ पकडने के बाद उसे बड़ी महारानी की राय पसन्द आ गई ।

जब चन्द्रसेन संतान न होने के कारण नई महारानी की भी उत्तेजनापूर्ण भर्त्सना करने लगे तो एक दिन उसने उन्हे तीसरा विवाह करने की अनुमति दे दी। महाराजा भी संतान के लिये पागल से हो रहे थे, उन्होंने तब तीसरा विवाह भी कर लिया किन्तु दुर्योग की बात कि फिर भी उनके संतान नहीं हुई। इस प्रकार महाराजा चन्द्रसेन ने लगातार बारह विवाह किये, फिर भी उन्हे सन्तान प्राप्त नहीं हुई।

किन्तु बड़ी महारानी के समतामय जीवन एवं व्यवहार का ऐसा सुप्रभाव पड़ा कि आपस में सौते होते हुए भी बारहो महारानियां परस्पर पूर्ण प्रेमभाव से रहने लगी। उनके आपस मे कभी भी कोई क्लेशपूर्ण परिस्थिति उत्पन्न नही होती थी।

कई व्यक्ति सोचते है कि हमारे जो सन्तान होगी, उसे ही अपना उत्तराधिकारी बनायेगे, किन्तु यह कल्पना मिथ्या है। राजा का बेटा ही राजा बने—यह कोई आवश्यक नही है। योग्य व्यक्ति जनता में से भी आकर उत्तराधिकारी बन सकता है। ऐसी कई ऐतिहासिक घटनाएं भी हैं। किन्तु यह सिद्धान्त महाराजा चन्द्रसेन की समझ में नहीं आ रहा था। सासारिक कामनाओं के माध्यम से विषमता में पड़ जाना तो आसान होता है लेकिन समभाव की साधना करके उस विषमता से निकल जाना आसान नही होता है। चन्द्रसेन की बड़ी महारानी समभाव साधना की विधि जानती थी। वह अपने जीवन को शल्य रहित बनाकर चल रही थी। उसकी ही समभाव साधना का असर था कि ग्यारहों छोटी महारानियां भी समभाव की साधना के कारण सुखमय जीवन व्यतीत कर रही थीं।

जब अपने रनिवास की ऐसी सुखद स्थिति और ऐसा आनन्दमय वातावरण महाराजा चन्द्रसेन के ध्यान में आया तो वे विचार में पड़ गये। वे आश्चर्य करने लगे कि मैं एक राज्य का राजा कहलाकर और सिहासन पर बैठ कर दंडादेश देते हुए भी जब राज्य की व्यवस्था करता हूं तब भी कई प्रकार की अव्यवस्थाएं तथा विषमताए पैदा हो जाती है परन्तु सौते कहलाकर भी बारहों महारानियां जिस सुख और आनन्द के साथ जीवन बिता रही हैं, उनके पीछे कौनसी शक्ति काम कर रही है? राजा के पास तो सेना होती है, शस्त्र होते

है और दंडशक्ति होती है फिर भी अशान्ति पैदा होती रहती है। इसकी अपेक्षा भी वारह पत्नियो के परिवार को संभालना ज्यादा कठिन रहता है। किन्तु चन्द्रसेन के विस्मय का पार नही था कि उसके विना सम्भाले ही उसका परिवार एकता और शान्ति के साथ कैसे चल रहा है ? तव उन्होने इसकी वारीक छानवीन करनी शुरू की।

यह वडी महारानी के समभाव का जादू था कि उस राज-परिवार की महारानिया तो ठीक लेकिन नौकर-चाकर भी सद्भाव के साथ चल रहे थे। सद्भाव से सद्भाव उत्पन्न होता है—यह वड़ी महारानी अपनी साधना के वल पर भलीभाति जानती थी। वह नौकरो को भी तुच्छ भाषा से नही, वल्कि भाई कहकर पुकारती थी और नौकरानियो को वहिन का सम्वोधन देती थी। सोचिये कि एक महारानी नौकर-नौकरानियो को भाई और वहिन कहकर पुकारे तो उनका सद्भाव क्यो नही उभर कर ऊपर आ जाए ? वे दौड़कर सेवा मे निरत रहते थे और अपने सद्भाव का सद्भाव पूर्ण प्रतिफल पाते थे। इस प्रकार उस राज परिवार मे वड़ी महारानी की प्रेरणा से स्वर्ग जैसा सुखद दृश्य वना हुआ था। वह महारानी चतुर थी। वह सोचती थी कि समभाव की सामायिक को छोटे घेरे मे वन्द नही रखना चाहिये, वल्कि उसे दूर–दूर तक वांटते रहना चाहिये। अतः वह परिवार के अलावा अन्य स्त्रियो को भी एकत्रित करती और समतामय जीवन की शिक्षा देती। वह उन्हे समझाती कि यह जीवन पत्ते पर पड़ी हुई ओस की वूद के समान है जो तव तक ही चमकती है जव तक कि हवा का झोंका उसे नीचे नही गिरा देता है। इस कारण इस जीवन की चमक को नष्ट होने से पहले ही अधिक प्रकाशमान वना लेना चाहिये। इस प्रकार वडी महारानी अपनी समता का अधिकाधिक विस्तार कर रही थी और अधिकाधिक जीवनो मे शान्ति तथा आनन्द का संचार कर रही थी।

महाराजा चन्द्रसेन ने इस सारी परिस्थिति की जानकारी ली तो वे भी इस सौम्य वातावरण मे एव वड़ी महारानी की समभाव साधना से प्रभावित हुए विना नही रह सके। उनकी तव तुरन्त ही वड़ी महारानी का सत्संग करने की इच्छा हुई। वे वहा पहुचे और पूछने लगे कि राज परिवार की ऐसी सुखद व्यवस्था का क्या रहस्य

है ? तब बड़ी महारानी ने गीत–सगीत के माध्यम से राजा की जिज्ञासा का उत्तर दिया ।

बड़ी महारानी ने महाराजा चन्द्रसेन को सामायिक के सही विधि-विधान की जानकारी दी और बताया कि विधिपूर्वक की जाने वाली सामायिक से जीवन में समता रस उतर आता है और जिसका जीवन समता रस से ओत–प्रोत बन जाता है, वह जन–मन का प्रिय तथा मंगलकारी हो जाता है । सन्त व सतियों के दर्शन को प्रियकारी तथा मंगलकारी क्यों समझा जाता है ? इसीलिये कि सन्तजन मोह, माया एवं तृष्णा का परित्याग करके समभाव की साधना में चल पड़ते हैं । इसीलिये भगवन् ने चार शरण बताये हैं—अरिहन्तों का शरण, सिद्धों का शरण, साधु का शरण एवं दया–धर्म का शरण, जिनकी शरण में पहुंचने से जीवन के सद्गुणों का संरक्षण होता है ।

महाराजा चन्द्रसेन की पटरानी भी ऐसा ही सद्गुणमय जीवन लेकर चल रही थी जिसने अपने दीपक की लौ से सारे राज-परिवार रूपी दीपकों को प्रज्वलित कर दिया था । बचा था तो एक दीपक–महाराजा स्वयं जो प्रज्वलित नहीं हुआ था लेकिन तब वे प्रज्वलित होने की दिशा में अवश्य अग्रसर होने लगे थे । वे अपनी ही पटरानी की साधना को समझने की चेष्टा कर रहे थे ।

समता की साधना करने वाला व्यक्ति दुनिया को भी समता और साधना ही सिखाता है । जो व्यक्ति विषमता के दल–दल में फंसा हुआ होता है, वह दूसरों को भी ममत्व भाव की ओर ही मोड़ता है । पटरानी होते हुए भी वह धर्ममय महिला पूरी सादगी से रहती थी, स्नेह व आदर से बोलती थी और प्रत्येक को अपने मिष्ट-व्यवहार से प्रसन्न कर देती थी । वह अपने जीवन मे राजसी पद अथवा वैभव को कोई महत्व नहीं देती थी । वह स्वयं समता रस का पान करती थी और अपने सानिध्य में आने वाले सभी को समता रस का पान कराती भी थी ।

चारों ओर समतामय जीवन के विस्तार को देखकर ही महा-राजा अपनी पटरानी के प्रति पुन. प्रभावित होने लगे । वे पटरानी से पूछना चाहते थे कि राज परिवार की व्यवस्था में इतनी सुखद

निपुणता कैसे समा गई है ? वे पटरानी से इसका रहस्य समझ कर सत्संग मे जाने का भी विचार करने लगे ।

इसकी शिक्षा जनहितकारी, लेनी है हर वार ।
कैसे आई इतनी निपुणता, पूछ रहे नर नार ॥
जनमन प्यारी, मगलकारी
समता जग मे है सुखकार ।

महाराजा सोचने लगे कि मै किसी का स्वामी हूं— यह अभिमान व्यर्थ है । मैं अपनी महारानियो का तो अपने आपको स्वामी मानता ही हू लेकिन क्या यह भी सच है ? असली स्वामिनी तो बड़ी महारानी हैं जिसने अपने आदर्श जीवन से सवका आध्यात्मिक एवं मानसिक रूपान्तरण कर दिया है—ऐसा रूपान्तरण जो वड़ा कठिन होता है । स्त्रिया स्वभाव से ही राग-रंग की प्रेमी होती हैं तथा सौन्दर्य प्रसाधनो के प्रयोग को चाहती है किन्तु वड़ी महारानी ही पूरी सादगी से नही रहती, वलिक उसने सभी पर सादगी का पवित्र रग चढा दिया है । वे गहरे विचार मे डूव गये कि जव राज-परिवार में सभी वडी महारानी का अनुसरण कर रहे है तो भला मैं ही उससे वचित क्यो रहूं ? पहले मैं उसमे यह तो पूछूं कि सवके जीवन मे यह मोड कैसे आया ?

एक दिन पुनः महाराजा अपनी वड़ी महारानी के कक्ष मे पहुंचे । महारानी ने उनका यथोचित स्वागत किया तथा उन्हे एक आसन पर विठा कर वह कुछ दूर वैठ गई । महाराजा आश्चर्य करने लगे कि वह उनसे दूर क्यो वैठी है ? कारण महारानी की नैतिकता से सम्वन्धित था । एक वार जव नाशवान पदार्थो का ममत्व छूट जाता है और ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया जाता है, तव संसर्गगत नियमो की अनुपालना भी अनिवार्य हो जाती है । महारानी भी उसी नैतिकता के पथ पर आगे वढ रही थी । महाराजा इस कारण को नही समझ पाये और विचार करने लगे कि जव ये महारानी को विवाह कर लाये थे तव उसकी मेरे प्रति दृष्टि और ही थी और आज वह दृष्टि और ही दिखाई दे रही है—ऐसा क्यो है ? इस महिला मे इतना ज्ञान, इतनी चतुराई और इतनी आत्मशक्ति कहा से आ गई है ?

महाराजा ने विस्मय के साथ प्रश्न किया—"महारानी जी, मैं क्या कहूं ? महारानी जी शब्द भी कहना मुझे अच्छा नही लगता है क्योंकि आज मुझे समझ में आया है कि आप मेरे साथ उस रूप में सम्बन्धित नही रही हैं। मै आपसे पूछना चाहता हूं कि नारी जाति की सदस्या होते हुए भी आपने अपने आपको विषय-विकारो से दूर करके समता रस मे कैसे रंग लिया है ? क्या आप मुझे इसका रहस्य समझावेंगी ? मै अव भी विषमता में झूल रहा हू, और सन्तान प्राप्ति की लालसा में दुःखी हो रहा हूं, लेकिन चाहता हूं कि मैं भी समता की दिशा मे आगे वढूं। आप सवको समता का उपदेश दे रही है तो क्या मुझे भी ऐसा उपदेश देकर कृतार्थ नही करोगी ?"

महारानी महाराजा का ऐसा कथन सुनकर मन ही मन गद्‌गद् हो उठी और हर्षातिरेक मे बोलने लगी—"स्वामी, आप यह क्या बोल रहे है ? मै तो साधारण नारी हूं। यह तो आपका वड़प्पन है जो आप आज मुझे इतना अधिक महत्त्व प्रदान कर रहे हैं। मैं सोचती हूं कि इस मनुष्य तन में रहते हुए मुझे नाशवान पदार्थों के पीछे अभिमान करने की आवश्यकता नही है। आप मुझ से प्रश्न क्यों पूछते है ? आप तो राजाओ के भी स्वामी है और मैं आपको वताऊं भी क्या ? यह समता मेरी देन नहीं, महात्माओं की देन है। इसलिये मै आपसे नम्र अनुरोध करना चाहूंगी कि आप सन्तों का सत्संग करें तथा समता के रहस्यो का ज्ञान लें। मैं सन्तो के पास जाती रहती हूं और वीतराग वाणी का श्रवण करती रहती हूं और वीतराग देवों के उपदेशो पर आचरण करके ही मनुष्य तन मे रहते हुए प्राणी सदा के लिये शान्ति प्राप्त कर सकते है।"

महाराजा ने संकल्प प्रकट किया कि अव वे सन्तो के सत्सग में अवश्य पहुंचेगे किन्तु उस समय उन्होंने महारानी से ही जीवन विकास के उपायों पर प्रकाश डालने का अनुरोध किया।

महारानी ने नम्रता से उत्तर दिया—"राजन्, इस साधना का प्रारम्भिक उपाय है विधिवत सामायिक करना। मैं प्रतिदिन विधिवत सामायिक करती हूं और आनन्द विभोर हो जाती हूं। उसके वाद मेरा मन अपार शान्ति से भर उठता है, तव मैं उस शान्ति को दूसरों में भी वांटने का पावन कार्य आरम्भ कर देती हूं।"

परम स्फूर्तिदायक उत्साह से परिपूरित होकर महारानी अपनी समभाव साधना का विस्तार से विश्लेषण करने लगी—' जब आन्त-रिक शान्ति के प्रभाव से मस्तिष्क शान्त होता है, तभी मनुष्य प्रियकारी, मंगलकारी तथा लोक हितकारी बातें सोचता है और उन पर दृढ़तापूर्वक आचरण करने के लिये कटिबद्ध हो जाता है । उस समय उसका मस्तिष्क कषाय तथा विषय-विकार की ओछी एवं स्वार्थी बातो से ग्रस्त भी नही होता है । किन्तु जब भीतर मे शान्ति नही होती तो बाहर भी शान्ति नही रहती है और अशान्त मस्तिष्क जल्दी ही कषाय तथा विषय–विकार के लपेटे मे आ जाता है । रावण सरीख तीन खण्ड के अधिपति का भी जब मस्तिष्क विकृत हो गया तो वह सीता जैसी पवित्र नारी को हर कर ले गया । अतः राजन् भीतर मे शान्ति की मौजूदगी बहुत जरूरी है और वह सामायिक की साधना से ही प्राप्त हो सकती है । यही नही, मनुष्य के प्रत्येक कार्य तथा समाज के प्रत्येक क्षेत्र मे शान्ति की परम आव-श्यकता होती है । आप सम्राट है और यदि आप अशान्त रहते है तो क्या राज्य व्यवस्था सुचारू रूप मे संचालित की जा सकती है ? इसलिये आप प्रतिदिन कुछ समय निकाल कर सामायिक की साधना आरम्भ कर दीजिये और सन्तो का सत्संग भी कीजिये, फिर देखिये कि आपके जीवन मे कितनी परम शान्ति और कितना दिव्य आनन्द पैदा हो जाता है ।"

महाराजा ने महारानी का उपदेश बहुत ही ध्यान से सुना और वे मन ही मन संकल्प लेने लगे कि वे अब सामायिक की साधना के लिये अवश्य समय निकालेगे, सन्तो की संगत भी करेगे तथा अपने जीवन का भी श्रेष्ठ रूपान्तरण होने देगे । नये संकल्प के साथ गंभीर बनते हुए महाराजा ने महारानी से कहा कि ऐसा उपदेश पहले क्यो नही सुनाया ताकि वे अपने जीवन मे पहले ही परिवर्तन ले आते । महारानी ने कहा कि अवसर आने पर ही कोई भी कार्य सम्पन्न होता है ।

महाराजा के विचार बदले तो उनके जीवन मे बहुत बड़ा परिवर्तन आ गया । पहले वे सन्तान के अभाव मे भाग्य को दोष देते अथवा देवी-देवताओ की मनौतियां मनाते या महारानियों पर

अपनी उत्तेजना बरसाते । परन्तु अब वे सोचने लगे कि भाग्य तो मेरे अपने ही हाथ का खिलौना है—मै अपने भाग्य को जैसा बनाऊंगा वैसा ही वह बनेगा । वास्तव मे जब दृष्टि बदल जाती है तो उसके लिये सारी सृष्टि भी बदल जाती है । संसार में कोई भी व्यक्ति सभी को सन्तुष्ट नहीं कर सकता, किन्तु दृष्टि बदल कर अपने मन को तो शान्ति से ओतप्रोत बना ही सकता है । अशान्ति सर्वत्र दुःख पैदा करती है तो शान्ति सुख ही सुख ।

महाराजा चन्द्रसेन ने तब निश्चय किया कि अब वे महारानी के उपदेश के अनुसार ही चलेंगे तथा उसके सम्बन्ध मे कोई कुछ भी कहे तब भी उस पर वे कोई ध्यान नही देंगे । वे बार-बार चितन करने लगे—"मैं अजर अमर चैतन्य देव का ध्यान करूंगा । मैं अपने भाग्य का स्वयं निर्माता बनूंगा । अब मेरी दृष्टि बदल गई है तो अपनी सारी सृष्टि को भी समता रस का पान कराऊंगा । सत्संग करके अपने जीवन मे श्रेष्ठ परिवर्तन लाऊंगा । ऐसा करके मैं अपनी प्रजा के समीप जाने का प्रयास करूंगा और उसके दुःख हरूंगा ताकि प्रजा का प्यार मुझे मिले । अपने आत्मीय भावो से समग्र जनता की सेवा करूंगा । अपने सम्पूर्ण राजसी अभिमान को त्याग कर छोटे से छोटे प्रजाजन के साथ भी मैं एकमेक हो जाऊंगा । अपने जीवन को समर्पित कर दूंगा·· ··"

इस चिन्तन के साथ ही एक नया परिवर्तन महाराजा के अन्तर्मन मे जाग उठा ।

आज के युग में भी क्या राज चलाने वालो का मन कभी जागता है ? पुराने जमाने मे जब राजा लोग थे तब तो यह कहा जाता था कि राजा लोग प्रजा के साथ अन्याय व अत्याचार कर रहे है, लेकिन आज क्या वस्तुस्थिति चल रही है ? इसके बारे में मैं क्या कहूं ? क्या आज के शासक सम्राट् चन्द्रसेन की तरह परिवर्तित हो सकते है अथवा वे राजमद मे चूर कर ही चल सकते है ? जनता जैसी है, वैसी ही रहे लेकिन हमारा सिंहासन सुरक्षित रहना चाहिये—क्या ऐसी भावना नेताओ की नही है ? क्या ये नेता दिखाने के लिए ही जनता के सुख-दु.ख की बातें नही करते है अथवा क्या उनके दिल मे सच्ची भावना भी रहती है ? किन्तु चन्द्रसेन महाराजा

अब अपना सब सुख–दु:ख भुलाकर जनता के सुख दु:ख का ही पूरा ध्यान रखने लगे।

महाराजा के इस जीवन-परिवर्तन से उनके राज्य की समग्र जनता भी प्रभावित होने लगी। जनता का विचार और जनता का चाल–चलन उसके साथ ही बदलने लगा। लोग सोचने लगे कि महाराजा पहले कैसे थे और अब ऐसा शुभ परिवर्तन कैसे आ गया है ? जनता की रुचि भी जागने लगी कि राजा की तरह ही वे भी अपने-अपने जीवन में ऐसा सुखकारी परिवर्तन लाने का प्रयास करें।

दृष्टि परिवर्तन के लिये आदर्श भी प्रकाश स्तम्भ का कार्य करता है किन्तु उसके साथ-साथ तत्त्वों तथा सिद्धान्तों का ज्ञान भी आवश्यक हो जाता है जिनको आधार बना कर लाये गये परिवर्तन को स्थायित्व दिया जा सकता है। सोचिये कि मानव तन में रहते हुए आपकी दृष्टि कैसी बने ? यदि आपकी दृष्टि शाश्वत तत्त्व की तरफ मुड जाती है तो वह नाशवान तत्त्वों की तरफ नहीं जाएगी। कारण तब सुख की अनुभूति की दिशा ही बदल जाती है। बडी महारानी ने अपनी दृष्टि बदली तो राज परिवार की दृष्टि बदली और उसने जब स्वयं महाराजा की दृष्टि बदली तो समग्र जनता की दृष्टि बदलने लगी।

❀ ❀

: २ :
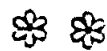
दृष्टि बदलती है तो सृष्टि बदल जाती है और विचार बद-लते है तो आचार भी बदलता है ।

महाराजा चन्द्रसेन विषमता का रूप लेकर चल रहे थे । वे सोचते थे—यह राज्य मेरा है, इसका वैभव मेरा है तथा इसका अधिकार मेरा है । ममत्व भाव उन के माथे पर छाया हुआ था । इस तथ्य का भी उनके मन मे बड़ा मोह था कि जैसे मैं सम्राट् हूं, वैसे ही मेरा पुत्र भी सम्राट् बने और इसी कारण वे सन्तान की कामना से चिन्तित रहा करते थे । ये विचार उनके मन में उस समय नही उठा करते थे कि न यह राज्य मेरा है और न यह सत्ता और सम्पत्ति मेरी है । वे यह भी नही सोचते कि यदि मेरे सन्तान नही है तो न सही—जनता मे से ही किसी योग्य व्यक्ति का चयन करके अपने राज्य की सत्ता उसी को सौंप दूंगा । उस समय तो उनकी अपने राज्य एव अपने अधिकार के प्रति गहरी आसक्ति थी ।

किन्तु पटरानी ने जब से उनका मानस बदल डाला है—वे और के और हो गये हैं । महाराजा ने सन्तों की समीपता भी प्राप्त की तथा सामायिक के स्वरूप को आन्तरिकता के साथ समझा । आज की मानसिकता मे वे सोचते कि यदि ऐसा परिवर्तन पहले आ गया होता तो वे राज्य और सन्तान की आसक्ति मे इतने लिप्त कभी नही होते । अब तो सामायिक की आराधना और समता भावना का पावन रस उनके इस अन्तःकरण मे इतना घुल गया है कि उनके इस परिवर्तन की कीर्ति राजप्रासाद और राजपरिवार तक ही सीमित नहीं रही, बल्कि समाज और राज्य की सीमाओं तक प्रसारित होने लगी ।

चन्द्रसेन सोचते कि यह परिवर्तन कितना व्यापक रूप ले रहा है ? इस सब का श्रेय बड़ी महारानी को है, जिन्होंने मेरे कोप को भी सद्भावना के साथ सहन किया और जब मुझे प्रभावित करने का अवसर आया तो उस शुभ कार्य को भी बड़ी ही निपुणता के साथ पूरा किया । महाराजा के मन में यह विचार उठा कि दृष्टि-

कोण के इस परिवर्तन को अधिकाधिक व्यापक रूप दिया जाना चाहिए ।

तब उनकी भावना दो रूपो में बहने लगी । एक तो यह कि विचारों के परिवर्तन के साथ वे अपने आचार को भी परिवर्तित करे । दूसरे, इस नये दृष्टिकोण के अनुसार ही राज्य की नीति तथा व्यवस्था मे भी परिवर्तन लाये जायें ।

भावना प्रवाहित हुई तो उसके साथ ही महाराजा की कर्मण्यता भी जागृत हो गई । सबसे पहले आचरण की दृष्टि से उन्होंने अपने जीवन मे आमूलचूल परिवर्तन कर दिया । उनके मन में तत्परता जागी कि परिवर्तन के इस योग का लाभ उठा कर अपनी शक्तियो को आत्म-शुद्धि के लिए जुटा देना चाहिए । इसलिए उन्होंने अपनी धारणाओं के आधार को ही बदल डाला । अब वे यह मानने लगे कि राज्य उनका नही है और न ही उस पर अधिकार भी उनका ही है । वे तो राज्य के एक ट्रस्टी मात्र है तथा इस दृष्टि से राज्य के हित मे वे जितना विवेक, सदाशय और श्रम लगा सकते है—लगा कर जनसेवा का उन्हें आदर्श प्रस्तुत करना चाहिए । उन्होंने संकल्प किया कि मुझे सारे कार्य नैतिकता के साथ करने चाहिए, किन्तु कोरी नैतिकता जिसके साथ लौकिकता जुडी रहती है हितावह नही हो सकती, अतः उसके साथ धार्मिकता का पुट होना चाहिये ।

महाराजा ने राज्य व्यवस्था के प्रति इस तरह एक नये दृष्टिकोण का विकास किया कि नीति केवल लौकिकता के साथ जुड़ कर प्राण विहीन न हो जाय । इसलिये नीति धर्म के साथ जुडना चाहिये । नीति और धर्म के संयोग से ही प्राणवान् क्रियाशीलता का प्रसार हो सकेगा ।

धर्म और नीति के पारस्परिक सम्बन्ध भी एक ऐसा विषय है जिस पर सभी को बारीकी से विचार करना चाहिये । नीति और धर्म को एक नही मान सकते हैं । नीति और है तो धर्म और है । सफलता के लिए दोनों का सहयोग अवश्य ही लाभकारी सिद्ध होता है ।

नीति की विवेचना करे तो उसका बहुत कुछ अर्थ लौकिकता

के रूप में लिया जाता है। इस दृष्टि से नीति का अर्थ माना जाता है लेन-देन का सम्बन्ध—इस हाथ से ले और उस हाथ से दे। आप समझते है कि मेरा पड़ौसी मेरे सुख-दुःख के समय में मेरे काम आवे तो उसके लिये आप भी पड़ौसी की आवश्यकता के समय सेवा करने की तत्परता दिखाते है। इसके साथ ही यदि आपने पड़ौसी की सेवा की और आपके वह काम नहीं आया तो आप शायद सोच लेते है कि मैं भी अब उसके काम नही आऊंगा। यह जो आदान-प्रदान का मामला है, उसे ही आप नीति कहते हैं। जब आदान-प्रदान का सम्बन्ध टूट जाता है तो दोनों पक्षों की पारस्परिक नीति भी टूट जाती है। इसका यही कारण होता है कि उस नीति के साथ धार्मिकता का पुट नही होता है। लोग जब मात्र नीति को ही धार्मिकता समझ लेते है, तब उसका परिणाम विपरीत आता है। यह कैसे होता है ?

आज दुनिया नीति और धर्म को अलग-अलग समझती है। किन्तु जहां-जहां नीति को ही धर्म समझ लिया गया है, वहां-वहा विपरीत परिणाम सामने आये हैं। बहिने कभी-कभी धार्मिकता के कारण दान करती है और मुनियों को गोचरी बेहराने को भी ये दान का ही एक रूप मानती है। वे यह भी समझती है कि यदि वे सावधानी रख कर बेहराती है तो उसका शुभ फल उन्हें मिलेगा और यदि सावधानी टूटती है तो उससे हानि होती है। साधु तो परिपूर्ण अहिंसा के व्रतधारी होते है तथा सावद्य योग के परिपूर्ण त्यागी। अब सोचे कि यदि कोई बहिन साधु को शुद्ध आहार बेहराने की बजाय उनके निमित्त से तैयार करके आहार बनावे तो उसमें धार्मिकता नही मानी जाएगी। इसका एक उदाहरण समझ ले। एक सन्त के आयंबिल था सो वैसे आहार के निमित्त वे गोचरी को गये। महाराज को आता देख बहिन जल्दी रसोईघर मे घुसी और उसने चट सारे फुलके घी से चुपड़ लिये। फिर वह महाराज को बेहराने लगी तो सन्त ने कहा कि उन्हें तो लूखा फुलका चाहिये। तब बहिन बोल उठी—मुझे लूखा फुलका भाता नही है और अगर मै आपको लूखा फुलका बेहराऊंगी तो आगे मुझे भी लूखा फुलका ही मिलेगा। अब उस बहिन के ऐसे विश्वास को क्या कहेंगे—धर्म कहेंगे या नीति कहेंगे ?

सोचें कि कोई व्यापारी व्यापार करता है। उसको कहा जाय कि मैं तुम्हे इतने रुपये देता हूं, तुम वापिस चुका देना ! यह नीति है। और यह कहा जाय कि मैं इतने रुपये दे रहा हूं, तुम मुझे अगले जन्म मे इतने ही रुपये वापिस दे देना। यह कैसा विचार है ? जहा धर्म नीति से जुड जाता है, वहा सोने मे सुहागा हो जाता है। पडौसी दूसरे पडौसी की सेवा करता है और अगर यह सोचता है कि विना किसी स्वार्थ के मैं सेवा कर रहा हू—वह मेरे दु ख-दर्द मे काम आवे या नही, मैं तो अपना धर्म समझ कर उसकी सहायता कर रहा हू तो ऐसे स्थान पर समझिये कि नीति पर धर्म का पुट लग गया है—वहा मात्र लेन–देन की भावना नही रही है। वह वहिन सन्त को गोचरी वेहराते समय यदि इतना ही सोचती कि शुद्ध आहार वेहराकार मैं इनकी सयम–साधना मे सहायता कर रही हू तो वहा नीति के साथ धर्म का जुड़ना माना जाता।

धर्म का प्राण मिल जाने से नीति जीवन्त हो जाती है। वैसी नीति आत्म-शुद्धि का कारण भी वन जाती है। मेरे कई भाई–वहिन कहना चाहते हैं कि नीति और धर्म दोनो को साथ लेकर चलें। उत्तराध्ययन सूत्र मे कहा है कि साधु ठडा और वासी आहार भी ले सकते हैं। चन्दनवाला द्वारा वेहराये गये उड़द के वाकले वापिस किस जन्म मे मिले ? वे तो उसी जन्म मे मोक्ष पधार गई। साधु के आचार मे समझौते का सवाल कभी पैदा नही होता है।

महाराजा चन्द्रसेन की भी ऐसी ही परिस्थिति थी। जव तक उनको सही दृष्टिकोण नही मिला तव तक वे अपने अशुद्ध विचारों के साथ ही चल रहे थे किन्तु जव पटरानी ने उनकी दृष्टि वदल दी तो वे धर्म और नीति का सम्यक् रूप से ताल-मेल विठाने लगे। सत् सगति से ही उनको यह दृष्टि मिली थी जिसकी उपमा चन्दन वृक्ष से दी जाती है। चन्दन का वृक्ष जो भी उसकी समीपता में आता है उसे अपनी सुगध और शीतलता प्रदान करता है। सन्तों के सान्नि-ध्य मे जाना आरम्भ करके अव महाराजा चन्द्रसेन को सत्संगति के अनूठे लाभ लेने लगे। इन अनूठे लाभो मे सवसे वड़ा लाभ था समता के समरस का स्वयं आस्वादन करना और उसका आस्वादन जो भी सम्पर्क मे आवे अथवा अपने से सम्वन्धित हो, उन सवको

कराना । महाराजा मन ममता के अनुभव से एकमेक होने लगा ।

जिन पुरुषों ने समता की साधना में प्रवेश किया है, उन पुरुषों की दृष्टि भी पूर्ण रूप से समतामयी बनी और उस समता दृष्टि के अनुरूप ही उनका समग्र व्यवहार भी ढला है । यही चन्द्रसेन के साथ भी हुआ । जब उन्होंने समता का स्वरूप नही समझा था तब तक भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के साथ भिन्न-भिन्न अवसरों पर उनका भिन्न-भिन्न व्यवहार होता था । उसके पीछे यह दृष्टि रहती थी कि जो मेरे मन के अनुकूल चलता है उसके साथ अच्छा व्यवहार किया जाय, अन्यथा मेरे प्रतिकूल चलकर कोई भी मेरे से अच्छे व्यवहार की अपेक्षा कैसे रख सकता है ? इस दृष्टि को प्रभावी बनाने के लिए उनके पास सत्ता का बल था, शक्ति और सेना का बल था। परन्तु उस दृष्टि के साथ राज्य व्यवस्था सुचारु रूप नही ले पा रही थी । इसका अनुभव उन्हे तब हुआ जब उनकी दृष्टि बदल गई—भेद की दृष्टि समता की दृष्टि बन गई । उनका व्यवहार जब समभाव पर आधारित होने लगा तो सारा वातावरण ही बदल गया ।

समता दृष्टि ने चन्द्रसेन की सम्पूर्ण राज्य व्यवस्था मे एक सुखकारी परिवर्तन ला दिया और यह परिवर्तन आया स्वयं अपनी पटरानी के समभावी जीवन को देखकर । पटरानी के पास सत्ता, शक्ति या सेना का कोई बल नही था, फिर भी वह सबसे आदर सम्मान पाती थी । यही नही, उसने राजपरिवार की व्यवस्था को जो सुचारु रूप दिया था वह अनुकरणीय था । चन्द्रसेन ने जब इस सुचारू रूप का रहस्य जान लिया तो वे भी समभाव का अभ्यास करने लगे और राज्य की सम्पूर्ण व्यवस्था तथा अपने समस्त व्यवहार को भी समता पर आधारित करने लगे । इसका वास्तव में उन्हे लाभ मिलने लगा । पहले जहां उनकी सैन्य बल के आधार पर दूसरों को अत्याचार और परतन्त्रता देकर अपने राज्य का विस्तार करने की दुरिच्छा रहती थी, वह अब नही रही । वे अब स्नेह, मित्रता और सद्भाव मे विश्वास करने लगे । समता की दृष्टि ने ही उनकी ममता को भी समाप्त कर दिया अत: अब वैभव संचय की उनकी लालसा नही रही । अब तो उनका यह चिन्तन चलने लगा कि वे अपने सद्भाव और सहयोग से कितना अधिकाधिक लोक कल्याण साध सकते हैं ?

उनके जीवन ने एक नया मोड ले लिया ।

महाराजा चन्द्रसेन ने निश्चय कर लिया कि उनके राज्य की नीति अब विस्तारवादी नही रहेगी और जितना राज्य वर्तमान में उनके अधीन है उसके नागरिको के साथ भी भय, आतक और प्रताड़ना की नीति नही चलेगी ।

विस्तारवादी नीति की प्रतिकृति प्राचीन काल मे भी देखी जा सकती थी और वर्तमान काल मे भी देखी जा सकती है । अधिकाश व्यक्ति विस्तारवादी नीति को मानने वाले हुआ करते हैं । ये अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए दूसरो पर आक्रमण करके उन्हे अपने अधीन बना लेते है । उन्हे अधीन बनाकर इतना अशक्त कर दिया जाता है कि वे उनके अधिकार से बाहर न निकल सके । प्राचीन-काल मे भी दोनो नीतिया प्रचलित थी—जन हितकारी नीति भी और विस्तारवादी नीति भी । रामायण को देखे तो जहां राम जन-हितकारी नीति के सचालक थे, वहा रावण विस्तारवादी नीति का अनुसरण करता था । विस्तारवादी नीति के बल पर ही उसने अपना अपार वैभव जोड़ा तथा विषय-वासना के साधन इकट्ठे किये । इसी नीति का फल था कि उसके राज्य में चारो ओर विषमता थी । इस विषमता ने ही उसे राक्षस बनाया । जो सब कुछ अपने ही लिये रखे उसे ही तो राक्षस कहते है । ऐसे राक्षस कहा करते है—मेरा है सो मेरा है, तेरा भी मेरा है ।

इस तरह विस्तारवादी नीति होती है विषमता की नीति, ममत्व की नीति जो मन के विकारों का तांडव मचा देती है । क्या आजकल भी इस तरह की नीति दिखाई देती है अथवा नही ? सत्ता, पद और धन को प्राप्त करने के उपायो मे आज भी विस्तारवादी नीति किस प्रकार खुल कर खेल रही है—यह आप लोगो के सीधे अनुभव का अधिक विषय है । सभी लेना ही लेना चाहते है, छोड़ने के नाम पर कोई कुछ भी छोड़ना नही चाहता । राम और रावण का अन्तर आज भी चल रहा है जिसे समतावाद के साथ ही मिटाया जा सकता है ।

महाराजा चन्द्रसेन के जीवन में पहले जहा रावणपन की

वृत्ति थी, वहां अब रामपन की झलक निखर आई थी। ऐसा रूपान्तरण कैसे संभव हुआ ? यह पटरानी के पावन सहयोग तथा उनके अपने दृढ़ संकल्प से संभव हुआ। महाराजा ने सोच लिया कि वे भौतिक सम्पत्ति की तृष्णा के स्थान पर ऐसी आध्यात्मिक सम्पत्ति का विकास करेंगे जिसके कारण उनकी अपनी प्रजा भी उनको बड़े सम्मान से दीर्घकाल तक याद करती रहेगी।

चन्द्रसेन कितने रूपान्तरित हो गये, उन्होने अपने जीवन मे कितना परिवर्तन कर दिया ? वे क्या थे और क्या बन गये ? ऐसा सुपरिणाम किसका होता है ? निश्चय ही सुसगति का, सांसारिकता का सम्पूर्णतः जो त्याग करके साधना मार्ग पर चलते है, उनकी छाया के संसर्ग का भी सुप्रभाव पड़ता है। ऐसे साधकों की सगत में आने वाले व्यक्ति के जीवन में शुभ परिवर्तन आये विना नही रहते। पहले का निर्दयी जीवन भी तब दयावान और मधुर बन जाता है।

कोयल को तो आप जानते होगे। क्या वह किसी को कोई आघात पहुंचाती है ? पक्षी होकर भी वह कितनी निर्लिप्त होती है ? वह समता का सिद्धान्त पढी हुई नही होती, किन्तु इतनी चतुर होती है कि अपने अण्डे वह कौए के घोसले मे देती हैं। कौवी उसे अपने अण्डो के साथ सेती रहती है और जब पक्षी बाहर निकलते हैं तब वह पहिचानती है कि अमुक पक्षी उसके नही है। वह फिर उन्हे मारने की चेष्टा करती है तो कोयल उन्हे बचा लेती है। कोयल का स्वर मधुर होता है और उसको सब चाव से सुनते है, जबकि कौए के कर्कश स्वर को कोई बर्दाश्त नही करना चाहता है। एक बार कोयल स्वर्ग मे चली गई तो वहां उसकी मधुर वाणी से सभी देव बहुत खुश हुए और उसे एक रत्नहार दे दिया। फिर पूछा कि तुम कहां से आई हो ? कोयल ने कहा कि वह पृथ्वी से आई है तो देवता पृथ्वी की सराहना करने लगे। कोयल वापिस लौट आई और कौए ने जब उसका वृत्तान्त सुना तो वह भी स्वर्ग में पहुचा और कांव-कांव करने लगा। तब देवों ने उसका तिरस्कार किया। उसे भी पूछा कि वह कहा से आया है ? कौए ने कहा कि वह पृथ्वी से आया है। तब देवता आश्चर्य करने लगे कि कितनी सहनशीलता है पृथ्वी

जो कोयल को भी पालती है और कौए को भी ? यह एक रूपक है ।

तो सोचिये कि वह पृथ्वी समभावी है या विषमभावी ? क्या पृथ्वी से शिक्षा लेकर अपने समभाव का विकास नही किया जा सकता है ? सामायिक की शुद्ध आराधना देव नही कर सकते, मनुष्य ही कर सकते है । इसी कारण देवता भी मनुष्य जीवन को प्राप्त करने की अभिलाषा रखते हैं । महाराजा चन्द्रसेन समभाव का विकास करके अपने मनुष्य जीवन को सफल बना रहे थे । जब जीवन मे जीवन का परिवर्तन होता है तो मनुष्य जिन विचारों में पला पोषा होता है, उनके स्थान पर नये विचारो का जन्म होता है और उस दृष्टि से उसका वह नया जन्म हो जाता है। जब मनुष्य का लक्ष्य बदलता है तो उसकी श्रद्धा का केन्द्र भी बदल जाता है । सम्राट चन्द्रसेन जब अपने ही सुख की चिन्ता कर रहे थे तब उनके राज्य की स्थिति समीचीन नहीं थी । लेकिन उनमें जब परिवर्तन शुरु हुआ तो उनका सोच अपने से हटकर जनता की तरफ हो गया । उसके बाद उस सोच से जो जनहितकारी कार्य महाराजा ने प्रारम्भ किए तो वे जनप्रिय हो गये । जनता तब उन पर अपने प्राण निछावर करने लगी । चन्द्रसेन का भी चूंकि विचार बदल गया था अतः जनता के प्रेम से वे भी आनन्दित होने लगे । जनप्रेम उनके लिये शान्ति का स्रोत बन गया ।

कहा गया है कि यथा राजा तथा प्रजा । अतः जब राजा की नीति श्रेष्ठ बन जाती है तो नैतिकता की दिशा मे प्रजा भी अग्रगामी हो जाती है । सन्त लोग इसके लिये एक रूपक देते हैं । एक राजा बडा ही दुष्ट था । उसकी नीति बहुत बुरी थी । वह निरपराध प्राणियो के जीवन से खेला करता था और हिंसक कार्यों में लगा रहता था । एक बार शिकार के निमित्त वह एक घनघोर जंगल में पहुंच गया । उसका घोड़ा इतनी तेजी से भाग रहा था कि उसे रूकने के लिए भी तरकीब सोचनी पडी । एक वृक्ष की झुकी हुई शाखा को उसने जब पकड लिया तो वह भागते हुए अपने घोटे से अपना पिंड छुडा सका । राजा शाखा से नीचे उतरा और इधर-उधर रास्ता ढूंढने लगा । वह एक किसान के खेत पर पहुंच गया । उसे जोर की प्यास लगी हुई थी । वह सोचने लगा कि कहीं से रस्सी

ग्रौर लोटा मिल जाय तो कुए से पानी खींच कर वह अपनी प्यास बुझा ले। तभी उसे एक अस्सी वर्ष की बुढिया दिखाई दी। उसने उससे कहा कि वह रस्सी–लोटा हो तो उसे दे—वह बहुत प्यासा है। बुढ़िया के पास रस्सी–लोटा तो नही थे। वह खेत में गई और एक गन्ना उखाड़ लाई। उसने उसका रस हाथ से निचोड कर राजा को पीने के लिये दिया। राजा उसे पीकर तृप्त हो गया। तब राजा के मन में यह दुष्ट विचार जागा कि किसान इतनी अच्छी फसल लेते हैं और उसे बहुत कम टैक्स देते है। उसने बुढिया से पूछ कर पता कर लिया कि वह खेत उसके ही राज्य का था। राजा ने राजधानी पहुंच कर पहला काम यह किया कि किसानों पर टैक्स बढा दिया। अरसे बाद फिर ऐसा संयोग बैठा कि राजा जंगल में भटक कर फिर उसी खेत पर पहुंच गया। तब भी वह बहुत प्यासा था। वही बुढिया उसे मिली। तब बुढिया चार गन्ने लाई फिर भी उतना रस नहीं निकला कि राजा पूरी तरह से तृप्त हो सके। राजा ने इस अन्तर का कारण जानना चाहा तो बुढिया ने बेबाक कहा कि राजा बद-नीयत हो गया तो प्रकृति ने भी अपना फल बदल दिया, बाकी हमारा श्रम तो उतना ही लग रहा है। राजा ने यह सुना तो उसकी चेतना जागी और उसने यथा राजा तथा प्रजा की उक्ति का सार समझा।

आज राजाओं का जमाना तो चला गया। अब जनता के चुने हुए प्रतिनिधि शासक हो गये हैं। यदि जनता के प्रतिनिधियों की भावना जनता के प्रति अच्छी होती है और जनता के दुःख–सुख में वे सहायक बनते है तो जनता भी उनके लिए पलक पांवड़े बिछाती है। लेकिन यदि नेता की भावना क्रूर और स्वार्थ भरी होती है तो जनता की श्रद्धा भी उसे नहीं मिलती है एवं न ही वह शान्ति की नींद ले सकता है। आप किसी भी नेता को पूछिये कि उनको शान्ति की नींद क्यों नही आती है और फिर उनके उत्तर को सुनिये।

चन्द्रसेन को जब तक पटरानी का शुभ सहयोग नही मिला तब तक उनके प्रति जनता के विचार कैसे थे और जब उनमें परि-वर्तन आ गया तो वे जनप्रिय बन गये और शान्ति की नींद सोने लगे। अब उनकी विचार धारा चलने लगी कि मेरे पास धन है,

वैभव है और सत्ता है तथा मैं अपनी शुभता में भी आगे बढ़ रहा हूं। ऐसे समय में मुझे क्या करना चाहिये ? महारानी ने मुझे अच्छा मार्ग बताया है, वह मेरी परम उपकारी है। मुझे सन्तों का लाभ दिलाने का श्रेय भी उसी को है। कई बार बहिनो की प्रेरणा से भाइयों का जीवन बदलता है। बीकानेर में श्री श्रीमाल जी कभी सन्तों के समीप नही जाते थे किन्तु उनकी धर्मपत्नी ऐसी निष्ठावान आई कि उसकी प्रेरणा से वे सन्त समागम में रम गये। चन्द्रसेन भी न सिर्फ सन्तों की संगत में आने-जाने लगे बल्कि सत्संगति में सराबोर हो गये। परिणामस्वरूप उनकी साधना अति सुदृढ बनने लगी। उनके पास भौतिक सुखों को कमी नही थी—एक पुत्र ही नहीं था, किन्तु पुत्र के लिये भी अब उनकी आसक्ति बहुत कम हो गई थी। लेकिन इस अभाव के कारण उनकी प्रजा में अवश्य खिन्नता का वातावरण बना हुआ था।

यह जनता की खिन्नता महाराजा के लिए कष्टदायक हो रही थी, किन्तु स्वयं की सन्तान-लालसा नहीं। उनके मन में यही आ रहा था कि मैं जनता के साथ समभाव से कैसे रहूं ? मैं स्वयं दुःख सह सकता हूं, किन्तु जनता को कष्ट में नही देख सकता हूं। इस भावना के साथ उनकी जनता के प्रति आत्मीयता प्रगाढ हो जाती है और जनता उन्हे अपना हृदय-सम्राट् मानने लगती है।

समता की साधना करके चन्द्रसेन अब जनवत्सल और जनवल्लभ हो गये थे। यह जनमत बन गया कि चन्द्रसेन जैसा समभावी नायक मिलना बहुत कठिन है।

विचार करे जो समता-भाव की साधना करता है, उसका वर्तमान जीवन भी कितनी गहराई से प्रभावित होता है। वहां कुछ लोग ऐसे भी थे जिन पर उस जीवन का कोई प्रभाव नही पडा। कई व्यक्ति एक ही बात को भिन्न-भिन्न दृष्टियो से देखते हैं—चाहे वे प्रकट रूप में अपनी विरोधी दृष्टि को जाहिर न करे किन्तु उनके मन मे वह बात उभरती अवश्य है कि अमुक व्यक्ति साधना कर रहा है, फिर भी दुःख पा रहा है। उसे पेट भर खाने को भी नही मिलता, जबकि अमुक पाप करने वाले मजे उड़ा रहा है। किसी अविचारी ने तो यह तुकबंदी भी करदी– करो पाप, खाओ धाप और करो धरम फूटे

करम । ऐसा कहने वाले तो मिलते हैं, मगर इसका अर्थ करने वाले नहीं मिलते । समता एक धर्म है—सिर्फ मानव के लिये ही नहीं, बल्कि प्राणी मात्र के लिये । समता साधना करने वाला वर्तमान जीवन में दुःख पा रहा है तो यह उसके पूर्वजन्म के कर्मों का फल है । इसी जरह पूर्व जन्म के पुण्य हैं तो उनका शुभ फल इस जन्म में पाप करने वाले को भी मिलता है । जब पुण्योदय समाप्त हो जायेगा तो उसके बाद उसकी दशा विगड़ेगी ही । इसका आध्यात्मिक विधि से यही समाधान है कि समता की साधना करने वाले व्यक्ति के पूर्व जन्म के अशुभ कर्म टूटते है । कहा है—

एक घड़ी, आधी घड़ी, आधी में पुनः आध ।
तुलसी संगत साधु की, कटे कोटि अपराध ।।

समता की ऐसी ही साधना के वल पर चन्द्रसेन जनता के वल्लभ बन गये थे । सत्संग से जब उन्हें ज्ञान मिला तो वे सोचने लगे कि सन्तान हो तो क्या और नहीं हो तो क्या–अपने अमूल्य जीवन को इस चिन्ता से विद्रूप नहीं वनाना चाहिये । यह अमूल्य मानव जीवन चिन्तामणि रत्न के समान है । किसी को चिन्तामणि रत्न मिल जाय और वह उसका शिला पर चटनी बांटने में उपयोग करे तो उसे क्या कहा जाएगा ? उस चिन्तामणि रत्न का तो फिर भी मूल्य है, किन्तु यह मानव जीवन तो अमूल्य होता है, अतः उसका श्रेष्ठ साध्य की प्राप्ति हेतु साधन रूप सदुपयोग ही करना चाहिये—यह चन्द्रसेन ने मन ही मन निश्चय कर लिया था ।

किन्तु जनसमुदाय के मन में एक तरह की भिन्नता और जिज्ञासा उभर रही थी । लोग सोच रहे थे कि किसी दिन जव ये महाराजा नहीं रहेंगे तो चूंकि इनके कोई सन्तान नहीं है अतः पता नहीं कि किस स्वभाव वाला शासक इस राज्य व्यवस्था की वागडोर संभालेगा । कुछ समझदार लोगों ने अपना यह मत जाहिर किया कि अगर इन्हीं महाराजा के सन्तान हो जाये तो भविष्य में ऐसा ही शासक हमें मिल सकेगा । कारण, सन्तान में अपने माता–पिता तथा वंश-परम्परा के सद्गुणों का अवश्य ही समावेश होता है । चन्द्रसेन जैसे समभावी एवं जन हितकारो महाराजा तथा समतामय जीवन की अनुगामिनो महारानी कीं सन्तान अवश्य ही उनके इन गुणों के

अनुरूप होगी, वल्कि कभी पुत्र अपने पिता से भी आगे बढ़ जाता है। जनता ने इस विचार के साथ निश्चय किया कि उनके प्रतिनिधियो का एक शिष्टमंडल महाराजा चन्द्रसेन की सेवा मे पहुचे तथा उनके सन्तान होने की शुभ कामना व्यक्त करे।

इस निश्चय के साथ विशिष्ट नागरिको का एक शिष्टमंडल महाराजा की सेवा मे पहुचा। महाराजा ने भी शिष्टमडल के सदस्यो को आदर सहित विठाया और पूछा कि उन्होने किस निमित्त से कष्ट किया है? महाराजा ने यह भी कहा कि उन लोगो ने यह कष्ट क्यो किया? अगर जनता का कोई कार्य होता तो आप मुझे वही बुला लेते—मेरा जीवन तो जनसेवा हेतु समर्पित है। महाराजा का यह कथन सुनते ही सबका हृदय गद्गद् हो गया। महाराजा ने फिर कहा—आप किस समस्या के समाधान हेतु यहा आये हैं? किसी भी वस्तु की कमी हो या अन्य कोई अभाव हो तो मैं कष्ट उठाकर भी उसकी पूर्ति जनता के लिए करना चाहूंगा। आप अपना मतव्य बतावें।

शिष्टमडल के नेता ने उत्तर दिया—राजन् आप जिस हार्दिकता से हमारी सेवा कर रहे है, वैसी अवस्था मे जनता को किस अभाव का कष्ट हो सकता है? हम तो अपनी एक भावना आपके समक्ष व्यक्त करने के लिए आये है। वह भावना यह है कि आपके जैसा ही महान् समभावी शासक हमे भविष्य मे भी मिले। हमारी इस भावना की सफलता के विषय मे आपके साथ विचार-विमर्श करने के लिये ही हम आपकी सेवा मे उपस्थित हुए हैं। हमारी अभिलाषा है कि आपका पुरुषार्थ सफल हो तथा आपको पुत्र रत्न की प्राप्ति हो जो हमारा आप जैसा ही महान् शासक भविष्य मे हो सके।

महाराजा चन्द्रसेन ने समझाया—आप भद्रिक लोग हैं और आपकी भावना अच्छी है। मैं भी सन्तान की कामना रखता था अत: एक-एक करके मैंने बारह विवाह किये, फिर भी सन्तान नही मिली तो यह कर्म फल के अधीन है। आप लोग भी सन्तो के सत्संग में जावे तो ज्ञात हो जायेगा कि कर्म फलानुसार ही ऐसी प्राप्तिया होती है। सन्तो के पास अगर आप एकाधिक बार जायेंगे तो आप

को जीवन के कई रहस्य समझ में आ सकेंगे। सम्राट् की बात सुनकर शिष्टमंडल आशान्वित हुआ। तभी सम्राट् ने मन ही मन यह निर्णय लिया कि सन्तान प्राप्ति का कोई भी ऐसा प्रयास वे नहीं करेंगे जिससे उनकी सामायिक की साधना पर आंच आती हो या किसी प्रकार की मिथ्या-दृष्टि प्रकट होती हो। शिष्टमडल अपनी भावना व्यक्त करके चला गया, और महाराजा भी अपनी साधना में सुखपूर्वक तन्मय रहने लगे।

प्रकृति प्रत्येक परिस्थिति में अपना प्रभाव दिखाती है। शीत-काल के बाद ग्रीष्मकाल की उष्णता प्रकट होती है, लेकिन वही जब तापतप्त कर देती है तो वर्षाकाल एक नवीन सुखमय आशा को जन्म देता है—मनुष्य के जीवन को शीतलता और धरती को धन की समृद्धि प्रदान करता है।

❀ ❀ ❀

: ३ :

समय एक सा नही रहता । राजा और प्रजा की नीति एवं धर्म में जब उच्चता व शुद्धता का स्तर विकसित होता है तो उसका प्रभाव भी समय पर पडता है । यो परिवर्तन समय का धर्म होता है । महाराजा चन्द्रसेन यही सोच रहे थे कि उनके जीवन मे जिस शुभ परिवर्तन का उदय हुआ है, उसका श्रेय धर्म को ही दिया जा सकता है । धर्म ने ही उनके विचार बदले और विचार बदले तो आचार बदला । जब उनके जीवन का आचार बदला तो समूची राज्य व्यवस्था की नीति और व्यवहार ही बदल गया । उनके हृदय में यह सत्य गहराई से पैठ गया कि दृष्टि बदली तो सृष्टि बदली ।

महाराजा का जीवन सामायिक की साधना से ओतप्रोत हो चुका था । पहले सन्तान प्राप्त न होने के कारण उसका मन चिन्तित रहा करता था परन्तु समता की आराधना के साथ ही उनकी वह चिन्ता समाप्त हो गई । इस चिन्ता को समाप्त करने में सन्तों का निमित्त मिला । उन्होने सन्तो से जीवन का वास्तविक स्वरूप समझा और तत्त्व दृष्टि का ज्ञान किया । फिर वे प्राप्त ज्ञान पर चिन्तन किया करते । इसी चिन्तन धारा मे उन्हे विदित हुआ कि इस नाशवान शरीर से शुभ या अशुभ जो भी कार्य किये जाते हैं उनसे कर्मो का सयोग जुटता है । जो कर्म निकाचित होते है, उनका तो फल भोगना ही पडता है; अन्यथा अन्य कर्मो से छुटकारा पाया जा सकता है । इस चिन्तन के साथ चन्द्रसेन ने विचार किया कि सन्तान प्राप्ति के लिये चिन्ता नही की जाय, किन्तु पुरुषार्थ भी करते रहे । कर्त्तव्य और पुरुषार्थ की दृष्टि से संलग्नता रखते हुए जो भी भविष्य हो उसे स्वीकार कर ले । ऐसे चिन्तन के साथ ही महाराजा ने जैसे अपने मन को आज्ञा दे दी कि उसे सन्तान प्राप्ति की चिन्ता मे डूबे रहने की जरुरत नही है—वह अपनी सारी सक्रियता प्रजा के हित मे नियोजित कर दे । उनका मन साधना के प्रभाव से पक्का आज्ञाकारी बन चुका था इसलिये वह आज्ञानुसार मुडकर कार्यरत हो गया ।

जनता शिष्टमण्डल तो महाराजा के समक्ष अपनी भावना

रखकर गया ही था, मंत्री ने भी यही भावना महाराजा के समक्ष व्यक्त की—आपके सुप्रभाव से मुझे भी सच्चे दिल से जनता की सेवा करने का मौका मिला है तथा जन–सेवा की ऐसी शुद्ध परम्परा का निर्वाह तभी हो सकेगा जव भावी शासक भी आपके समान विचारों एवं सद्गुणों वाला पुरुष हो और वह आपका स्वय का सुपुत्र ही हो सकता है जिसके द्वारा राज परिवार का यथावत् सरक्षण तथा राज्य व्यवस्था का सुचारुता से संचालन सम्भव हो सकेगा। मंत्री की वात सुनकर महाराजा ने आश्वासन दिया—मैं आपकी वात पर चिन्तन करूंगा लेकिन सांसारिकता युक्त विषय वासना की भावना के साथ नही, वल्कि तव जव निर्मल वुद्धि के साथ धर्म साधना मे बैठूंगा। धर्माराधना का प्रारम्भ सामायिक से होता है अतः उस समय ही व्यवस्थित मन से आपकी वात पर विचार करूंगा।

अगले दिन प्रातःकाल महाराजा को जनता और मत्री की भावना का ख्याल आया और तभी सामायिक की साधना करने का भी। किन्तु पहले वहिर्भ्रमण करने की उनकी इच्छा हुई ताकि शुद्ध वायु का सेवन किया जा सके। वे अपने उद्यान की तरफ चले गये। वहा कुछ समय तक घूमते रहे और सामायिक करने की भावना से पुनः प्रासाद की ओर चल पड़े।

उसी रात्रि को अच्छी वर्षा हो गई थी, अतः राजभवन जाते हुए मार्ग मे महाराजा को एक किसान दिखाई दिया जो हल–वैलो के साथ बीज वोने के लिए अपने खेतों की तरफ जा रहा था। किसान के साथ उसका पुत्र भी था, मानो वह अपने पिता से कृषि का व्यावहारिक शिक्षण लेने के लिये जा रहा हो। किसान ने जव राजा को देखा तो एक बार वह राज-दर्शन से प्रसन्न हुआ किन्तु दूसरे ही क्षण उसका मन खिन्न हो उठा।

कृषक खिन्नता मन मे आई, एक दुःस्वप्न के कार।
घर पर लौटा पुत्र साथ मे, करता विचित्र विचार॥
जन मन प्यारी मंगलकारी,
समता है जग में सुखकार।

किसान के मन में आई खिन्नता का एक कारण था। वैसे तो राजा उसके लिये पिता तुल्य थे किन्तु उसका विश्वास था कि जब वह बीज बोने के लिये जा रहा है और सामने पुत्रहीन पुरुष मिल जाय तो वह शुभ फल का सकेत नही है। इस विचार से ही उसका मन खिन्नता से भर गया था। वह सोचने लगा कि वह बारहों महीनो के जीवन-निर्वाह के साधन रूप खेती की शुरुआत करने के लिये जा रहा है सो यह शकुन ठीक नही हुआ।

अज्ञानी लोग जो जीवन के वास्तविक महत्त्व को नहीं समझते हैं, शकुन-अपशकुन की बातो पर सोचते है। क्या आप लोग भी शकुन देखते हैं? खुले मे आप हा नही भरेंगे लेकिन शकुन देखने की बात अच्छी नही है। आप लोग कही शुभ कार्य के लिये बाहर जा रहे होवे और बिल्ली रास्ता काट जाय तो उसे अपशकुन मान लेते है। इस तरह कल्पना का एक भूत खडा कर लेते है। कई बार इस तरह की विचारणा मे मानसिक रोग तक हो जाते है। कहीं बिल्ली के रास्ता काट लेने से पुरुषो का पौरुष घट जाता है सो सोच लेते हैं कि काम नही होगा। कदाचित् सामने विधवा बहिन मिल जाय तब भी आप अपशकुन मानते हैं! क्या ऐसी धारणा भी अच्छी है? विधवा बहिन तो ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करती है और तपस्या करते हुए शुद्ध जीवन बिताती है फिर भी उसके सामने आने को अपशकुन मानना अज्ञान नही तो और क्या है? सामने चरित्रहीन सधवा मिल जाय सो तो शकुन अच्छा और सच्चरित्र विधवा मिल जाय सो शकुन खराब—कैसी विचित्र बात है? यह अज्ञान का ही नमूना है।

शकुन खराब हुआ है—यह मानकर वह किसान अपने पुत्र तथा बैलो को लौटा कर खेत पर पहुंचने की बजाय वापिस अपने घर पर चला गया। ज्यो ही किसान घर की ओर लौटा, महाराजा की दृष्टि उस ओर चली गई। महाराजा विचार मे पड़ गये कि हर्षित मन से बीज बोने के लिए जा रहा यह किसान इस तरह खिन्न होकर वापिस घर को क्यो लौट पडा है, जबकि सामने से सिवाय उसके अन्य कोई भी व्यक्ति नही आया है? और यदि यह किसान मुझे ही देखकर वापिस लौट चला है तो इसका कुछ न कुछ रहस्य

अवश्य होना चाहिए। महाराजा के मन में तरह–तरह के विचार उठने लगे।

महाराजा उद्यान से लौटकर राजभवन पहुंचे और सामायिक की साधना में बैठ गये। किन्तु हमेशा जिस विधि से उनके मन की एकाग्रता सधती थी, वैसी एकाग्रता उस दिन नही सध रही थी। मन स्थिर नही हो रहा था और बार-बार यही बात उठ रही थी कि वह किसान बीज बोने के शुभ कार्य हेतु जाते हुए मुझे देखकर वापिस क्यों लौट पड़ा ? हार थक कर महाराजा ने अपनी बुद्धि को आज्ञा दी कि वह इस घटना के रहस्य का पता लगावे। तब बुद्धि ने उन्हे परामर्श दिया कि इसका रहस्य जानने के लिए किसी गुप्तचर को किसान के पास भेजना चाहिए। सामायिक पूर्ण करके महाराजा ने इस बात का पता करने के लिए और किसान को बुला कर लाने के लिए एक गुप्तचर को किसान के पास भेज दिया।

गुप्तचर किसान के पास पहुचा और उससे बोला—तुम्हे महाराजा बुला रहे है सो मेरे साथ चलो। महाराजा के बुलाने की बात सुनकर किसान का मन आशकित हो उठा। उसके मन में सुबह वाली बात ही घूम गई और वह शका जागी कि शायद उसके इस तरह से लौटने को महाराजा ने अपना अपमान समझ लिया हो ! अब महाराजा के सामने यदि मैं सच्ची बात कह दूंगा तो मेरा क्या हाल होगा ? अब उसे शकुन की बात सोचकर अफसोस होने लगा। उसका मन अशान्त हो गया।

किसान के मन में भय और कायरता का एक साथ प्रवेश हुआ कि न जाने महाराजा उसे कैसा दंड देगे ? मनुष्य का मन जैसा कायरता से आतंकित होता है वैसे वीरता से उत्साहित भी। जब मन में वीरता के भाव आते है तो मनुष्य सच्चाई के साथ आगे बढ़ता है और कायरता के आतंक से उसका मन बुझ जाता है। यही नहीं, शारीरिक शक्ति तक ठंडी पड़ जाती है। सुना होगा कि यकायक चोर को घर में घुसा हुआ देखकर नीद से जगा व्यक्ति इतना घबरा जाता है कि उसकी जीभ हकला जाती है और बोली तक नही निकलती। शरीर का ऐसा हाल मन की स्थिति के अनुसार बनता है। किसान धर्म संकट में पड़ गया कि सच बोले तो बुरा और सच

नही वोले तो क्या वोले ? मन की कायरता से वह किसान हतप्रभ सा हो गया ।

जव गुप्तचर ने किसान को महाराजा के सामने उपस्थित किया तो वह थर-थर काप रहा था । महाराजा ने उसे देखा और वड़े ही प्रेम से पूछा—भाई, आज सुवह जव खेत पर वीज वोने के लिये जाते हुए तुम्हे मैं सामने मिला तो तुम अपने घर को वापिस क्यो लौट पड़े—इसका कारण मुझे समझ में नही आया, इसीलिए मैंने तुम्हे वुलाया है । इसमें डरने की कोई वात नही है । जिस प्रश्न से किसान वुरी तरह से डर रहा था, वही प्रश्न जव उसके सामने खड़ा हो गया तो वह दिग्भ्रमित सा खडा ही रहा । कई लोगो की ऐसी परिस्थिति पैदा जाती है तो झूठ वोलकर गलत उत्तर देने की चेष्टा करते हैं यह सोचकर कि सामने आये हुए संकट को टाल ले । कई वार गलत उत्तर देने का तय करने के पहले पुन: भय सताता है कि एक झूठ वोलकर न जाने उन्हे कितनी वार झूठ वोलना पड़ेगा और इस झूठवाजी में कही न कहीं फंसने का फदा तैयार हो ही जाएगा । तव यही मन वनता है कि सच वोले विना छुटकारा नही है । महाराजा के वचनों की मधुरता ने भी किसान को प्रभावित किया और इस तरह उसने सच वात ही कह देने का निश्चय किया । फिर भी मन वहका और उसने वहाना वनाया ।

महाराजा के प्रश्न को सुनकर किसान कांपता ही रहा, अपने मन को मजवूत नहीं वना सका । इस कारण कम्पित स्वर मे ही वह वोला—राजन्, मैं खेत जोतने के लिए जा रहा था तव आपके दर्शन हुए– यह मेरा सौभाग्य था । किन्तु उसी समय मुझे याद आया कि एक आवश्यक वस्तु मैं घर पर ही भूल आया हूं अत: उसे लेने के लिये मैं वापिस घर की तरफ लौटा । किसान का यह उत्तर सुनकर महाराजा मन्द-मन्द मुस्कुराने लगे ।

चन्द्रसेन महाराजा का मन सामायिक की साधना के कारण रौद्रता त्याग चुका था । कोई अपराध भी होता तव भी उन्हे क्रोध नही आता । यहा तो अपराध जैसी कोई वात भी नही थी, फिर भी किसान को झूठ वोलते देखकर उन्हे हंसी आ गई । वे मन में समझ रहे थे कि किसान भयवश ही सच वात को छिपा रहा है । झूठी वात

सुनकर भी महाराजा की मधुरता कम नहीं हुई, बल्कि उन्होंने कोमल शब्दों में फिर किसान से पूछा—भाई, तुम निर्भय रहो और सत्य बात कहो। तुम सत्य तथ्य को झुठलाओ मत। आवश्यक वस्तु लेना भूल गये थे, तो वह वस्तु लेकर तुम पुनः घर से खेत जोतने क्यों नहीं गये ? फिर आवश्यक वस्तु तुम अपने पुत्र को भेजकर भी तो मंगवा सकते थे। इसलिए जिस कारण से तुम मुझे देखकर वापिस लौटे, उसका स्पष्ट विवरण बताओ। किसी तरह का संकोच मत करो। लगता है कि वहां से घर लौटने के पीछे तुम्हारे मन में कोई और बात थी जिसको तुम मेरे सामने प्रकट करने से सहम रहे हो।

महाराजा अधिक मधुरतापूर्वक कहते गये—भाई, तुम मुझे मेरी आत्मा के समान ही लग रहे हो। तुम स्वयं सोचो कि घर से आवश्यक वस्तु लाने का क्या तुम बहाना मात्र नही बना रहे हो ? तुम अपने भीतर की बात को मुझ से छिपाओ मत। तुम्हारे मन में शायद दंड का भय होगा लेकिन तुम यह नहीं सोचते कि एक झूठ बोलकर सत्य को छिपाने के लिए कितने झूठ बोलने पड़ते है फिर भी सत्य नही छिपता है। झूठ बोलने से जीवन ही बरबाद होता है।

चन्द्रसेन ने किसान को सत्य भाषण के लिये पूरी तरह आश्वस्त किया और समझाया—तुम तो धरती पर अपना पसीना बहा कर धान पैदा करते हो और सबका पालन करते हो। तुम्हारे तो मन में झूठ का ख्याल भी नहीं आना चाहिए। किसान के मुंह से तो सदा सत्य ही निकलना चाहिये। राजनेता ही अधिकतर ऐसा असत्य भाषण करते हैं। इसी कारण उनकी कथनी और करणी में एकरूपता मुश्किल से ही मिलती है। क्या तुम नहीं जानते कि जब जीवन में सत्य के टुकड़े किये जाते है तो सारा जीवन ही असत्य में डूब कर कलंकित हो जाता है। इसके सिवाय भी यदि तुम्हारे मन में राजदंड का भय हो तो मैं उसे दूर कर देना चाहता हूं। तुम सच-सच बात बता दो—चाहे वह कैसी भी होगी, तुम्हे किसी तरह का दंड नही दिया जायेगा।

किसान ने महाराजा की सारी बात बड़े ध्यान से सुनी। उसकी आत्मा भी जागृत थी। जब वह राजदण्ड के सम्बन्ध में

आश्वस्त हो गया तो उसने मन ही मन निश्चय किया कि वह महाराजा को सत्य बात ही बता देगा क्योंकि ऐसे दयावान राजा के सामने व्यर्थ ही झूठ बोलना उचित नही है ।

किसान पढा-लिखा नही था, किन्तु बुद्धिशाली था और शुद्ध हृदय वाला भी था ।

कितना ही पढा-लिखा विद्वान्, होशियार और चतुर व्यक्ति क्यों न हो, उसकी चतुराई काम नही आती, किन्तु बिना पढे लिखे, पर सहृदय व्यक्ति से अन्तर की बात खुलवा लेना ज्यादा मुश्किल नही होता है । किसान सोचने लगा कि मैं सच्ची बात नही बताऊंगा तब भी महाराजा अपने गुप्तचरो से सच्ची बात का पता करा लेंगे इसलिये सच्ची बात को अब छिपाने मे सार नही है ।

महाराजा चन्द्रसेन के सामने भी एक समस्या पैदा हो गई—उनके मन के किसी कोने मे छिपा बैठा चोर जैसे उचक-उचक कर मुंह निकाल रहा हो । किसान ने उनकी उलझन को बहुत बढा दी थी और वे उसको सुलझा लेना चाहते थे बशर्ते कि उसका कारण स्पष्ट रूप से प्रकट कर दिया जाय ।

किसान ने तब स्पष्ट रूप से सही बात कह देना ही उचित समझा । उसने कहा—राजन् ! आप बुरा नही माने तो मैं सत्य-सत्य निवेदन कर दूं । राजा ने पुन· आश्वासन दिया, तब वह बोला—मैं अपने पुत्र व बैलो को लेकर खेत जोतने के लिये जा रहा था—वह मेरे परिवार के लिये पूरे वर्ष भर के निर्वाह का प्रश्न था और तभी आप सामने से पधार रहे थे । तब तक मुझे कोई भी अपने सामने नही मिला था अतः पहला पहला आपका सामना होने से मेरे मन मे शकुन का विचार आ गया । आप यद्यपि प्रजापालक महाराजा है और आपका दर्शन देवदर्शन के समान माना गया है फिर भी शकुन के सम्बन्ध में एक विश्वास है कि यदि कोई पुत्रहीन सामने मिल जाय तो उसे अपशकुन के रूप मे लिया जाता है । इसी विश्वास के कारण ही मैं भी उस समय वापिस घर लौट गया तथा उस दिन को व्यर्थ मानकर पुन. खेत पर नही गया । मैंने यही विचार किया कि यदि अपशकुन के साथ मैं खेत जोत लूंगा तो अच्छी पैदावार संशय-

पूर्ण ही रहेगी । महाराजा, आप तो जानते है कि खेती हमारे लिये प्राणो के समान है क्योंकि इसी के आधार पर सभी के जीवन का निर्वाह चलता है ।

किसान कहता गया—महाराज, जैसे कोई व्यापारी कमाने के लिये परदेश जाता है तो प्रस्थान के समय शुभ शकुन देखता है, वैसे ही हम किसान भी वर्ष भर की पैदावार के निमित्त से जब खेत जोतने जाते है तो शुभ शकुन की प्रतीक्षा करते है । शकुन अच्छा होने पर हम कल्पना करते है कि पैदावार बहुत अच्छी होगी तथा हमारे परिवार का जीवन सुखी रहेगा । इसके विरुद्ध यदि उस समय अपशकुन हो जाय तो उसे हम इष्टकारी नही समझते और वैसी दशा मे उस दिन को बेकार करके वापिस घर को लौट जाना ही उचित समझते है ।

अग्रिम रूप से क्षमायाचना करते हुए किसान ने नम्रतापूर्वक कहा—मै उस समय शकुन का विचार ही कर रहा था, तभी आप के दर्शन हो गये । तब पहला विचार ही मेरे मस्तिष्क में यह उठा कि आप नि:सन्तान है याने कि फलहीन । अत: फलहीन को सामने पाकर फल की आशा कैसे रखी जा सकती है ? फल से निराश होकर फल के लिये श्रम का श्रीगणेश करने के लिये फिर जाना निरर्थक ही था ।

महाराजा द्वारा अभयदान देने के फलस्वरूप ही किसान उनके सामने अपने भीतर की बात स्पष्ट रूप से रख गया । महाराजा ने अपने ही विषय की अपितु निन्दात्मक पक्ष की बात भी ध्यान से सुनी । पहली बार यह मान्यता उनकी जानकारी मे आई कि सन्तानहीन व्यक्ति का शुभ काम के लिये जाते हुए किसी के सामने पड़ जाना अपशकुन माना जाता है । इतनी कड़वी बात सुनकर भी वे रुष्ट नहीं हुए ।

महाराजा की यह कैसी सहनशीलता थी ? आपके सामने यदि इस प्रकार का कोई प्रसंग आ जाय तो शायद उत्तेजना आए बिना न रहे । कहा जाता है कि काने को भी काना कहकर नही पुकारना चाहिये क्योंकि काने को भी काना पुकारा जाना अच्छा

नही लगता है । किन्तु जो साधक सामायिक का अभ्यासी वन जाता है, वह सहनशीलता का भी धनी होता जाता है । जव तक समता का समरस महाराजा ने नही पिया था, तव तक वे ऐसी वात को—वात को तो क्या विचार तक को अपना अपमान समझते थे, लेकिन समभावी वनने के वाद किसान की ऐसी स्पष्ट वात मुख पर ही कही जाने के उपरान्त भी महाराजा शान्तचित्त ही वने रहे । इस रूप में उनकी सामायिक का व्यावहारिक प्रभाव झलक रहा था ।

समता से दूर मनुष्य जव तक ममता मे ही उलझा रहता है तो उसे अपनी भौतिक कामनाओ के सम्वन्ध मे प्रफुल्लता या खिन्नता का अनुभव होता है तथा मानापमान की भावना के साथ राग-द्वेष की प्रवलता प्रकट होती है । किन्तु जव सामायिक की नियमित साधना के साथ मन पर नियन्त्रण साधा जाता है तो भौतिक कामनाओ के सम्वन्ध का सम्पूर्ण व्यवहार ही तुच्छ लगने लगता है, वल्कि स्वयं उन कामनाओ के परित्याग का सकल्प वन जाता है । वैसी मन·स्थिति मे न किसी का सम्मान मन को लुभाता है और न ही किसी के अपमान से विक्षुब्धता उत्पन्न होती है । चन्द्रसेन भी ऐसी समतामयी मन·स्थिति मे विचरण कर रहे थे । आप भी जरा सा अपने-अपने मन मे ध्यान ले कि आप कितने वर्षो से वरावर सामायिक की साधना करते हुए चले आ रहे हैं ? किन्ही को ४० तो किन्ही को ५०–६० वर्ष तक भी व्यतीत हो गये होगे तो क्या कोई यह वतावेगे कि मन मे समता का समरस कितनी गहराई तक उतर गया है ? समभाव की स्थिति कितनी परिपुष्ट हुई है ? यह आपके ही चिन्तन का विषय है । आपका क्रम ऐसा समझ मे आता है कि सामायिक करके आप उठे और दुकान पर पहुचे । वहा आपको किसी मुनीम की भूल दिखाई दी तो उस समय मे एक तरफ तो आपका मन कहेगा कि सामायिक करने के वाद क्रोध करना उचित नही है, किन्तु दूसरी ओर धन की हानि आपको असह्य लगती है और आप मुनीम को डाटना-फटकारना शुरु कर देते हैं । इस वात से ही अनुमान लगाया जा सकता है कि आपकी सामायिक की साधना की गहराई कितनी है ? सामायिक की साधना नष्ट हो—यह आपको सह्य हो जाता है लेकिन धन की छोटी सी हानि भी सही नही जाती,

तो सोचिये कि समता का समरस आपके अन्तःकरण में कितना उतरा है ? सामायिक का वास्तव स्वरूप जब तक भीतर नही उतरेगा तब तक सांसारिकता के प्रति ममत्व भी कम नही होगा।

समझें कि कोई व्यक्ति गलती करता है, तो उसकी गलती का याने कि उससे बंधे कर्मो का फल उसे अवश्य ही भोगना पड़ेगा। फिर भी एक बात समझने लायक है। अगर वह व्यक्ति अपनी गलती को समझ कर गलती के रूप में मंजूर कर ले और उसके लिये हार्दिक खेद प्रकट कर दे तो क्या उसके इस प्रायश्चित के पश्चात् भी गलती गलती के रूप में खड़ी रहेगी ? सामायिक की साधना का यह प्रभाव होता है कि व्यक्ति विवेक रखे और गलती नही करे। कदाचित् गलती हो भी जाय तो उसका प्रायश्चित कर ले। मानसिकता हर हालत में स्वस्थ रहे—यह सामायिक का साधक समझता है। महाराजा चन्द्रसेन भी सामायिक के साधक थे अतः किसान की स्पष्ट बात सुनकर भी उत्तेजित नहीं हुए और न ही उन्होने किसी प्रकार से अपना अपमान महसूस किया। उनकी स्वस्थ मानसिकता तब भी स्वस्थ ही बनी रही।

महाराजा ने किसान से कहा—भाई, कैसी भी हो लेकिन आखिर तुमने सच्ची बात कह दी जिससे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। यह अच्छा किया कि इस बात को तुमने जगह-जगह नहीं कही और मेरे ही मुंह पर कह दी। पुत्रहीन होना तो मेरे हाथ की बात नही है—यह तो कर्मो के अधीन है। जब तक निकाचित कर्मो का क्षय नही होता है तब तक मनुष्य को इच्छित वस्तु की प्राप्ति नहीं होती है। किन्तु तुम मेरे कारण उस दिन खेत जोतने और बीज बोने के लिए नहीं जा सके, इस कारण उतना अन्न तुम मेरे भण्डार से प्राप्त कर लो जितनी तुम्हारी वर्ष भर की पैदावार होती।

किसान तो महाराजा के सद्व्यवहार को देखकर दंग रह गया। वह तो उस समय नहीं समझ पाया किन्तु ऐसा सद्व्यवहार महाराजा की सामायिक की साधना का सुफल था।

महाराजा के आदेश से किसान को वांछित अन्न की मात्रा भण्डार से दिला दी गई। किसान महाराजा की भूरि-भूरि प्रशंसा

करता हुआ तथा प्रसन्न होता हुआ अपने घर चला गया ।

चन्द्रसेन जब एकान्त में पहुंचे तो किसान की कही हुई बात ही उनके मस्तिष्क मे चक्कर काटने लगी । वे समझ चुके थे कि सन्तान प्राप्ति कर्मों के अधीन है अत: ममत्त्वपूर्ण चिन्ता भी वे छोड़ चुके थे । परन्तु जनता मे उनके नि:सन्तान होने से सम्बन्धित जो भ्रान्ति फैली हुई थी उसकी जानकारी उन्हें उस किसान के माध्यम से हुई थी । उनके दिल को यह समझ कर चोट भी पहुंची थी कि राजा तो दर्शनीय होता है लेकिन वही पुत्रहीन होने के कारण अदर्शनीय हो जाता है । महाराजा ने किसान की बात पर बड़ी गहराई से विचार किया और इस निर्णय पर पहुचे कि मेरे विषय में जनता मे ऐसी भ्रान्ति का फैली रहना और तब भी मेरा उसी जनता के बीच मे रहना—ये दोनो बाते एक साथ नही चलेगी ।

अपने लिये अपशकुनता की भ्रान्ति से महाराजा का चित्त दु:खी होने लगा । वे सोचने लगे कि यों जनता में उनकी सेवाओं का बहुत ही प्रेम और सम्मान है लेकिन यह भ्रान्ति ऐसी है जो सोने की थाली मे ताबे की मेख के समान महसूस होती है । मेरे पुत्र क्यो नही है– इसका कारण तो ज्ञानीजन ही सोच सकते हैं किन्तु नि सन्तान होने से यह अपमानपूर्ण जो स्थिति है, वह असह्य है । महाराजा को ऐसा लगा कि इस स्थिति के साथ जीवित रहना ही श्रेयस्कर नही है ।

ऐसे खेदकारी विचारों के बीच मे ही सामायिक से सधा हुआ उनका मन आन्तरिक चेतना की दृष्टि को समक्ष प्रस्तुत करते हुए बोल पडा—अहो, तुम ऐसी क्या विचारणा कर रहे हो ? तुमने सामायिक का रस पाया है—ऐसे निराशाजनक भाव तुम्हारे अन्त:-करण मे उठने ही नही चाहिये । मन ने तभी महाराजा के खेदकारी विचारो की लगाम खीच ली । महाराजा पुन. अपने भीतर स्थित हुए और सोचने लगे कि जनता के मन मे मेरे प्रति कैसी भी भावना हो—किन्तु मेरा तो कर्त्तव्य यही है कि मैं उसे शान्तिपूर्वक सहन करूं और जनहित के कार्यो मे अपने उत्साह को किसी प्रकार से घटाऊ नही ।

तभी जैसे महाराजा के अन्त.करण मे एक प्रकाश रेखा सी

चमकी और उनके मन में एक नये पुरुषार्थ का संचार होने लगा, जिसने उनके विचारों की सारी खिन्नता धो डाली। उन्हें अपनी उत्साहप्रद भावनाओं की एक ताजगी सी महसूस हुई और वे वहां से उठ खड़े हुए। किसान के कथन ने उनके दिल पर जो एक चोट लगाई थीं, वह पलभर मे ही मिट गई। उनका हृदय हल्का ही नही हुआ, बल्कि एक नये पुरुषार्थ की उमंग से आह्लादित हो उठा। समता की सहृदयता एवं मधुरता उनकी मुखाकृति पर उभर आई।

समभावी साधक पुरुषार्थ में रत रहता है किन्तु पुरुषार्थ की फल प्राप्ति को लेकर अपने मन को उद्विग्न नही बनाता है। ऐसा पुरुषार्थ भी अन्ततः निष्फल नहीं रहता, किन्तु जब तक सूर्य का आतप धरती के कण–कण को तपा नही देता है, तब तक वर्षा काल की वौछारे भी शीतलता प्रदान नही करती है।

❀ ❀ ❀

: ४ :

समता की साधना में जिस शक्ति-नियोजन से जीवन सुस्थिर होता है, वही शक्ति सच्चा पुरुषार्थ है। कामना पूर्ति की दौड में जो शक्ति चिन्तातुरता पैदा करे—वह सत्पुरुषार्थ नही कहलाता। सत्पुरुषार्थी सदैव इसी सत्य का चिन्तन करता है कि उसका धर्माधार सुदृढ़ वना रहे और इसी तथ्य की सतर्कता वरतता है कि उसका वह आधार उसकी किसी भी वृत्ति अथवा प्रवृत्ति से हिले नही। सन्तानहीन होने के कारण अपशकुन होने की वात ने महाराजा चन्द्रसेन के मन को कुछ समय के लिये कष्ट पहुंचाया किन्तु उन्होने शीघ्र ही उस मन स्थिति का नियन्त्रण मे ले लिया। उन्होने निश्चय किया कि वे चिन्ता कभी नही करेगे लेकिन उनका वह पुरुषार्थ भी सत्पुरुषार्थ की सीमा में ही होगा।

वस्तुत: जो अपने जीवन को समता पर आधारित करके धर्ममय वना लेता है, उसका चिन्तन भी सदा ही शुभ होता है। जैसे विचार वनते है, वैसी ही मुंह से वाणी निकलती है तथा वाणी के अनुसार ही आचरण का स्वरूप ढलता है। मन, वाणी और कर्म की एकरूपता मनुष्य के सवने वड़े सत्पुरुषार्थ के रूप मे प्रकट होती है। जीवन की जव ये तीनों शक्तियां एकाकार हो जाती हैं, तव वैसे जीवन में न तो वाह्य पदार्थो की कामना ही ठहरती है और न ही वैसी कामनाओ के लिये चिन्ता करने का प्रश्न उत्पन्न होता है। वास्तव मे तव वाह्य पदार्थो के लिए चिन्ता करने की आवश्यकता ही नही रह जाती है। तव वे वाह्य पदार्थ स्वत· ही उस जीवन के चरणों मे लोटपोट हो जाते है। कामनाओं के साथ जो उन वाह्य पदार्थो को पकडना चाहता है, उससे वे दूर भाग जाते हैं किन्तु निष्काम बनकर जो उनसे अपनी आसक्ति हटा लेता है, वे सभी वाह्य पदार्थ उसके पीछे-पीछे चलने लगते हैं। महाराजा चन्द्रसेन भी इसी जीवन शैली मे ढल रहे थे कि कामनाओ के पीछे अपनी जीवनी शक्ति विनष्ट नही की जानी चाहिये। वे यह धार चुके थे कि सत्पुरुषार्थ की लीक पर चलने से ही जीवन का विकास अविरल गति से आगे वढता जाता है।

उनकी अन्तरात्मा ने चन्द्रसेन महाराजा को प्रबुद्ध वनाया क्योंकि उन्होंने अपने जीवन की आन्तरिक वृत्तियों में सम-भावना का समुचित विकास कर लिया था। समता जव विकसित हो जाती है तो वह जीवन की गति के लिये प्रमुख सम्वल भी वन जाती है। एक समता के साधक का मन जब भी थोड़ा ऊपर-नीचे होता है तो वह अपनी आन्तरिकता में तन्मय हो जाता है जिससे आई हुई सामान्य सी दुर्बलता भी तत्काल दूर हो जाती है। यह यह स्वरूप-तन्मयता कहलाती है जिस अवस्था में साधक अपने ध्यान को अपने भीतर में केन्द्रस्थ कर लेता है। तन्मयता के अभ्यास के साथ सम्पूर्ण जीवन का संचरण ही स्वरूपाभिमुखी होकर चलता है। इस प्रकार की उच्च कोटि की साधना की सफलता के समय देवता भी उस साधक के समक्ष आकर नत मस्तक हो जाते हैं। उस साधक को तव किसी भी प्रकार की चिन्ता नहीं रहती है। चन्द्रसेन भी ऐसी ही साधना के पथ पर अग्रगामी हो रहे थे और अपने स्वरूप वोध के साथ सांसारिकता की चिन्ताओं से अलग हट रहे थे।

संसार मे ऐसे भी व्यक्ति होते हैं जो अपने जीवन मे धर्म को कोई स्थान नहीं देते हैं—यहां तक कि समता-साधना के लिये वैचारिक पुरुषार्थ भी नही करते है, उनका सारा पुरुषार्थ मात्र सांसारिक कामनाओं की पूर्ति में ही लगता है जिसे कुपुरुषार्थ के सिवाय और क्या कह सकते हैं? ऐसे व्यक्ति धर्म में तन्मय तो होते ही नहीं हैं। वे तो सदा भांति-भांति की चिन्ताओं से घिरे रहते हैं। चाहे शारीरिक हो या मानसिक पुरुषार्थ का क्रम तो अवाध गति से चलता रहता है। जो प्रवुद्ध वनकर उस पुरुपार्थ के क्रम को सत् श्रेणी का बना लेते हैं, वे तो अपने जीवन में समता की सफलता दिखा देते हैं किन्तु जो अपने पुरुषार्थ पर नियन्त्रण स्थापित करने में असमर्थ रहते है, कुपुरुषार्थ उन्हें नियन्त्रित्र करता रहता है और वैसे कुपुरुषार्थी व्यक्ति अपने दुर्लभ जीवन को निरर्थक वना लेते हैं। जैसे दिल की धड़कन वन्द नहीं होती, वैसे ही पुरुषार्थ की गति भी निरन्तर चलती रहती है। व्यक्ति का धर्ममय विवेक ही उस गतिमान पुरुषार्थ को जीवन—विकास की दशा में मोड़ कर अपना लक्ष्य सिद्ध कर सकता है। चन्द्रसेन का पुरुषार्थ भी तव तक सत्पुरुषार्थ

का रूप ले चुका था और जरा सा भटकने की दशा में ही उनकी अन्तरात्मा ने उन्हे पुनः मार्गस्थ कर दिया ।

अर्न्तचेतना ने महाराजा को परामर्श दिया कि समता धर्म से रगे हुए जीवन मे किसी भी प्रकार की चिन्ता का कोई स्थान नहीं होता है और कभी कोई चिन्ता बलात् भीतर घुस आई हो तो वह विवेकधारी जीवन उसके निवारण के उपाय भी खोज ही लेता है । इसके साथ ही महाराजा के मन मे उनकी वर्तमान चिन्ता के निवारण का एक उपाय भी सूझ आया । हकीकत में वह चिन्ता भी महाराजा की अपनी चिन्ता नही थी, वे तो अपने साधक जीवन मे सभी चिन्ताओं को समाप्त कर चुके थे किन्तु वे जनता तथा मंत्री की चिन्ता की ओर ध्यान दे रहे थे कि राज्य का भावी शासक भी उनकी तरह ही प्रजाहितकारी तथा जनप्रिय हो । जनता इस रूप में सोचती है और अपनी भावना को महाराजा के सामने व्यक्त करती है तो जनता की ओर से महाराजा का भी सत्पुरुषार्थ करने का अवश्य ही कर्त्तव्य बनता है । इसी दृष्टि से उन्हे उपाय सूझा कि वे देव को याद करे और उससे इस चिन्ता—निवारण के सम्बन्ध में मार्गदर्शन प्राप्त करे ।

महाराजा ने विचार किया कि देव अवधिज्ञान के धारक होते है अतः यह तथ्य बता सकते हैं कि उनके यहां पुत्र का जन्म होगा अथवा नही और होगा तो कब तब ? यदि देव अपने ज्ञान में इस भावी बात को देखकर बता देगा तो उस सूचना को वे प्रामाणिकता के तौर पर अपनी जनता को बताकर सन्तुष्ट कर सकेंगे ।

देवता को आह्वान करने का निश्चय बनते ही महाराजा उठ खड़े हुए । वे जानते थे कि इसके लिये तेले की तपस्या करनी होगी, क्योंकि इस तपस्या से देवता को उधर आने का संकेत मिलता है । अतः महाराजा अपने राजभवन के उस भाग में गये जिसे उन्होंने पौषधशाला का रूप दे रखा था । यह स्थान एकान्त, शान्त तथा धर्म साधना के अनुकूल था । उस पौषधशाला मे जाकर वे तीन दिन के तेले मे बैठ गये । वह तपस्या आध्यात्मिक शुद्धि हेतु नही की जा रही थी, वल्कि वांछित देवता को आमंत्रित करने के लिये थी ।

किसी के मन मे यह प्रश्न उठ सकता है कि क्या शास्त्रकारों

की व्याख्या की कसौटी पर यह तपस्या खरी उतरती है ? शास्त्र-कारों ने कहा कि तपस्या इस लोक के लिये नहीं करनी चाहिये, परलोक के लिये नही करनी चाहिये तथा यश कीर्ति के लिये नही करनी चाहिये अपितु केवल अपनी आत्मशुद्धि के लिये करनी चाहिये । जब वीतराग देवों की तपस्या के सम्बन्ध मे ऐसी आज्ञा है तो देवता का आह्वान करने के लिये तेले की तपस्या क्यो की जाती है ? और देवता का आह्वान भी यह तथ्य जानने के लिये कि पुत्र होगा या नहीं ? इस लौकिक कामना के साथ यह की जाने वाली तेले की तपस्या क्या इस लोक के लिये हुई या नहीं ? यह एक स्वाभाविक प्रश्न है जो तपस्या के स्वरूप का चिन्तन करने के समय उठ सकता है, किन्तु इसका समाधान भी गहराई से समझना चाहिये ।

ऐसी सम्यक् दृष्टि वाली आत्माए, जिन्होने अपना अन्तिम लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति का निर्धारित कर लिया है किन्तु जो कभी गृह-स्थाश्रम में स्थित है, उन आत्माओं के लिये गृहस्थाश्रम के कर्त्तव्यो का पालन करना भी आवश्यक होता है । ऐसे सद्गृहस्थ के समक्ष जब कोई विपत्ति आ जाती है तो उस दशा मे उसे अपने से किसी अधिक शक्तिशाली का सहारा भी लेना पड़ता है । वर्तमान की परि-पाटी मे यों समझिये कि कोई सम्यक्दृष्टि सद्गृहस्थ किसी कायदे—कानून के चक्कर में फंस जाय तो उसे वकील का सहारा जिस रूप में लेना पड़ता है, उसी रूप मे महाराजा चन्द्रसेन ने राज्यगत उस विपत्ति में अपने से अधिक शक्तिशाली देवता का सहारा पाने के लिये उसका आह्वान किया तो वैसा करके उन्होने अपने गृहस्थाश्रम एवं राज्य के उत्तरदायित्व के प्रति अपने एक कर्त्तव्य का ही निर्वाह किया ।

महाराजा चन्द्रसेन एक सद्गृहस्थ तथा एक उत्तरदायी शासक का कार्यभार भी निवाहते थे तो एक साधक के रूप में धर्म साधना भी तन्मयतापूर्वक करते थे । यह तेले की तपस्या उनकी पहली हैसियत मे की गई थी, साधक की हैसियत में नही । उस तेले को उन्होने धर्म का कार्य नही समझा, अतः उनकी सम्यक्दृष्टि मे कोई दोष नहीं आया ।

यह भी पूछा जा सकता है कि महाराजा सांसारिक कार्य

हेतु देवता का आह्वान करने का तेला कर रहे थे तो वे धर्माराधना की जगह पौषधशाला मे क्यो बैठे ? इसका समाधान इस तरह लिया जा सकता है कि सम्यक्दृष्टि सद्गृहस्थ भी जब लौकिक व्यवहार के लिये किसी शक्ति से सहायता लेना चाहता है तो जो वीतरागी आत्माओ मे श्रद्धा और आस्था रखने वाले देवता होते हैं, उनका सम्बल लिया जा सकता है तथा उनके आह्वान हेतु किया जाने वाला तेले का तप भी धर्माराधना के स्थान पर किया जा सकता है । उस सदगृहस्थ की आन्तरिक भावना मोक्षप्राप्ति के लक्ष्य की ओर ही लगी हुई होती है और इस कारण वह ऐसे किसी देवता का आह्वान नही करता जो उत्पाती हो अथवा जिसके लिये किसी भी प्रकार की हिंसा करनी पड़ती हो । जहा धूप, लोबान, अगरबत्ती आदि तक जलाकर हिंसात्मक कार्य किया जाता हो, वैसे देवता का वह सम्यक्दृष्टि सद्गृहस्थ कभी आह्वान नही करेगा ।

कई लोग कहते है कि हमारे पूर्वज मर कर देवता बने हैं और वे उनको पूजते है या उनकी रात जगाते है । किन्तु क्या वे वास्तविकता का पता लगाते है ? जब तक कोई देवता आपकी परीक्षा या आपके आह्वान के बाद पूछताछ पर खरा नही उतरे तब तक यह नही समझना चाहिये कि वे पूर्वज देव योनि मे गये है । देवता का आह्वान करना है तो उसमे किसी हिंसाभरी अर्चना का कोई स्थान नही होना चाहिये । देव को बुलाने के लिये तेले की तपस्या हो तो तीन दिन के लिये मन की एकाग्रता भी आवश्यक होती है ।

महाराजा पौषधशाला मे जाकर बैठे और तेले की तपस्या के साथ तीन दिन तक मन की एकाग्रता भी साधते रहे । उनके उस प्रकार के श्रेष्ठ आह्वान का परिणाम भी सामने आ गया ।

तेले की तपस्या की पूर्ति के साथ ही महाराजा ने जिस देवता का आह्वान किया था, वह देवता उनके समक्ष उपस्थित हुआ । उसने पूछा कि उसको किस प्रयोजन से बुलाया गया है ? तब महाराजा ने शालीनता के साथ उत्तर दिया—हे देव, मैं आपको कष्ट नही देना चाहता था किन्तु जनता मुझे बार बार कहती और अपने राज्य का भविष्य पूछती रही है, इस कारण आपका आह्वान अनिवार्य हो गया । स्थिति यह है कि मेरे कोई पुत्र नही है और जनता **इस तथ्य**

से आशंकित है कि मेरे बाद उनको इस राज्य का न जाने कौन और कैसा शासक प्राप्त होगा ? जनता मेरी सेवाओं से प्रसन्न है तथा चाहती है कि उसका भावी शासक भी मेरे जैसा ही हो और ऐसा चूंकि मेरा अपना पुत्र ही हो सकता है, आपसे यह जानकारी लेने की नितान्त आवश्यकता हो गई कि भविष्य में मेरे पुत्र होगा अथवा नहीं और होगा तो कब तक होगा ?

महाराजा देवता को कहते रहे—मै तो सम्यक् दृष्टि होकर समता की साधना मे निरत हू अतः पुत्र की कामना भी मेरे लिये चिन्ता का कोई कारण नही है। यह जानकारी भी मैं प्रजा की भावना के अनुसार तथा प्रजा के हित की दृष्टि से ही लेना चाहता हूं। अतः आपको कष्ट देने का यही अभिप्राय है कि प्रजा की भावना पूर्ण होगी अथवा नही ? आप इस तथ्य को अपने अवधि ज्ञान मे देखकर कृपया खुलासा कीजिये जिसमे यह भी बताइये कि मेरा होने वाला पुत्र क्या मेरे आत्मीय गुणो के अनुरूप ही होगा ?

तब देवता उत्तर देने लगा—राजन्, मैं देव-शक्ति रखता हूं फिर भी यह सामर्थ्य देवो में नही होता कि जिसके कर्म फलानुसार पुत्र होने ही वाला नहीं हो, उस को भी देवता पुत्र दे दे। अन्य देवताओं के समान मैं भी अपने अवधि ज्ञान की सहायता से केवल इनना ही बता सकता हूं कि पुत्र होने के सम्बन्ध मे आपके कर्मो की भावी स्थिति क्या है ? एक वात और कह दूं कि ये कर्म भी धर्माराधना से क्षय होते है, कारण धर्म एक कल्पवृक्ष के समान होता है। कर्मो के क्षय के साथ भी नवीन प्राप्ति की सम्भावना का योग बनता है। शुभ योगो की प्राप्ति को रोकने वाले कर्मों के टूटने से ही शुभ परिणाम सामने आते है।

देवता ने आगे कहा—महाराज, आप पुत्र प्राप्ति के लिये चिन्ता नहीं करते हैं—यही एक धर्माराधक के लिये उचित मनः स्थिति है। यदि चिन्ता आती है तो समझना चाहिये कि उसकी धर्माराधना मे कहीं न कही कमी है। शुद्ध मन से तन्मयतापूर्वक धर्म की आराधना की जाती है तो विविध प्रकार के कर्म वन्धन भी टूटते है। अन्तराय कर्मो की स्थिति भी इससे अनुकूल वनती है। आपने अच्छा मार्ग अपनाया है और यह मार्ग आपके लिये अवश्य ही

श्रयकारी सिद्ध होगा ।

देवता कहता गया—हे राजन्, आप इसी प्रकार धर्म की आराधना करते रहिये और मन को चिन्तित मत बनाइये जिससे अन्तराय कर्म अवश्य ही क्षय होगे और वांछित फल की प्राप्ति होगी। आवश्यक है कि आप श्रेष्ठ मत का निरन्तर अनुसरण करते रहें, कहीं भी मिथ्यात्व को बीच में न आने दे तथा धर्म पर सुदृढ़ आस्था रखकर चलते रहें ।

अन्त मे देवता ने अपनी ज्ञानपूर्ण भविष्यवाणी कर ही दी । उसने कहा—हे राजन्, मैंने अपने अवधि ज्ञान में स्पष्ट रूप से देख लिया है कि आपको अवश्य ही सन्तान-पुत्र प्राप्ति होगी । पुत्र नहीं होने की तो कोई स्थिति है ही नहीं । इस दिशा मे आगे बढ़ने के लिये कौनसे शुभ कार्य करने हैं, कौनसा पुरुषार्थ आजमाना है तथा किस प्रकार की साधना साधनी है—इसका स्पष्टीकरण मै आपको कर देना चाहता हूं ।

देवता ने भलामण दी—हे राजा, आपने अपना जीवन ऊंचा उठा लिया है किन्तु एक शासक की दृष्टि से यह भी आपका ही कर्त्तव्य बनता है कि आप सारी जनता के जीवन को भी ऊपर उठावे । जनता के स्वस्थ जीवन का आधार तोड़ने वाले होते हैं कुव्यसन, अत: आप ध्यान देकर जन जीवन में फैलने वाले कुव्यसनों को समाप्त करने की प्रेरणा प्रदान करे । इन कुव्यसनों के माध्यम से ही जन जीवन मे विकारो की वृद्धि होती है तथा धीरे-धीरे जनता का जीवन अपार दु:खो से भर जाता है ।

एक नौका में कई लोग सवार हो और उनमें से केवल कुछ ही अगर नशे मे धुत हो जाय तथा उत्पात मचाने लगें तो क्या वे सारी नौका को खतरे मे डालेगे अथवा नही ? आज उन्नत समाज के सदस्य कहलाने के बावजूद क्या कई लोगों मे शराब, गाजा, बीड़ी, सिगरेट आदि की बुरी लते बढ़ नही रही है ? यदि ऐसा है तो क्या ऐसे कुछ लोगो के दुष्कृत्यो से भी सारा समाज प्रतिष्ठा नही खोयेगा ? यह सभी का कर्त्तव्य है कि अपने बीच कही भी बढ़ने वाली बुरी लतो को रोका जाना चाहिये तथा संस्कारहीन लोगों मे नये उन्नत संस्कारों का बीजारोपण करना चाहिये । श्रेष्ठ सस्कारो से ही मानव

जीवन का विकास होता है तथा नई आध्यात्मिक ऊंचाइयां प्राप्त की जा सकती है। आध्यात्मिक महापुरुषों के चरणों में देवयोनि के देवता तक अपना मस्तक झुकाते है। उनका यह वन्दन मात्र शरीर पिंड को नहीं होता है, बल्कि शरीर पिंड में उद्भूत होने वाली आध्यात्मिक साधना का होता है। देव भी मानव शरीर की अर्चना करे उसके लिये शरीर की सुन्दरता नहीं, आत्मा की सुन्दरता प्रकट होनी चाहिये। आन्तरिकता जब शुद्ध, सशक्त तथा स्वरूपवान् बन जाती है तब उसकी सेवा और सहायता के लिये देवता भी हाथ बांधे खड़े रहते है।

तब देव ने राजा को यह कहकर प्रेरणा दी कि हे राजन्, आप सबके साथ अपनी आत्मीय भावना को परिपुष्ट बनाते रहें और अपने आन्तरिक सद्गुणों मे वृद्धि करते रहे। क्योकि पिता के जीवन में विकसित हो रहे सद्गुणो का प्रवेश और पोषण भी उसके पुत्र के उभरते हुए जीवन में होता है। पुत्र को पिता अपनी आत्मा के तुल्य समझता है तो पुत्र भी पिता को सम्मान की दृष्टि से देखता है। यदि पिता पुत्र को नीची भावना से देखे तो पुत्र का उत्थान कठिन हो जाता है। पारस्परिक उच्च भावनाओं के रहने से पिता की जीवन विकास की विरासत समुचित रूप से पुत्र को प्राप्त होती है तथा पुत्र का जीवन विकास भी पिता के विकास के अनुरूप बनता है। राजा के लिये उसकी जनता भी पुत्र के ही समान होती है अत जनता के सार्वजनिक जीवन मे भी सुसंस्कारों का विकास हो, इस दिशा में भी आप सदैव सतर्क एव प्रयत्नशील रहे।

देवता तो चन्द्रसेन महाराजा को गुणशील बनने की प्रेरणा दे रहा था किन्तु क्या वर्तमान में सभी लोगों का यह कर्त्तव्य नही है कि वे अपनी पूरी समाज के क्रियाकलापों पर अपनी नजर दौड़ावें तथा उनमे ऊंची-नीची परिस्थितिया पैदा हो रही हो तो उनको सुधारने की प्राणपण से चेष्टा करे ? किस तरह की बाते स्वस्थ सामाजिक धरातल के अनुकूल है और कौनसी प्रतिकूल बाते लोगो के आचरण में स्थान पा रही है—इस पर सभी को गहरा चिन्तन करना चाहिये और प्रतिकूल बातों को मिटाकर अपने सामाजिक दायित्व की पूर्ति करनी चाहिये। आज वृद्ध जन समझते हैं कि युवकों में आवश्यक सत् चेतना का विकास नहीं हो रहा है तो क्या

वृद्ध जन यह भी सोचते है कि ऐसा किन कारणों से नही हो रहा है तथा युवा चेतना के सच्चे विकास के लिये क्या कार्य किये जाने चाहिये ? केवल आलोचना से कार्य नही होता है—अपने स्नेह और सहयोग से कमियां दूर की जानी चाहिये तथा पूरे समाज मे श्रेष्ठ संस्कारो का उन्नतिकारक वातावरण बनाना चाहिये।

गांधीजी के बारे में कहा जाता है कि वे अपनी बात मनवाने की कला जानते थे। वे नवयुवको पर अपनी बात थोपते नही थे, बल्कि समस्या का विवरण बताकर वे पूछते थे कि उनका क्या समाधान है ? जब नवयुवक कह चुकते और अपने समाधान से उन्हें भी सन्तोष नही होता, तब गांधीजी अपना समाधान बताते, जिसे नवयुवक प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लेते। गांधीजी अन्दर की दृष्टि से देखते थे तथा सबको साथ लेकर चलने का उपक्रम करते थे। उनकी इस कला का ऐसा अच्छा असर पड़ा कि बाद के दिनों मे जब वे कोई राय देते तो बिना ननू नच किये उसे बड़े से बड़ा नेता भी मान लेता था। पं० नेहरू भी कहा करते थे कि विरोध की कई बाते वे सोचकर गांधीजी के पास जाते थे मगर उनके सामने जाने के बाद विरोध करने की उनकी इच्छा ही नही होती थी और वे गांधीजी के सुझावो को यथावत मान लिया करते थे। सामने वाले को शान्ति से सुनने तथा उसका विचार—भण्डार खाली हो तब तक प्रतीक्षा करने के बाद उसे बड़े लोग अपने सुझाव बतावे तो वे प्रभावशाली ढंग से उनके लिये ग्राह्य बन जाते है। ऐसी कला धार्मिक, सामाजिक या राष्ट्रीय क्षेत्रों में काम करने वाले लोगों में आनी चाहिए क्योकि इसके आधार पर अधिक से अधिक लोगों को अपने साथ लेकर चला जा सकता है।

जिन भाई–बहिनों ने अभी ही रतलाम में सम्पन्न हुए पच्चीस भागवती दीक्षाओ के प्रसंग को देखा होगा, उनका ध्यान वहा की व्यवस्था की तरफ गया होगा। किस प्रकार बुजुर्गो तथा युवको ने मिलकर अवसर को सफल बनाया - वह एक सराहनीय बात थी, किन्तु दूसरी बात और भी अधिक सराहनीय रही कि सभी मान्यताओं वाले हिन्दुओ तथा मुसलमानों तक ने जी जान से सहयोग दिया। यह पी० सी० चौपड़ा साहब का कुशल किन्तु लचीला व्यक्तित्व था

कि वे इतने बड़े समाज को अपने साथ लेकर उस प्रसंग को प्रभावशाली वना सके। जनता और नेता के बीच ऐसा ही सौहार्दमय सम्बन्ध हो तभी संगठनात्मक कार्यों में सफलता प्राप्त होती है।

महाराजा चन्द्रसेन को भी देवता ने यही मुख्य भलामण दी कि वे जनता के साथ इस तरह प्रगाढ सम्बन्ध बनावे कि जनता भी कुव्यसनों से मुक्त होकर आदर्श जीवन जीने की कला सीखने लगे। राजा और प्रजा जब आत्मीयता की तरलता में डूब कर साथ-साथ चलते है तो उस राज्य का उत्थान भी आसान हो जाता है। केवल मृत्यु के मुंह से किसी को कोई बचा लेता है तो वह उसके प्रति जीवन भर के लिये आभारी बन जाता है। किन्तु कोई यदि किसी के जीवन को विकारों मे बरबाद हो जाने से बचाकर उसे आध्यात्मिक आदर्शों की तरफ मोड़ देता है तो वह आभार कितना अमूल्य होता है? इसी तरह जो अभयदान देता है तो वह उसके जीवन को सुख शान्ति से परिपूरित बना देता है और उसका वह ऋण भी अपूर्व होता है।

देव ने महाराजा चन्द्रसेन से इसी रूप में जनता के जीवन को उन्नत बनाने की सीख दी। यही नही, देव ने आगे महाराजा को अपने सत्पुरुषार्थ की क्या विधि अपनानी चाहिये, उसका भी विस्तार से विवरण दिया।

सत्पुरुषार्थ कभी निष्फल नही जाता, क्योकि उसमें विस्तृत हित साधना का भाव रहता है। जो अपनी स्वार्थभरी कामनाओं की पूर्ति के लिये सारा पुरुषार्थ जुटाना चाहते है, वे सत्पुरुषार्थी नहीं होते। चन्द्रसेन का वह सत्पुरुषार्थ अब फलीभूत होने जा रहा था।

❀ ❀

: ५ :
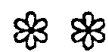
महाराजा चन्द्रसेन का सत्पुरुषार्थ अव प्रतिफलित होने जा रहा था। महाराजा का उत्तराधिकारी उतना ही सद्गुणी, जन-हितकारी एव लोकप्रिय हो—ऐसी जनता की भावना साकार स्वरूप ग्रहण करने की ओर उन्मुख हो रही थी। देव वह विधि वता रहा था जिसका अनुपालन करने के पश्चात् चन्द्रसेन की झोली पुत्ररत्न से भरने वाली थी। अध्यवसाय शुद्ध लक्ष्य को लेकर चले तो वह कभी भी विफल नहीं होता है। ये राजा सामायिक की साधना कर रहे थे जिसमें उनकी अटूट श्रद्धा उत्पन्न हो गई थी। पटरानी की प्रेरणा और सन्तों की समीपता ने इनके जीवन मे जो आमूलचूल परिवर्तन कर दिया था, उसी का यह सुफल था कि उनका लक्ष्य शुद्ध था तो मार्ग भी शुद्ध और समतापूर्ण। इस मार्ग पर जो उनका अध्यवसाय आरम्भ हुआ तो उसकी सफलता के लिये देवता का सहयोग भी उन्हे प्राप्त हो गया।

देवता ने आश्वस्त करते हुए महाराजा को कहा कि उनको पुत्ररत्न की अवश्य ही प्राप्ति होगी तो उनके मन में सात्विक हर्ष की लहर दौड़ गई। क्योकि उन्हे अव जनता को उसकी भावना की सम्पूर्ति का सवाद सुनाने का शुभ अवसर प्राप्त हो जायगा। उनकी हार्दिक इच्छा थी कि उनका राज्य उनके वाद भी सुव्यवस्थित रीति से चले और उनकी प्रजा श्रेष्ठ संस्कारो से मण्डित होकर सुखी एवं समृद्ध रहे।

तब देवता ने महाराजा के सामने उस अनुष्ठान का उल्लेख करना आरम्भ किया जिसे पुत्र प्राप्ति के पहले उन्हें सम्पन्न करना था। देवता कहने लगा—महाराज, मैं जो आपको अनुष्ठान वता रहा हूं आपका एकाग्रता एवं निष्ठा के साथ सम्पन्न करना होगा। इस अवधि मे किसी भी क्षण आपके मन मे धर्म के प्रति विमुखता नही आनी चाहिये—चाहे आपके सामने उपस्थित भीषण सकट आपके चित्त को चलायमान करने लगे। इस अनुष्ठान की सम्यक् सम्पूर्ति के वाद आपके सम्पूर्ण जीवन में मगल ही मंगल वरतेगा। अनुष्ठान की इस अवधि में भी आपके सामने कष्ट और संकट आवेंगे

किन्तु यदि आप समभाव के साथ सुदृढ़ता अपनाये हुए रहेगे तो निश्चय ही सफलता आपके चरण चूमेगी । उस विजयश्री के बाद चहुं ओर आनन्द ही आनन्द होगा ।

देवता कहता रहा—राजन् आप अब दक्षिण दिशा में प्रयाण करें । इस दिशा में करीब पांच सौ मील चलने के बाद आपको चम्पा नाम का एक बगोचा मिलेगा । अपनी इस यात्रा मे आप पूर्ण निर्भीकता रखे । जहां भी किसी कारण मन डांवाडोल होने लगे तो सामायिक की आराधना आरम्भ कर दे, ताकि समता के साथ आपको धंर्य और गांभीर्य प्राप्त हो जाय । सामायिक के सार को धारण करते हुए चलेंगे तो आपको किसी तरह की चिन्ता करने की जरुरत नही है ।

देवता का निर्देश चल रहा था, वह बोला—हे राजन्, आप नवकार मंत्र की शरण लेकर आगे बढ़े । आपका इतने घने जंगलो में जाने का पहले काम नही पड़ा होगा लेकिन आपको यह चम्पा नाम का जा बगीचा मिलेगा, वह बहुत ही रमणीय है । झूमते हुए हरे भरे वृक्ष, खिलते हुए रग-विरगे फूल और प्रकृति के मनोहारी दृश्य किसी के मन को सहज ही मे उलझाने वाले हैं । उस बगीचे मे आपको शतदल नामक एक पुष्प मिलेगा । उसकी सुन्दरता को देखकर किसी का भी उस पर मोहित हो जाना आसान है । इस मोह में सांसारिक वृत्तियो वाले मनुष्य तो तुरन्त फस जाते है क्योकि रंगों का आकर्षण उन्हे उलझा देता हे । किन्तु आपके मन में उन दृश्यो को देखकर भी समता-भाव बना रहना चाहिये । आपके लिये ऐसी दृढ़ता को बनाये रखना कठिन भी नही होगा, क्योंकि आप तो सामायिक के स्थिर साधक है । कही भी आकर्षण मे कतई नही फंसे, क्योंकि जरा सी भी कमजोरी आई तो आगे बढ़ना रुक जायगा ।

"राजन्, उन सुन्दर पुष्पो के चारो ओर भंवरे मंडराते हुए आपको दिखाई देगे जो उन पुष्पो से रस ग्रहण करत हुए मिलेंगे । शतदल कमल का रस भंवरो को बहुत प्रिय होता है । भवरे उससे विलग नही होना चाहते हैं । वहा पर आपको सूर्यमुखी पुष्प भी दिखाई देगा जो सूय की ओर ही अभिमुख रहता है तथा सूर्य के अस्त हो जाने पर कुम्हला जाता है भंवरा बहुत ही रस लोलुप होता

है—इतना रस लोलुप कि अपने प्राणों की रक्षा का भान भी भूल जाता है। इसीलिये कवि ने भवरे को सकेत करते हुए कहा है—हे भंवरे, तू रस के लालच मे अभी तक कमल के फूल पर क्यो बैठा हुआ है क्योकि सूर्य अस्त होगा तो कमल मुरझा जायगा और तू उसके भीतर बन्द हो जायगा। रात्रि पर्यन्त वन्द रहने के वाद सुबह हाथियो का दल आयेगा जो कमल को उखाड़ कर फेंक देगा जिसके साथ ही तुझे भी अपने प्राणो से हाथ धोना पड़ जायगा। कवि ने यह बात भवरे को क्या, मोह मे फसे हुए मनुष्य को ही कही है जो विषय-वासनाओ के मोह मे इस तरह भान भूला हुआ है कि न तो उसे इस दुर्लभ मानव जीवन का सदुपयोग करने का ध्यान है और न ही काल द्वारा कभी भी ग्रसित हो जाने का भान।

देव ने चन्द्रसेन को चेतावनी दी—आप फूलो की सुन्दरता मे अपना भान न भूल जावे। वगीचे मे ही उन फूलो की क्यारियो से जब आप आगे बढेगे तो आपको एक सुन्दर वापी (बावडी) दिखाई देगी। वहा पर भी आपको आकर्षक दृश्य दिखाई देगे किन्तु उनमे भी आप अपने मन को प्रलुब्ध न बनने दे।

देवता बताता रहा—महाराज, उस बावड़ी के पास आपको बहुत ऊंचा और सुन्दर एक वृक्ष मिलेगा। उस बावडी के पास आप रुके नही, क्योकि वह बड़े-बड़े खतरो भरी बावडी है। आधी रात के समय उस बावडी मे से एक मणिधारी सर्प निकलता है जो बहुत ही विशाल और विकराल है। वह सर्प अब तक कई लोगो को डस कर अपने विष से मार चुका है। आप बावड़ी पर पहुचते ही उस ऊंचे वृक्ष पर चढ जावे और सबसे ऊंची शाखा पर बैठ जावे। शाखा पर बैठकर नवकार मत्र का जाप करते हुए आधी रात होने की इन्तजार करे ताकि बावडी से निकलते हुए उस मणिधारी सर्प को आप भली प्रकार देख सके।

चन्द्रसेन को जिज्ञासा हुई कि उस वावडी में से सर्प कहां से और किस प्रकार निकलता है और क्या वह पानी में रहने वाला सर्प है? देव ने उनकी शंका का समाधान किया कि उस सर्प के माथे पर एक बहुत बडी मणि है और मणि के प्रभाव से जब वह चलता है तो पानी दो भागो मे फटता रहता है और उस सर्प को खुला मार्ग

मिलता रहता है। इस तरह वह सर्प बावड़ी के पानी से बाहर आ जाता है।

देवता ने समझाया—आप उस मणिधारी सर्प को देखकर भी घबरावे नही और उस ऊंची शाखा पर बैठे रहकर उस सर्प की करतूते देखते रहें। जब वह सर्प बावड़ी के भीतर से निकल कर बाहर आ जायगा, तभी उसका प्रभाव आप को दिखाई देगा। उस सर्प की मणि में ऐसी शक्ति है कि उसका आभामय प्रकाश चौबीस मील की दूरी तक फैल जाता है। उस समय सामान्य व्यक्ति तो बेहद डर जाता है। लेकिन राजन्, जो भयभीत हो जाता है, वह अपना लक्ष्य भी खो देता है और अपने जीवन को भी नष्ट कर देता है। उसका प्रकाश इतना तीव्र होता है कि साधारणतया आंखे चकाचौध हो जाती है। जैसे दीपक की लौ या कि बल्ब का प्रकाश पतंगे को अपनी तरह खीचता है और पतंगा उस पर झंपापात करता हुआ अपने प्राणो को होम देता है उसी प्रकार उस मणि का प्रकाश भी मनुष्य को अपनी तरफ खीचता है। जो उस आकर्षण में मुग्ध बन कर खिंचा चला जाता है, वह अपने प्राणों को बचा नहीं पाता है, किन्तु आपके मन मे तो समता साधना का दिव्य प्रकाश फैला हुआ है अत· मणि का वह प्रकाश आपको आकर्षित नही करेगा--ऐसा मेरा विश्वास है। इसी तरह आपका आत्मबल भी इतना मजबूत है कि आप उस सांप की विकरालता से भी भयभीत नही होगे। निर्भय अवस्था मे आप उस मणि के विस्तृत प्रकाश में चारो ओर की वस्तुएं तथा गतिविधियां स्पष्ट रूप से देख सकेंगे। सर्प सदा अपनी मणि को किसी ऊंचे स्थान पर रखकर उसके प्रकाश में अपना खाद्य ढूंढने के लिये इधर उधर जाता है। लेकिन इस सर्प मे आप एक विशेषता देखेंगे जो दूसरे सर्पो में नही मिलती है। मणि के उस प्रकाश में उसको जो खाद्य मिलता है, उसे लेकर वह वापिस अपनी मणि के पास आ जाता है।

महाराजा को विशेष ध्यान दिलाते हुए तब देवता ने आगे कहा—हे राजन्, अब आप ध्यान से सुनिये कि आपको उस समय मे क्या करना है? उस बावड़ी के पास वाले वृक्ष की ऊंची शाखा पर बैठकर आधी रात में आपको सर्प के बाहर निकलने की प्रतीक्षा

करनी होगी । ज्योंही सर्प वाहर निकले और अपने सिर से मणि को उतार कर ऊंचे स्थान पर रखे तव आप सावधान हो जावे ।

देवता कह रहा था—आप उस सर्प को देखकर तनिक भी नही डरें और न ही उसे मारने का उपक्रम करे, क्योकि आप सम्यक्-दृष्टि साधक हैं और आपको निरपराध प्राणी पर प्रहार करना कतई उचित नही है । आप तो ध्यानपूर्वक उस सर्प की चर्या को देखते रहे । वह सर्प आपकी कार्य-सिद्धि में कतई वाधक नही होगा । आपको अहिसक रीति से उस सर्प को वश में करना होगा । उसको वश में कर लिया तो फिर सफलता निश्चित है ।

चन्द्रसेन ने जानना चाहा—हे देव, उस सर्प को वश में करने का मेरी कार्य-सिद्धि से भला क्या सम्वन्ध हो सकता है ?

चन्द्रसेन की जिज्ञासा के उत्तर मे देव ने इतना ही कहा कि उस सर्प से मणि प्राप्त कर ले और इतना कह वह वहां से चला गया । देव इस दृष्टि से वहा से चला गया कि अपने सत्पुरुषार्थ का मार्ग स्वयं राजा को ही खोजना चाहिये—इस वारे मे कोई निर्देश नही देना चाहिये । इस कारण उसने इतना ही कहा—वस आप तो मणि प्राप्त करले और उसके वाद सारे प्रसग हितकारी ही वनेगे तथा आपका मनोरथ भी पूर्ण होगा । महाराजा मन में विचार करने लगे कि देवता के इस सक्षिप्त कथन का क्या रहस्य है ? वे भी यह सोचने लगे कि सर्प विकराल है, फिर भी उसको अहिसक रीति से वश मे करना है—यह कैसे सम्भव हो सकेगा ? राजा ने अन्ततोगत्वा सोचा कि देवता तो संकेत करके चला गया है, अव तदनुसार निर्देशो को कार्य रूप तो उसे ही देना होगा । यह सोचकर वे आगे के कार्यक्रम पर विचार करने लगे । उनके सामने उस अपरिचित स्थान तक पहुचने तथा मणि प्राप्त करने के कार्य में सफलता प्राप्त करने के प्रश्न तो थे ही, यह भी समस्या उसके सामने थी कि अपनी अनुपस्थिति में राज्य व्यवस्था के संचालन का क्या होगा ?

फिर भी महाराजा चन्द्रसेन ने अपनी कार्यसिद्धि का पहला चरण तो पूरा कर ही लिया था कि तेले की तपस्या के प्रभाव से देवता उपस्थित हो गया, उसने पुत्र प्राप्ति का निश्चित संयोग भी

वता दिया तथा आवश्यक निर्देशों से कार्य सम्पन्न करने की भलामण भी उसने दे दी। श्री कृष्ण महाराज ने भी इसी तरह तेले की तपस्या करके देवता को बुलाया था और उससे पूछा था कि मेरी माता देवकी की कुक्षि से मेरे छोटा भाई उत्पन्न होगा या नही, क्योंकि माता की छोटे वच्चे को रमाने की बड़ी उग्र भावना हो गई थी। तव भी देव ने प्रकट होकर श्री कृष्ण को बता दिया था कि उनके छोटा भाई अवश्य होगा। इस प्रकार पहला चरण पूरा हो जाने के वाद महाराजा चन्द्रसेन ने आगे की योजना पर विचार करने के लिये अपने दीवानजी एवं निकटस्थ पदाधिकारियों को बुलाया।

धर्म को कल्पतरु की उपमा दी गई है। जैसे कल्पतरु मन-वांछित फल देता है, वैसे ही धर्म की शुद्ध आराधना से मनुष्य के मनोरथ पूरे होते है। धर्म को आराधना की पहली सीढी यह मानी गई है कि कम से कम व्यर्थ के पाप कार्य न किये जाय। व्यर्थ के पाप कार्य वे, जिनके करने का वर्तमान जीवन से कोई सम्वन्ध नहीं होता है। जैसे कोई आपसे यह कहे कि सोने के तख्त पर बैठना छोड़ दीजिये तो क्या आप यह त्याग नही ले सकते ? यह आप जानते हैं कि आपके घर में सोने का तख्त है नही और न होने की उम्मीद है, फिर विना कष्ट का यह त्याग कर लेने से क्या आपत्ति हो सकती है ? किन्तु ऐसा त्याग भी धर्म का कारण होता है। ऐसे पदार्थो का त्याग कर लेने से भी इच्छागत पाप रुक जाता है और इच्छापूर्वक उनका त्याग कर लेने से उनसे सम्वन्धित क्रिया जीवन में नहीं लगती। अतः ऐसे व्यर्थ के पाप को रोकने का प्रयास करना भी धर्म रूपी कल्पतरु की छाया मे वैठना ही होगा।

ऐसा ही महात्मा वुद्ध के पूर्व जीवन का एक प्रसंग है। एक जन्म में वे चन्दन गोह के रूप में थे। गोह की पकड़ वहुत मजवूत होती है। यहां तक कि रस्सी से वाध कर इसको ऊंची दीवार पर फेंकते हैं तो वह वहां वड़ी मजवूती से चिपक जाती है। फिर रस्सी को पकड़ कर सोधी दीवार पर भी ऊपर चढा जा सकता है। तो वह चन्दन गोह जंगल में रहती थी। उसी जगल में एक ढोंगी साधु कुटिया वनाकर रहने लगा। उसका इस तरह अकेले रहने का मकसद लोगों की नजरों से वचकर मनमाने काम करना था।

अधिकांशत: अकेले रहने वाले साधु का लोग विश्वास नहीं करते हैं और यह सही भी है, क्योंकि अकेला साधु दिन रात क्या करता है, कैसे रहता है उसे देखने—जांचने वाला भी कोई नही होता है और एकान्त व गोपनीयता पाप तथा प्रपञ्च का कारण बन जाती है। आज भी जो एकाकी साधु चलते है, वे दावा करते है कि वे उत्कृष्ट साधुता का पालन करते है किन्तु प्रश्न उठता है कि यदि वह वास्तविक साधु है तो दूसरो के साथ हिल-मिल कर क्यों नहीं चल सकता है ? उसके अकेले रहने का अधिकतर कारण तो दम्भ या मान ही होता है कि वही अकेला सच्चा साधु और बाकी सभी साधु खोटे। इसलिये गृहस्थों मे भी यह विवेक होना चाहिये कि किसी को साधु वेश में देखकर ही भक्ति न करने लग जाये, बल्कि पहले यह परीक्षा करे कि वह साधु वेश के अलावा साधुता की कसौटी पर भी खरा उतरता है या नही ? इसी दृष्टि से भगवान् महावीर की आज्ञा है कि साधु कम से कम दो तथा साध्वियां कम से कम तीन विहार करें—एकलविहार उचित नही बताया गया है। खैर ! उस जंगल मे वह अकेला साधु रहता था। साधु को देखकर चन्दन गोह के मन मे शुभ भावना जागी कि मेरे समीप ही इनके रहने से मुझे हमेशा इनके पवित्र दर्शन होते रहेंगे। वह चन्दन गोह रोज सुबह साधु की कुटिया के बाहर जाकर साधु को नमस्कार करती और चली जाती। यह उसका नित्य क्रम हो गया। एक दिन साधु के पास उसका कोई भक्त मांस का भोजन लेकर आया। साधु ने मास खाया और पूछा कि यह मांस इतना स्वादिष्ट कैसे है ? भक्त ने कहा कि यह मांस चन्दन गोह का है। इसलिए स्वादिष्ट है। यह सुनकर उस साधु के मन में विचार आया कि एक चन्दन गोह रोज उसके दर्शन करने के लिये आती है सो यदि वह उसे पकडले और मारकर खावे तो वैसा ही स्वाद वह फिर लें सकेगा। यह सोचकर वह लोहे का चिमटा हाथ में लेकर बैठ गया ताकि चन्दन गोह के आते ही उसे मार सके। लेकिन उस चन्दन गोह ने दूर से ही उस साधु का वह रूप देखा तो वह चौंक उठी। उसने सोचा कि यह साधु तो नकली और हिंसक लगता है। इस कारण वह दूर मे ही वापिस जंगल में चली गई। साधु गोह को मारने की क्रूर भावना के साथ वहां बैठा ही रहा। कहने का अभिप्राय यह है

कि साधु का आचार–विचार बड़ा ऊंचा होना चाहिये तभी वह श्रद्धा का पात्र बनता है ।

महाराजा चन्द्रसेन के मन में विचार जागा कि मैं ऐसे ऊंचे आचार-विचार वाला साधु नही बना हूं । अभी तो मै श्रावक ही हूं। फिर भी इस स्तर से मुझे कल्पतरु के समान धर्म की आराधना करनी है क्योंकि जब तक अन्तराय कर्म बने रहते हैं तब तक मनो-वांछित प्राप्ति नही होती है किन्तु धर्माराधना करते-करते वे कर्म जब टूट जाते हैं तो फिर वह प्राप्ति भी दूर नहीं रहती है । इस संकल्प के साथ महाराजा ने निर्देशानुसार यात्रा प्रारम्भ करने का निश्चय किया ।

जनता की भावना सफल बनेगी और उसे उसके समान ही भावी शासक प्राप्त हो सकेगा—इस विचार से महाराजा चन्द्रसेन का हृदय अतीव उत्साह से हर्षित होने लगा । देवता ने कहा था कि यात्रा राजा को अकेले ही करनी होगी अत: उन्होंने घोड़े पर बैठकर वह यात्रा अकेले ही पूरी करने का निर्णय लिया ।

अतीव प्रफुल्ल मन से महाराजा अपने राजभवन में पहुंचे तथा नित्य कार्य से निवृत्त होकर पहले उन्होंने सामायिक की साधना की, ताकि शान्ति और समभाव के साथ वे अपने कार्यक्रम पर विचार कर सकें । तदनन्तर वे अपने परिवार जनों के बीच में पहुंचे तथा उन्होने उन्हें शुभ संवाद का संकेत दिया । इतने में मंत्रीगण वगैरा भी पहुंच गये ।

चन्द्रसेन धर्मात्मा, नीतिवान और प्रजा का सदा ही भला चाहने वाले राजा थे । जैसे वे सद्‌गुणी राजा थे, वैसी ही उनके मंत्री आदि भी विनम्र और आज्ञाकारी थे तथा वैसी ही हितकांक्षिणी उनकी प्रजा थी । मंत्रियों आदि ने महाराजा के कक्ष के बाहर पहुंचकर विचार किया कि वे तीन दिन की तेले की तपस्या में विराजे थे सो उसके परिणाम स्वरूप कोई न कोई नया शुभ संवाद अवश्य होगा किन्तु सभी एक साथ जाकर महाराजा की शान्ति भंग करें—यह उचित नही रहेगा । वह एक शिष्ट अनुशासन की बात थी ।

आज देखा जाता है कि कोई सन्त बीमार हो जाय तो लोग उनकी सुखशाता पूछने के लिये आते हैं । लेकिन वे सुखसाता पूछने

के शुभ कार्य में भी आवश्यक विवेक नही रखते है, जिसके कारण सन्त को विश्राम मिलने की बजाय अधिक कष्ट महसूस होने लगता है। कई वार मागलिक पाठ को सुनाने के समय में भी आवश्यक अनुशासन नही निभाया जाता है। हमेशा की छोटी-छोटी बातों मे भी विवेकपूर्ण अनुशासन रखा जाना चाहिये।

चम्पा नगरी मे शिष्ट और विवेकपूर्ण अनुशासन का भाव सभी मे समाया हुआ था। इस दृष्टि से सभी लोग कक्ष के बाहर ही ठहर गये। अकेले दीवानजी ही महाराजा के कक्ष मे प्रविष्ट हुए। उन्होने महाराजा के सम्मुख जाकर नम्र भाव से पूछा—राजन्, आप तेले की तपस्या करके पौषधशाला मे विराज रहे थे, इसलिये हम लोग आपकी सेवा मे नही पहुच सके जिस हेतु क्षमा प्रार्थी है। कृपा करके फरमाइये कि आपकी उस साधना का क्या शुभ परिणाम रहा?

महाराजा ने कहा—आप लोगो की शुभ भावना से मैं परिचित हू और उसी दृष्टि से आपने यह जिज्ञासा प्रकट की है किन्तु इस समय मैं आपकी जिज्ञासा का समाधान बतलाने की स्थिति में नहीं हू। दीवानजी ने फिर कोई आग्रह नही किया और यही पूछा—आप यह फरमाइये कि हमारे लिये क्या आज्ञा है?

फिर सभी मंत्रियों तथा प्रमुख अधिकारियों को भीतर बुला लिया गया, जिन्हे सम्वोधित करते हुए महाराजा ने भलामण दी— मैं समग्र जनता की मनोकामना पूरी करने की भावना से तीन दिन की साधना में वैठा था और देव का आह्वान किया था। तव देव ने प्रकट होकर जो कुछ वताया, वह आपके, मेरे और पूरे राज्य के लिये शुभ है। आगे के लिये जो कार्यक्रम मुझे बताया गया है, उसको पूरा करने के लिये मुझे कुछ समय तक वाहर जाना पड़ेगा। सवसे पहले मुझे यहां से दक्षिण दिशा में जाना होगा। यह सारा कार्य मैं जनता की इच्छा पूरी करने के लिये कर रहा हूं।

यह पूछा जा सकता है कि उस समय के जैन नायक कैसे थे और आज के नेताओं का व्यवहार कैसा है? आज का युग कई दृष्टियों से विचित्र है। किन्तु बुद्धिमान व्यक्तियो को हमेशा एकत्व भावना से रहना चाहिये। एक विचार और एक आचार के अनुसार

सभी चल रहे हों तो क्या किसी भी शक्ति की यह हिम्मत हो सकती है कि वह ऐसे अनुशासित लोगों पर कोई अत्याचार कर सके ?

चन्द्रसेन ने सभी लोगों को कहा—इस कार्य को पूरा करने के लिये मुझे कुछ समय तक आप लोगों से दूर रहना होगा । मुझे पूरा विश्वास है कि मेरे पीछे आप लोग राज्य की सुन्दर व्यवस्था करेंगे तथा प्रजा को किसी तरह से कोई कष्ट नहीं देंगे । आप सब लोगों की खुशी की मैं शुभ कामना करता हूं कि भावनाओं की दृष्टि से सारी प्रजा मेरे साथ रहेगी ।

यह भलामण देकर महाराजा ने आज्ञा दी कि उनकी यात्रा के लिये उनका चपल अश्व तैयार करा दिया जाय । वे किसी को भी अपने साथ नही ले जायेगे । घोड़े पर सवार होकर वे अकेले ही दक्षिण दिशा मे प्रस्थान करेंगे ।

महाराजा भोजन आदि से निवृत्त होकर प्रस्थान करने की तैयारी करने लगे । तैयारी पूरी हो जाने पर प्रस्थान से पूर्व उन्होने मंगलाचरण किया ताकि आगे के कार्य मे बाधाए न आवे और वह यथायोग्य रीति से सफल हो ।

यह पूछा जाय कि आप लोग भी किसी कार्य के आरम्भ मे अथवा कही भी प्रस्थान से पूव मगलाचरण करते है या नही—तो पता नही आप लोगों में से कितनो के उत्तर हां मे होगे । किन्तु ध्यान रखे कि मन की मजबूती और विश्वास की स्थिरता के लिये ऐसे अवसरो पर अवश्य ही मंगलाचरण कर लेना चाहिये । यह मगलाचरण नवकार मंत्र के पाठ के रूप मे होना चाहिये । जो इस महामंत्र पर पूर्ण श्रद्धा नहीं रखते हैं, वे अज्ञानवश इधर-उधर भटकते है परन्तु पाते कुछ भी नहीं है ।

[illegible]

जन उन्हें पहुंचाने गये और फिर उस ओर टकटकी लगाकर देखते रहे जिस ओर महाराजा का अश्व आगे और आगे बढ़ता जा रहा था ।

❀ ❀ ❀

: ६ :

बाह्य दृश्यों अथवा पदार्थो का सभी व्यक्तियों पर समान प्रभाव नही होता है। कौन व्यक्ति अपनी किस प्रकार की आन्तरिकता के साथ उस दृश्य अथवा पदार्थ को ग्रहण करता है, उसी रूप मे भिन्न-भिन्न प्रकार का प्रभाव परिलक्षित होता है। यो समझे कि एक भयानक दृश्य एक साथ पचास व्यक्ति देखते है। उनमें से कोई ऐसा होगा जिसका हार्ट फेल हो सकता है, किसी की उसे देखकर घिघ्घियां बध जाय तो कोई उससे भयभीत ही न हो। कोई ऐसा भी निकल सकता है जो उस भयानकता का विरोध करने के लिये भी उठ खड़ा हो। यह भिन्नता प्रत्येक व्यक्ति की आन्तरिकता की सवलता अथवा दुर्वलता पर आधारित होती है। जिसका आत्म वल सुदृढ़ होता है, वह भयानक से भयानक दृश्य को देखकर भी न तो भयभीत होता है और न ही अस्थिर। वह पूरे स्वस्थ चित्त से उसे देख-परख सकता है तथा स्वय आगे बढकर सबको साथ लेकर निर्भयता का प्रदर्शन भी कर सकता है। जिसके आत्म-बल का सामान्य सा विकास भी न हो अथवा जिसकी दृष्टि ही अपनी आन्तरिकता को पहिचानने की तरफ नही मुड़ी हो, उसका उस समय हार्ट फेल भी हो जाय तो आश्चर्य नही।

महाराजा चन्द्रसेन सामायिक साधना से अपनी आन्तरिकता को स्थिर एवं निर्भय वना चुके थे। उनके मन मे न कोई व्यामोह था न किसी प्रकार का भय। दक्षिण दिशा मे ज्यो-ज्यो उनका द्रुत गति अश्व आगे बढता जा रहा था, त्यों त्यो उनका मन भी अधिक निर्भय-साहसी होता जा रहा था।

महाराजा दक्षिण दिशा मे एकाकी ही जंगलों, पर्वतो और गुफाओं को लाघते हुए आगे से आगे वढे जा रहे थे। भयजनक दृश्य भी सामने उपस्थित हो रहे थे किन्तु उनके मन में भय का लवलेश भी पैदा नही हो रहा था। देव द्वारा वताई हुई दूरी को पार करने की एक लगन से वे चले जा रहे थे। उनके सामने उद्देश्य को पूरा कर लेने की ही एकाग्रता थी। जव किसी सत्पुरुषार्थ को पूरा करके लक्ष्य सिद्ध करने का सकल्प एक साहसी व्यक्ति का वन जाता है तव

वहां पर किसी तरह की कमजोरी नही रहती है । "कार्य साधयामि वा देहं पातिष्यामि वा" का दृढ़ संकल्प मात्र सामने घूमता रहता है । चन्द्रसेन भी भययुक्त होकर उद्देश्यपूर्ति की एकनिष्ठा से सवल बनकर आगे वढ़े जा रहे थे । निर्भयता जैसे समग्र प्राण वायु मे संचरित हो रही थी ।

महाराजा विचारमग्न थे । वे सोच रहे थे कि मैंने अपना अन्तिम लक्ष्य तो आत्म शुद्धि का वना रखा है, उसे प्राप्त करने के लिये तो एक दिन इस सांसारिकता का भी परित्याग करना होगा, किन्तु जव तक परिपूर्ण साधना का मार्ग नही अपना पा रहा हूं तव तक जन कल्याण के लक्ष्य भी पूरे करने होते है । मैं अभी सामायिक की समता साधना करता हूं तथा श्रावक के बारह व्रतों को पालता हूं तो इस समय मेरे आचरण की मर्यादाए इस साधना से सीमित रहती है । जव तक मै एक गृहस्थ और शासक हू तव तक परिवार हित एव जन हित के लक्ष्य भी मेरे सामने रहेगे और उनकी पूर्ति मे भी मेरे पुरुषार्थ का सदुपयोग करना होगा । इस समय मै व्यापक जनकल्याण के उद्देश्य हेतु ही आगे वढ़ रहा हूं ।

इन विचारो के साथ जव चन्द्रसेन महाराजा ने एक भयानक जंगल पार कर लिया तो उन्हे अपनी लक्ष्य सिद्धि की ओर अग्रसर होने का हर्ष अनुभव हुआ । उनकी निर्भयता ने उन्हे किसी भी जंगली जन्तु से चौकने नही दिया तो उतार-चढ़ाव की दुर्गमता मे भी कही वाधित नही होने दिया—इस वात का भी उन्हे हर्प हुआ । उस भयानक जंगल को सफलतापूर्वक पार कर लेने के वाद उनकी निर्भयता अधिक तेजस्वी वन गई ।

स्वर्गीय आचार्य श्रीमद् गणेशीलालजी म० सा० की दिनचर्या आपने कभी सुनी होगी । एक वार वे राजस्थान की ओर पधार रहे थे । उस समय में वे आचार्य पद पर नही थे । नवदीक्षित सन्त भी उनके साथ थे । उस वन प्रान्तर में आगे वढ़ते हुए ज्योंही उनकी नजर सामने दूर तक गिरी तो उन्होने देखा कि एक विशाल काय सिह सामने से आ रहा था । उस वक्त उन्हे नव-दीक्षित मुनि का ध्यान आया कि कही वे डर न जाय अतः उनको अपनी वगल में लेकर सिंह की आखों मे झांकते हुए वे निर्भयतापूर्वक आगे वढ़ते रहे । हुआ यह कि वह सिह भी शान्त भाव से निकल गया । यह उनकी पवित्र

जीवन साधना का अमित प्रभाव था ।

इसी तरह वे स्वर्गीय आचार्य एक वार मारवाड़ प्रदेश मे विहार कर रहे थे । साधु रात्रि काल मे विहार नही करते है ताकि किसी भी प्रकार से हिंसा का आचरण न हो जाय । विहार करते-करते सूर्य अस्त होने आ गया, किन्तु किसी गाव आदि की स्थिति समीप नही दिखाई दे रही थी । सूर्य अस्त होते ही वे महापुरुष एक वृक्ष के नीचे निर्वद्य स्थान देखकर विराज गये । प्रतिक्रमण, ध्यान आदि से निवृत्त होकर वहीं निर्भयता पूर्वक पौढ गये । शीतकाल का समय था चद्दर पूरे शरीर पर ओढ ली । रात्रिकाल मे उन्हे उस चद्दर पर काफी वजन जैसा महसूस हुआ किन्तु उन्होने समझा कि कोई चूहा वगैरा होगा सो चद्दर को धीरे से हिलाई ताकि वह जन्तु धीरे से नीचे हो जाय । फिर जल्दी उठकर प्रतिक्रमण आदि से वे निवृत्त हुए और कुछ-कुछ हो रहे उजाले मे जव उनकी दृष्टि पास मे मुड़ी तो देखा कि एक नागराज गोला डालकर बैठे हुए है । तव भी वे निर्भय रहे तो नागराज भी शान्त कि ये साधु उसका कुछ भी विगाडेंगे नही । अभिप्राय कि जव आत्म-वल विकसित होता है तथा आन्तरिकता में सुदृढ़ता एवं निर्भयता होती है तो वैसा आत्मवली किसी भी परिस्थिति से भयभीत नही होता है । वस्तुत. उसकी निर्भयता सामने वाले को भी शान्त और निर्भय वना देती है ।

ऐसी तो साधु जीवन की निर्भीकता होती है, किन्तु वे गृहस्थ भी निर्भयता के ऊंचे उदाहरण उपस्थित करते हैं जो अपनी अन्तरात्मा को सामायिक की समभावी साधना से दृढ़ीभूत वना लेते हैं । आज भी कोई शुद्ध मन से सामायिक करे, अपनी दृष्टि में समता का तेज भरे और समीक्षण ध्यान का अभ्यास वढावे तो वह भी अदभुत निर्भीकता का धनी वन सकता है । महाराजा चन्द्रसेन भी समता-साधक थे । उनके मन में सभी प्राणियो के प्रति समान आत्मीयभाव समाया हुआ था । इसी आधार पर वे सोचते थे कि एक आत्मीय को दूसरे आत्मीय से भला भय कैसे हो सकता है ?

महाराजा उस भयानक अटवी को लाघकर जव आगे वढ़े तो उन्हे दूर से एक अति रमणीय स्थान दिखाई दिया । उस समय शाम ढलने वाली थी अत. एक स्वच्छ स्थान देखकर महाराजा सामायिक

की साधना करने के लिये घोड़े से नीचे उतरे । नियम का पालन करने में उनकी पूरी सतर्कता थी । आज कई भाई–वहिन जो सामायिक नित्य करने का नियम लेते है, वे भी छूट की मांग करते है कि यात्रा वगैरा मे वे नियम का पालन नही कर सकेंगे । छूट मागने का अर्थ यही है कि अभी आत्मबल इतना नहीं वढ़ा है जो किसी भी स्थिति मे नियम पालन करने की सक्षमता पैदा हो जाय। नियम की कठोर पालना तभी हो सकती है जब संकल्प शक्ति पूरी तरह से मजवूत हो । यात्रा में आपको सामायिक करने में बाधा महसूस होती है, ऐसा क्यों ? जब शरीर को खुराक देना नहीं रोकते तो आत्मा की खुराक क्यों वन्द कर देते हो ? इसे संकल्प की दुर्वलता ही कहेंगे और क्या ? इसके सिवाय कई भाई व्यर्थ की गपशप या ठाले कामों में समय गुजार देते है । सन्त उनको सामायिक करने की बात कहते है तो वे झट से वोल पड़ते हैं कि समय नहीं मिलता। उनकी ऐसी वृत्ति इसी कारण सामने आती है कि वे विवेकपूर्वक अपने जीवन का मूल्यांकन नहीं कर पाते हैं । चन्द्रसेन के नियम ढीले नही थे । उन्होंने अपनी दिनचर्या को कठोर नियमवद्धता से वांध रखी थी । वे एक शिला पर बैठकर सामायिक साधना में संलग्न हो गये । आनन्द भाव से उन्होंने अपनी समभावना को पुष्ट बनाई अपने अहर्निश के पापों की आलोचना की और अपने आत्मवल को अधिक सुदृढ़ वनाया ।

रात्रि विश्राम के लिये अन्य कोई अधिक सुरक्षित स्थान देखकर सामायिक पूर्ण करके महाराजा ने वहीं एक तरफ सावधानी से घोड़े को वाध दिया ताकि वह जंगली जन्तुओं की दृष्टि से सुरक्षित रहकर हरी घास चरता रहे और स्वयं एक ऊंचे वृक्ष पर चढ़कर उसकी ऊंची शाखा पर विश्राम करने लगे । नवकार मंत्र का जाप करते रहे और जव नीद आंखों को घेरने लगी तो सागारी संथारा लेकर शाखाओं के वीच शरीर को भलीभाति टिकाकर आराम करने लगे ।

रात्रि का समय व्यतीत हुआ और प्रात:काल में सूर्य का उदय हुआ तो महाराजा का मन भी नई ताजगी तथा स्फूर्ति से भर उठा नित्य कर्म से निवृत्त होकर सवसे पहले उन्होंने सामायिक की साधना

की । आत्मा को खुराक दे देने के बाद उन्होंने शरीर को भी खुराक देने का विचार किया । आस-पास में प्राप्त फल तोड़कर उन्होने खाये और तृप्ति पाई । फिर घोड़े पर सवार होकर वे निर्देशित दिशा में आगे वढने लगे ।

लगातार तीव्र गति से चलते-चलते वे चम्पा नाम के उस बगीचे के पास पहुच गये जिसका उल्लेख देवता ने किया था । उन्होने देखा कि वह उतना ही रमणीय एवं आकर्षक स्थान है जैसा कि देव ने बताया था । फूलों की क्यारियों के पास होते हुए वे आगे बढे तो उस वापी (बावडी) के समीप भी पहुंच गये । सारे सुरम्य दृश्य को उन्होंने समता भाव से ही देखा । वावडी पर पहुंच कर उन्होंने देवता द्वारा दिये गये सभी निर्देशों को भलीभांति याद किये । तदनुसार सूर्यास्त के पहले-पहले सभी कार्यो से निवृत्त हो जाने की उन्होंने तैयारी कर ली । घोड़े को भी सुरक्षित स्थान पर बांध दिया, अपनी आवश्यकताएं भी पूरी की तथा सामायिक-प्रतिक्रमण भी सविधि सम्पन्न करके अपनी मानसिकता को शान्त, सुस्थिर एवं निर्भय वना ली । सूर्यास्त होने के साथ ही वे देव द्वारा बताये वहां के सबसे ऊचे वृक्ष पर चढ गये और ऊपर की शाखा पर सावधान होकर वैठ गये, क्योकि उन्हें आधी रात का इन्तजार करके मणिधारी सर्प की करतूते देखनी थी ताकि वे अपने उद्देश्य की पूर्ति करने वाले कार्यक्रम की सफल क्रियान्विति का भलीभांति निर्धारण कर सके ।

ज्यों-ज्यों रात गहरी होती गई, महाराजा चन्द्रसेन की सतर्क सावधानी वढती गई । वे नवकार मंत्र का जाप करते रहे । उनके मन मे विचार आया कि वे सोवे या नही । उस विचार के साथ ही उनका निश्चिन्त विश्वास और साहस जाग उठा । उन्होने अपने मन को जैसे कि कड़ा आदेश दिया कि वह उन्हे आधी रात से कुछ पहले जगादे और शाखाओ के वीच के सुरक्षित स्थान पर सो गये । मन की इतनी मजबूती हो तभी नि:शंक होकर ऐसा किया जा सकता है ।

मन पर इतना कुशल नियन्त्रण कि आधी रात से पहले ही चन्द्रसेन की नीद खुल गई और वे सावधान होकर वैठ गये । वे सोच रहे थे कि एक साधक का जीवन सदा जागृति का जीवन होता है तभी तो उसके लिये कहा जाता है कि वह जागते हुए भी जागता है

और सोते हुए भी जागता है। सामायिक की साधना आत्म विकास के रूप में जिसके जीवन में प्रवेश पा जाती है, वह फिर सार्वजनिक हित की दृष्टि से जिस कार्य को पूरा करना चाहता है उसका मार्ग सरल बन जाता है। उन्होंने यह भी अनुभव किया कि समता की साधना से जो आत्म बल बढ़ता है उसी की सहायता से अद्भुत निर्भयता प्राप्त हो सकती है अतः मनुष्य के सत्पुरुषार्थ का मूल माना जाना चाहिये कि आत्मा को बलवती बनाओ।

आत्म-बल अभिवृद्ध होता है आत्म-समीक्षण से। अपने भीतर झांकों और देखो कि अपनी आन्तरिकता में शुभता और अशुभता की कैसी दशा है? भीतर में विकार अधिक है अथवा सद्भाव? विकारों पर सद्भावों की विजय के लिये कैसा पुरुषार्थ किया जाना चाहिये? यह पुरुषार्थ जितने अंशों में सफलता प्राप्त करता जाता है, उतने अंशों मे आत्मा का बल भी बढता जाता है और वही आत्म-बल सुदृढ़ आत्म-विश्वास के रूप में ढलता जाता है। जो आत्म-विश्वासी होता है, वही निर्भय भी होता है क्योंकि उसे अपने अन्तःकरण की शक्ति पर पूरा-पूरा विश्वास होता है कि हर तरह का आत्म-विश्वास भी उच्च कोटि का था और इसी कारण वे अपनी शक्ति पर पूरा भरोसा रखते हुए निर्भय थे। वे निःशक होकर वृक्ष की ऊंची शाखा पर बैठे थे कि अब जो भी परिस्थिति स... आती है, उसको सावधानी पूर्वक देखे तथा अपने कर्त्तव्य का सुनिश्चय करे।

महाराजा की दृष्टि उस बावड़ी के भीतरी भाग पर लगी हुई थी। उन्हे देवता के कथन पर अब भी आश्चर्य था कि पानी मे रहने वाला सांप भी पानी में कैसे रहता है और कैसे मणि की सहायता से पानी में मार्ग बनाकर बाहर निकलता है? उन्होंने सोचा कि सर्प का निवास शायद बावड़ी की गहराई में हो। आधी रात का समय हो रहा था अतः वे टकटकी लगाकर एक ही दिशा में देखे जा रहे थे।

तभी उन्हें दिखाई दिया कि बावड़ी मे से प्रकाश की किरण धीरे-धीरे बाहर प्रकट हो रही हैं। उस प्रकाश में तीक्ष्णता व चकाचौंध भी दिखाई देती थी तो सौम्यता का अभास भी होता था।

पानी के वाहर जब वह मणिधारी सर्प प्रकट हुआ तो महाराजा को ऐसा लगा कि जैसे पानी के भीतर तक खुला मार्ग बना हुआ हो, किन्तु वही मार्ग सर्प के पूरी तरह वाहर निकल जाने पर जैसे अदृश्य हो गया और पानी समतल रूप से फैल गया। चन्द्रसेन ने मणि के प्रकाश मे देखा कि हकीकत मे सर्प बहुत ही विशाल भी है और विकराल भी। वह धीरे-धीरे वावड़ी की सीढियों पर होता हुआ ऊपर चढने लगा। उस प्रकाश मे सर्प का गहरा काला रंग चमचमा रहा था। देव की वाचा का स्मरण करके महाराजा ध्यानपूर्वक सर्प की गतिविधि का सूक्ष्म निरीक्षण करने लगे।

वह मणिधारी सर्प जब वावड़ी मे से निकल कर वाहर आया तो चारो ओर उस मणि का तरल प्रकाश इस तरह फैल गया जैसे कि प्रकाश के सागर में लहरे हिलोरे ले रही हो। वदव सर्प सरकता हुआ एक ऊंचे स्थान तक पहुचा जिसका उल्लेख देव ने किया था। उस ऊचे स्थान पर पहुचकर सर्प ने अपने माथे पर से मणि को उतारा जैसे कि कोई अपनी पगड़ी को उतारता है और उस मणि को उस ऊचाई पर रख दी जिससे उसका प्रकाश सुदूर क्षेत्र तक विस्तृत हो गया। दूर दूर तक सारा जंगल जगमगा उठा। मणि को रखकर वह सर्प निश्चिन्ततापूर्वक वहा से अपने खाद्य की खोज मे रवाना हुआ। जब वह उस वृक्ष के नीचे से गुजर रहा था जिस पर चन्द्रसेन बैठे हुए थे तो उस समय वे चौकन्ने हो गये कि अव यह सर्प क्या हरकत करता है? देखने मे कोई दुविधा नही थी क्योंकि विपुल मात्रा मे प्रकाश फैला हुआ था।

वृक्ष के नीचे से वह सर्प धीरे-धीरे सरक रहा था। महाराजा ने देखा कि उसके पास मे से फुदकते हुए मेढक निकले और दूसरे जन्तु भी गये किन्तु साप ने किसी को भी पकड़ने की चेष्टा नही की। मेंढकों को सर्प अपना खास खाद्य मानता है फिर भी उस सांप ने उन्हे छोड दिया—यह देखकर महाराजा को आश्चर्य होने लगा। वे सोचने लगा कि उन्होने ऐसे सर्प के वारे में न तो अव तक सुना है और न ही ऐसे सर्प को देखा है जो छोटे-छोटे प्राणियों का भक्षण न करता हो। सर्प तो छोटे-छोटे प्राणियो को क्या, वड़े-वड़े महात्माओं तथा महापुरुषों को भी काटने से नही चूकता। स्वयं भगवान्

महावीर को चण्डकौशिक सर्प ने डसा था। फिर यह सर्प किस किस्म का है—यह राजा को समझ में नही आया। उनकी दृष्टि सर्प की गति के साथ-साथ चल रही थी।

शामा नाम का एक प्रकार का घास होता है, जो जंगल में बिना बीज के ही उगता है। उस घास के डोड़ों मे छोटे-छोटे दानें होते है। ये दाने ऐसे होते है जिन्हे अन्न के स्थान पर उपयोग मे ले सकते है। मारवाड़ आदि प्रान्तो मे जहां अधिकतर अकाल पड़ता रहता है, लोग ऐसे दानो की रोटियां बनाकर भी खाते है। वह सर्प भी सभी प्राणियो को छोड़कर आगे उगी हुई शामा घास के बीच मे पहुंचा तथा उसके दाने चुन-चुनकर खाने लगा।

अब तो चन्द्रसेन के आश्चर्य की सीमा नही रही कि क्या ऐसा विकराल सर्प भी शाकाहारी हो सकता है ? फिर विचार आया कि शाकाहारी और शुद्धाचारी होन के कारण ही शायद यह सर्प मणिधारी बन सका हो। ऐसी वृत्ति के कारण ही इसके पास मणि सुरक्षित होगी। यदि वह हिंसक और अशुभ परिणाओ वाला सर्प होता तो मणि को अपने पास टिकाकर रखने मे सफल नहीं होता, क्योंकि वैसी दशा मे कोई भी इस सर्प का संहार करके मणि को ले गया होता। फिर राजा को विचार आया कि हो सकता है—यह सर्प अपने पूर्व जन्म में कोई श्रावक रहा हो और इसके उस जन्म के शुभ संस्कार अभी भी सक्रिय बने हुए हो। इस तरह चन्द्रसेन उस सर्प को देखते हुए विविध प्रकार के विचारो मे गोते लगा रहे थे और सर्प अपना खाद्य खोज खोज कर खा रहा था।

सर्प जब तृप्त हो गया तो पुनः अपनी गति से लौटने लगा। जहां मणि को उसने रखा था वहां पहुंचकर पुनः उस मणि को धारण करता है और उसी बावड़ी मे प्रवेश कर जाता है। सर्प के बावड़ी में प्रवेश पा जाने पर अटवी मे अन्धकार व्याप्त हो गया। महाराज चन्द्रसेन इतने समय तक सर्प की गतिविधिया को देख रहे थे पर अब जब नागराज उनकी दृष्टि से ओझल हो गया तो महाराज को लगा कि वे स्वप्न लोक से लौटे हो। वे विचार करने लगे, कुलदेवी द्वारा निर्दिष्ट स्थान तक मैं सकुशल पहुंच गया हूं। यहां नागराज के दर्शन भी हो गये हैं। उसकी वृत्ति का भी मैंने समीक्षण कर लिया है।

उसकी सात्विक वृत्ति से यह स्पष्ट है कि वह स्वयं हिंसक नही है। सम्भव है किसी के द्वारा त्रास देने पर सर्पराज उसका प्रतिकार करता हो और उसी के कारण यह विषधर कहलाता हो अथवा अपनी जातीय सदृशता के कारण भी विषधर कहला सकता है। कुछ भी हो मुझे इनसे साक्षात्कार करना है। इनके साथ मुझे किस विधि से साक्षात्कार करना, इस पर महाराज चिन्तन करने लगे।

महाराज चन्द्रसेन को अपनी कुलदेवी के वचन स्मरण होने लगे। महाराज ने कुल देवी के वचनो पर गहराई से मनन करना प्रारम्भ किया। वे सोचने लगे—कुल देवी ने यहा तक पहुंचने के लिए मेरा मार्ग दर्शन समीचीन प्रकार से कर दिया है। किन्तु सर्पराज पर कैसे विजय प्राप्त करना, इसके लिए देवी ने केवल संक्षिप्त मे यही कहा कि उसे स्नेह-सौजन्यपूर्ण सद्व्यवहार से वश मे करना। अत: अब मुझे ही इसके लिए कुछ रूपरेखा तैयार करनी होगी।

महाराज का चिन्तन चलता रहा। वे अभी पूर्ण निष्कर्ष की स्थिति में नही पहुंच पा रहे थे कि नागराज के साथ कैसे सदव्यवहार से पेश आया जाय ? उनके मन में कई तरह की योजनाएं विचारों मे आ जा रही थी। अन्ततोगत्वा एक योजना पर उनका चिन्तन स्थिर हुआ। दो, तीन बार उस योजना पर सिंहावलोकन कर उस निष्कर्ष पर पहुचे कि सर्व प्रथम वे इसी योजनानुसार कार्य करेगे क्योकि इस योजना में नागराज के प्रति अत्यन्त स्नेह एवं सद्व्यवहार के साथ बहुमान के भाव भी रहे हुए है। अत: योजना को अपने मस्तिष्क मे निश्चित कर वे वृक्ष से नीचे उतरे और आवश्यक क्रियाओ से निवृत्त हो अपनी आत्मा को खुराक देने की दृष्टि से सामायिक की, साधना में संलग्न हुए।

सामायिक साधना के माध्यम से वे आत्म-समीक्षण करने लगे। सामायिक की साधना आत्म-समीक्षण के लिए सर्वोपरि है। सामायिक में आत्म-समीक्षण करते हुए वे अपने भूतकालीन २४ घन्टों का विचार करने लगे कि गत २४ घन्टों में मेरा आत्मा कितना स्वभाव मे रहा और कितना विभाव में गया। यदि विभाव में गया तो किस परिस्थिति से गया ? और क्यो गया ? इस प्रकार आत्मा की वृत्तियों का समीक्षण करते हुए यदि क्वचित् आत्मा विभाव में भटक गया हो

तो उसे स्वभाव में प्रस्थापित करने का प्रयास करने लगे ।

बन्धुओ ! आप भी सामायिक कर रहे है । मुंहपत्ति मुंह पर वांध रखी है । आसन भी बिछा रखा है । शरीर पर से सिलाई किये हुए वस्त्र भी आपने उतार रखे है । शरीर को चद्दर से आवृत कर लिया है । कई मेरे भाई सामायिक में सिलाई के वस्त्र उतारने में भी हिच-किचाते है, तो कई मुंहपति मुंह पर लगाने में संकोच करते हैं । पर याद रखिये यद्यपि यह द्रव्य सामायिक कही जाती है, पर भाव सामायिक के लिए द्रव्य सामायिक भी एक आवश्यक अंग है । इसका भी मन पर बड़ा मनोवैज्ञानिक असर पड़ता है । इसलिए यदि कोई ऐसा सोचता हो कि यह द्रव्य सामायिक है इससे क्या फायदा, हम तो भाव से सामायिक करना चाहते है उसका यह सोचना उचित नहीं है । उसको ऐसा नहीं सोचना चाहिये । जैसे स्कूल में पढ़ने वाले विद्यार्थी (Student) के लिए स्कूल का यूनीफॉर्म आवश्यक होता है उसी तरह आध्यात्मिक साधना मे आरूढ होने वाले को भी तदनुरूप यूनीफॉर्म/परिधान का अवश्य विवेक रखना चाहिये । भरत चक्रवर्ती को आरिसा भवन मे केवलज्ञान उत्पन्न हो गया था । उनकी मोक्ष भी निश्चित थी । उनके लिए घर और जंगल, निर्वस्त्र और सवस्त्र कोई महत्व नही रखता था फिर भी आध्यात्मिक अनुशासन मे कहीं अविधि न हो एतदर्थ देव दुष्य परिधान को स्वीकार कर वे राजमहलों से चल पड़े थे ।

उस महान् धर्म साधना का छोटा सा रूप ही सामायिक है । इस सामायिक मात्र से आप सव प्राणियों में ऐसा अनूठा सद्भाव जगा सकेंगे कि जिसके सुन्दर रूप से आकर्षित होकर देवता भी आपको नमस्कार करने लगेंगे । आपने सुना ही होगा कि कुण्डकौलिक श्रावक की सामायिक बड़ी अद्भुत होती थी । वह अपने शरीर के सारे वस्त्राभूपण को उतार कर अलग रख देता था और चिन्तन करता था कि इन सव सांसारिक चीजों के प्रति मेरा कोई ममत्व भाव नहीं, क्योंकि मै तो साधु-अवस्था के समान सामायिक व्रत मे बैठ रहा हूं । जैसे साधु सभी अट्ठारह पापों का तथा सम्पूर्ण परिग्रह का परित्याग करता है, इसी तरह सामायिक काल मे साधक का मूर्छा भाव भी समाप्त हो जाना चाहिये । आप सोचिये कि जब

आप सामायिक में बैठते हैं तो क्या मूर्च्छा भाव का परित्याग कर लेते हैं। सामायिक में बैठे हैं तो गहने, कपड़ों की बात छोड़िये आपकी नजर में पड़ जाय कि कोई आपकी पुरानी चप्पलों को चुराये हुए चला जा रहा है—उस पर भी क्या आप मानसिक स्थिरता बनाये रख सकते है ? यह आप ही के चिन्तन का विषय है। कुण्डकौलिक श्रावक जब सामायिक में बैठा हुआ था तो देवता ने उसके मूर्च्छा भाव की परीक्षा ली। उसके बहुमूल्य वस्त्रो तथा आभूषणों को देवता नें देव माया से हस्तगत करके आकाश में से उन्हें दिखा-दिखाकर उस श्रावक का ध्यान भंग करने लगा, किन्तु उसकी सारी कोशिश व्यर्थ गयी। श्रावक का तो रोम-रोम सामायिक के रस में भिदा हुआ था, उसका ध्यान ही नही गया कि कब देव आया और कैसे वह उसके वस्त्राभूषण छीनकर उसमें ध्यान भंग की चेष्टा कर रहा था ? फिर उस देव ने उस श्रावक के सामने उपस्थित होकर कहा कि गोशालक का मत सही है और महावीर का मत गलत है। फिर भी श्रावक के मुख पर क्रोध का लेश मात्र भी अंश नहीं आया। उसके मुख पर तो तब भी समत्व की आभा ही खेलती रही। अन्त मे देव ने अपनी पराजय स्वीकार की तथा श्रावक के चरणों में अपना माथा टेक दिया।

देव दर्शन की ऐसी ही साधना पद्धति के अनुसरण करने वाले थे महाराज चन्द्रसेन।

महाराज चन्द्रसेन भी द्रव्य सामायिक का उपहास करते थे। पर जब से उन्होने यह जान लिया कि द्रव्य सामायिक भाव सामायिक की पूरक है, तब से वे स्वयं द्रव्य सामायिक यानी सामायिक के योग्य परिधान स्वीकार कर सामायिक साधना करने लगे थे।

❀ ❀

: ७ :
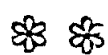
कोई भी कार्य करने की दो पद्धतियां हो सकती हैं । एक तो यह कि सामने वाले के ज्ञान-अज्ञान अथवा स्वीकृति-अस्वीकृति का कोई ध्यान रखे बगैर मनमाने ढंग से अपने काम को करवा लेना, चाहे उसमें सामने वाले के साथ अन्याय या अत्याचार ही क्यों न करना पड़े ? दूसरी पद्धति यह हो सकती है कि पहले तो आप स्वयं अपने कार्य की समीक्षा करें और उसकी सार्वजनिक उपयोगिता को जाचें । उस कसौटी पर खरे उतरने के बाद आप अपने कार्य का अभिप्राय सामने वाले को समझावे तथा उसे सहमत करें । उसके बाद आपसी समझ एवं शान्ति के साथ ही काम को पूरा करें । दोनों पक्षों को समझपूर्ण सहमति से किया गया काम जहां किसी प्रकार की दुर्भावना अथवा कटुता पैदा नही करता तो वहां एक कार्य को पूरा करने के लिए एक की वजाय दोनों पक्षों का सुन्दर सहयोग मिल जाता है । दूसरी पद्धति की सफलता समत्व योग की सही साधना पर निर्भर करती है । महाराजा चन्द्रसेन ने अपनी समता एव सौम्यता के कारण दूसरी प्रकार की पद्धति ही अपनाई ।

सामायिक साधना के पूर्ण हो जाने पर वे अपनी योजनानुसार अश्वारूढ़ हो निकटवर्ती किसी नगर में पहुचे । वहां से सुगन्धित पुष्पों की टोकरियां, इत्र, गोरस, केशर, मिश्री, अगरवत्तियां एवं

उन्होंने वाटिका के निकटवर्ती सारे भू-भाग को साफ किया । पानी छिड़ककर उस भू-भाग को शीतल किया । इसके पश्चात् सर्प आने के कुछ समय पूर्व व्यवस्थित ढंग से फूलों को विछाया । फिर वहां इत्र का भी छिड़काव किया और स्थान-स्थान पर सुगन्धित पदार्थ विखेर दिये । जिससे आस-पास का सारा वन प्रतर सुरभित हो उठा । अगरवत्तिया लगा देने पर वह सौरभ और महक उठी ।

सर्पराज के निकलने का समय नजदीक आ रहा था, उन्होने स्फूर्ति के साथ केशर और मिश्री को शीतल गोरस से घोलकर गोरस के कई कटोरे विछाये गये फूलो पर भिन्न-भिन्न स्थान पर रख दिये और स्वयं वृक्ष पर चढ़ कर नागराज का इन्तजार करने लगे ।

कुछ ही समय में नागराज कल की भांति आज भी वापी से बाहर निकला। बाहर के सौरभमय वातावरण से नागराज निर्लिप्त नही रह सका। वह उस भीनी-भीनी सुगन्ध पर मुग्ध हो गया और उन फूलों पर इधर से उधर लौटने लगा। कभी वह फूलों पर लौटता तो कभी दूध के कटोरे से सुगन्धित मधुर पेय पीने लगता। इस क्रिया में वह इतना मुग्ध हो गया कि वह अपने आपको भूल गया। महाराज चन्द्रसेन नागराज की इस प्रसन्नता का अनुमान लगा रहे थे। जब उन्होंने देखा नागराज अब पूर्णतया प्रसन्नता की मुद्रा मे है तो वे धीरे से वृक्ष से नीचे उतरे और मणिधर को नमस्कार कर निवेदन करने लगे—आज मेरे अहोभाग्य हैं कि आपके दर्शन हुए। मैं आज अपने आपको कृत पुण्य एवं धन्य-धन्य मान रहा हूं।

महाराजा को अपने सामने खड़ा देखकर नागराज अपलक उन्हे निहारने लगा, इससे महाराज ने अनुमान लगाया कि शायद यह मेरा परिचय जानना चाहता हो। तब महाराज कहने लगे—हे महामहिम नागराज! आप यदि मेरा परिचय जानना चाहते हों तो वह यह है कि इस भारत की सुप्रसिद्ध चम्पा नामक नगरी की जनता का मैं सेवक हूं, यद्यपि जनता ने मुझे अपना शीरस्थ मान रखा है तथापि मैं तो अपने आपको उसका सेवक ही मानकर चल रहा हू। आपके दर्शनों का भी सौभाग्य उस जनता की भावना से ही मिला है। जनता की भावना थी कि मेरे पीछे भी उनकी सेवा करने वाला कोई मेरे जैसा व्यक्ति उनको मिले। उनके इस आग्रह के कारण कुलदेवी द्वारा प्रेरणा पाकर मैं आपके दर्शनों को उपस्थित हो गया। इस सेवक को चन्द्रसेन नाम से पहचाना जाता है।

बन्धुओं, विचार कीजिए एक राजनपति राजा चन्द्रसेन अपना परिचय किस रूप मे दे रहे हैं। वे अपने को जनता का सेवक मान कर चल रहे है। आज के मेरे भाई यदि छोटी सी कोई सरकारी पोस्ट पा लेते हैं तो आसमान में उड़ने लगते हैं। अपने आपको बहुत बड़ा आफिसर अथवा नेता मानकर चलने लगते है। यह क्या स्थिति है? पर दोष उनका नही है। वे क्या करे? उनको वैसा ही आदर्श मिला और वैसी ही शिक्षा। मुझे एक रूपक याद आ रहा है। उसे आपके समक्ष रख दू, आप स्वय आज की शिक्षा पद्धति को पहचान सकेंगे।

एक पटेल ने अपने पुत्र को खूब अध्ययन करवाया । पटेल विचार करता था कि मैं तो निरक्षर रह गया पर मेरा बच्चा अनपढ़ नहीं रहे, जितना पढ़ना चाहे उसे पढ़ाऊंगा । इसी भावना से वह उसके पढ़ने की व्यवस्था का भी पूरा खयाल रखता था । उससे सम्बन्धित हर आवश्यकता को पूर्ण करता था । इसके साथ-साथ वह अपने पुत्र से समय-समय पर पूछता भी रहता था कि आज स्कूल में क्या पढ़ाया ? इस तरह उस पुत्र की पढ़ाई चलती रही, उसने कॉलेज की सारी डिग्रियां प्राप्त करलीं । जिससे सरकारी अच्छी पोस्ट भी मिल गई । उसने कुछ ही समय में नया बंगला भी बना लिया, शादी भी हो गई, शादी के प्रसंग से उसने पिता से स्वीकृति लेकर नये बंगले में अपने साथियों को प्रीतिभोज—जिसे आप लोग टीपार्टी कहते है, देने की तैयारी की । आमन्त्रित सज्जन भी अच्छी पोस्टों पर कार्यरत थे । कोई प्रोफेसर था, तो कोई राजकीय अधिकारी, न्यायाधीश आदि । यथासमय सब निर्देशित स्थान पर पहुंच गये । उस पटेल ने विचार किया आज मेरे पुत्र ने बड़े-बड़े व्यक्तियों को बुलाया है । इसलिए मुझे भी वहां उपस्थित रहना चाहिए । जिससे उन सबसे मेरा परिचय करवायेगा । इस मनसूबे के साथ वह भी अपकी पटेलाई पोशाक सजाकर बंगले में पहुंचा। नई फैशन के अनुसार मेज (डाइनीग टेबल Dyning table) के चारों तरफ कुर्सियां पड़ी थीं । उनमें में एक-दो कुर्सी खाली पड़ी थी । वह पटेल एक कुर्सी खींचकर उस पर बैठ गया । उसका बैठना ही था कि एक बड़े ऑफिसर ने उस पटेल के पुत्र से उसका परिचय पूछा । वह पटेल का पुत्र विचारने लगा, इनका क्या परिचय दूं ? यदि इनको मेरा पिता बताऊंगा तो मेरी हंसी होगी । यदि अन्य परिचय दूंगा तो पिताजी कुपित हो सकते हैं । अतः उसने अंग्रेजी में परिचय दिया–He is my Servant, पटेल ने जैसे ही यह परिचय सुना तो वह आग बबूला हो उठा, यद्यपि वह अंग्रेजी का विशेष जानकार नहीं था, पर अपने पुत्र से ही जब वह स्कूल के अध्ययन के विषय में पूछता था, तो उस समय वह बतलाता था कि आज हिन्दी में यह बतलाया, इतिहास में यह बतलाया, अंग्रेजी में यह बतलाया आदि । उस समय वह अंग्रेजी के कुछ शब्दों को बोलकर भी बताता था कि आज अंग्रेजी में बतलाया कि पिता को फादर (Father) कहते

हैं, माता को मदर (Mother) कहते हैं, नौकर को सरवेन्ट (Servant) कहते है आदि । उनमें से कुछ शब्द उसके पिताजी को याद रह गये थे, जिससे उसने जान लिया कि मेरा वास्तविक परिचय नही दिया जा रहा है बल्कि मुझे नौकर ठहराया जा रहा है । क्या मैंने इस दिन के लिए ही इसे पढ़ाया था ? वह कुर्सी से उठा और अपने पैर की जूती खोलकर पुत्र के सिर पर दे मारी । यह अनहोनी घटना थी । इस घटना ने सबको स्तम्भित कर दिया । एक व्यक्ति के मुंह से सहसा यह शब्द निकले, अरे ! यह क्या ? पटेल ने निर्भयता के साथ कहा—साहब यह क्या ? यह मैं बताता हूं । मैंने इसको इसलिए नहीं पढाया था कि सभ्य व्यक्तियो के समक्ष मेरा इस प्रकार परिचय दे । साहब, मैं इसकी मा का खसम हूं ।

यह सुनते ही सारे अतिथि पटेल के पुत्र की तरफ मुंह करके कहने लगे—आपने ऐसा क्यों किया ? आप यदि इनका सही परिचय देते तो इसमें क्या हर्ज था ?

बन्धुओं, विचार करिए, यह कैसी शिक्षा है ? इसलिए नीतिकारों ने कहा है—

"द्विसप्तति कलाज्ञान, तदप्यज्ञो जनोभवेत्
सर्वकालप्रधाना या, धर्मकला न धारिता"

यानी पुरुषों के योग्य बहत्तर कलाओ का ज्ञान हो जाने पर भी सर्वकला में प्रधान धर्मकला का जिसने ज्ञान नहीं किया हो तो वह पुरुष अज्ञ ही रहता है । वह वस्तुतः विज्ञ नही हो सकता ।

महाराजा चन्द्रसेन अन्य कलाओ के साथ-साथ धर्मकला में भी प्रवीण थे, समभाव की आराधना मे तत्पर रहते थे । अतः वे महाराज होते हुए भी अपने आपको जनता का सेवक बतला रहे हैं ।

सर्पराज महाराज चन्द्रसेन का परिचय पाकर बड़ा प्रसन्न हुआ । उसने तत्काल सर्प से मानव का रूप बनाया और कहा—महाराज, मै आपका स्वागत करता हूं । आपका परिचय पाकर मैं आपके यहा आने के उद्देश्य को जान गया हूं । मेरे पास वाली मणि प्राप्त करने से आपकी एवं आपकी प्रजा की मनोकामना फलीभूत होगी । कुलदेवी द्वारा इस प्रकार का आपको निर्देश दिये जाने से

आपका यहां पदार्पण हुआ है । इस मणि को प्राप्त करने के लिए अनेक दुष्ट व्यक्ति यहां पर आये और उन्होने हिंसात्मक तरीका अपनाकर मणि हथियाने के कई प्रयास भी किये, पर वे सफल नहीं हो सके । किन्तु आपने अपने सद्व्यवहार से मेरा अन्तर्मानस जीत लिया है । इतना कह नागराज ने पास वाली मणि को चन्द्रसेन के हाथ में थमाते हुए कहा—यह लीजिये, यह मणि आपकी मनोकामना की सफलता में सहयोगी होगी । महाराज चन्द्रसेन कुछ समझ नही पा रहे थे कि कुछ क्षण पहले यह सर्प के रूप में थे, अब यह मानव के रूप हैं । यह मणि भी सहसा मेरे हाथ में सौंप रहे है । कही यह सब मायाजाल तो नही है । चन्द्रसेन को गंभीर मुद्रा में देखकर नागराज पुनः कहने लगा । महाराज ! मैंने जन्मजात सर्प नही हूं । मैं विद्याधर श्रेणी में रहने वाला विद्याधर हूं । मैंने अन्यान्य विद्याओं के साथ नाग विद्या भी सिद्ध कर रखी है । मेरा सर्प रूप बना कर रहने के पीछे भी रहस्य है । वह यह है कि मेरे एक सर्वगुण सम्पन्न पुत्री है। उसने जैसे ही यौवनावस्था में पैर रखा, अनेक विद्याधर राजा एव राजकुमार उसे प्राप्त करने के प्रयास करने लगे । संयोगवश एक बार विशिष्ट ज्ञानी जघाचरण मुनि के दर्शनों का लाभ मिला । तब मैंने उनसे मेरी पुत्री का भविष्य जानना चाहा, तब उन्होंने अपने ज्ञान का उपयोग लगा कर बतलाया कि मेरी पुत्री का विवाह चम्पा देश के महाराजा चन्द्रसेन के साथ होगा । किन्तु इसके लिए मेरे को चम्पा व टिका पर आपका इन्तजार करते हुए रहना पड़ेगा । जिससे मेरी पुत्री विश्वसुन्दरी की भी सुरक्षा हो सकेगी । इस पर मैंने यह भी जानना चाहा कि चम्पावाटी पर उनके आगमन की सूचना मैं कैसे जान पाऊंगा । तब मुनिश्री ने मुझे बतलाया कि चन्द्रसेन विलक्षण प्रतिभा का धनी है । उनका आगमन उनके सद्व्यवहार से ही आपको ज्ञात हो जायेगा । इसके लिए आपको चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं । तदनुसार मैं तब से अपनी पुत्री विश्वसुन्दरी के साथ यहां रह रहा हूं । इतना कह नागराज चुप हो गये ।

नागराज ने कुछ क्षणों के पश्चात् पुनः बोलना प्रारम्भ किया-आपने यहां आकर मेरे पर बड़ा उपकार किया है । जब से मैंने उन विशिष्ट ज्ञानी महात्मा के दर्शन किये हैं तब से मेरा मन संसार से

उचट गया है । मैं सर्व विरति चारित्र स्वीकार करना चाहता था पर पुत्री का उत्तरदायित्व होने से इतने समय तक रूका रहना पड़ा है । मैंने अपने मन में दृढ संकल्प कर रखा था कि पुत्री के अनुरूप योग्य वर मिलते ही पुत्री का उत्तरदायित्व उस पर सौंपकर मैं संयम स्वीकार कर लूंगा । तदनुसार आप मेरी पुत्री के लिए सब तरह से सुयोग्य वर हैं । अत. अब आप इस मणि के माध्यम से इस जलाशय (वापी) मे प्रवेश कर मेरी पुत्री विश्वसुन्दरी के साथ पाणिग्रहण करे । यह मणि मैं आपको दहेज रूप मे ही दे रहा हूं । क्योंकि में अब यही से अकिंचन होकर आत्म साधना के लिए रवाना होना चाहता हूं । पर हां, एक बात और आपको बता देना चाहता हूं कि मेरी पुत्री बड़ी बुद्धिमती है । वह जो कुछ कहेगी अथवा करेगी आपके हित के लिए कहेगी, करेगी । इसलिए उसकी किसी बात को न मानने से कभी आप दोनो पर भयंकर विपत्ति के बादल भी मंडरा सकते है ।

चन्द्रसेन ने सारी बात ध्यान से सुनी और विचार किया कि शायद कुलदेवी द्वारा आगे का रहस्य प्रकट न करने का यही आशय हो कि मैं इस मणि और कन्या को स्वीकार करके ही जनता की भावना की पूर्ति कर सकूंगा । चन्द्रसेन ने भी तब भाव विह्वल होकर उत्तर दिया—आप साधना के क्षेत्र में तुरन्त ही अग्रगामी होना चाहते है । अतः मेरे अग्रज हो ही गये है । ऐसी अवस्था में मैं आपकी आज्ञा को कैसे टाल सकता हू । इतना कह नागराज विद्याधर राजा के सन्मुख नत मस्तक हो गया ।

राजा की स्वीकृति से वह नागराज गद्‌गद् हो गया था कि अब अपने उद्देश्य पूर्ति की दिशा मे तत्क्षण प्रस्थान कर सकता है । उसने आभार पूर्वक चन्द्रसेन को गले लगाया और कहा—मैं आपकी स्वीकृति से बहुत ही प्रसन्न हुआ हूं । क्योंकि इससे मुझे तुरन्त ही आत्म-कल्याण की साधना आरम्भ करने का अवसर मिल गया है । मै हृदय से आपका कृतज्ञ रहूगा ।·· अब आप मेरे निर्देश को ध्यान पूर्वक सुन लीजिये । आप अभी ही इस मणि को अपने हाथ में रख लीजिये और बावडी की सीढियां उतर कर निर्भयतापूर्वक पानी में घुस जाइये । मणि आगे से आगे मार्ग बनाती रहेगी और आपको

सीधे मेरे भव्य भवन में पहुंचा देगी । उस भवन में अकेली मेरी कन्या विश्वसुन्दरी आपको मिल जायेगी । बस, उसके बाद आगे का सारा मार्गदर्शन वह आपको करा देगी ।………अब आप मुझे अनुमति दीजिये कि यहीं से मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने की दिशा में बढ चलूं ।

इतनी शीघ्रता का अनुमान चन्द्रसेन को नही था अतः कुछ हड़बड़ा कर उन्होने कहा—क्या आप हमारे शुभ विवाह को भी अपनी आंखों के सामने सम्पन्न नही करवायेगे ? हम दोनो विवाह सूत्र में बन्ध कर आपका आशीर्वाद तो लेना चाहेंगे ।

विद्याधर ने भी भावुक होकर कहा—जब आपने अपनी विवाह हेतु स्वीकृति दे दी है तो मेरे आत्म-विकास में भला आप जैसा समत्व साधक व्यर्थ का विलम्ब क्यों करना चाहेगे ? जब अन्तःकरण वैराग्य भावों से ओत-प्रोत हो तब एक क्षण का भी विलम्ब उचित नहीं है । भगवान् ने क्या कहा है—क्षण मात्र का भी प्रमाद मत करो । जब तक जिम्मेदारी मेरे सिर पर थी, मैं बन्धा हुआ था किन्तु जब आपने मुझे उनसे मुक्त कर दिया है तो फिर पूरी तरह से ही मुक्त क्यों न करदे ? मेरी पुत्री तो सदा ही मेरे आशीर्वाद तले ही बड़ी हुई है और उसके लिए आप जैसा वर पाकर आप समझ सकते हैं कि मैं कितना हर्ष विभोर हूं ? इसी क्षण में मैं आपको भी अपना हार्दिक आशीर्वाद दे देना चाहता हूं । आप दोनों को यों समझिये कि अभी मै एक साथ आशीर्वाद दे रहा हूं कि आप दोनों का जीवन एकीभूत होकर आपकी प्रजा के लिए परम कल्याण का साधन बन जाय ।

आशीर्वाद की मुद्रा मे विद्याधर ने महाराज चन्द्रसेन के मस्तक पर हाथ रखा और अपनी स्नेह पूर्ण मुस्कान बिखेरते हुए वह उसी समय आकाश मार्ग से उड़ चला ।

उस विद्याधर की भावना कितनी उत्कृष्ट थी ? क्या आज के धर्मात्मा भाई उसकी उमंग को समझते है ? आप अपनी बात भी छोडिये, लेकिन कदाचित् आपके परिवार का कोई सदस्य भावपूर्ण यह निश्चय करले कि मुझे अब संसार में नहीं रहना है तो क्या आप

उसकी उमंग को पूरी करने हेतु तुरन्त तैयार हो जाते हैं ? यदि आपकी पुत्री यह कहे कि मुझे तो शादी नही करनी तथा दीक्षा लेनी है तो क्या आप उसके कथन को शीघ्र स्वीकृति दे देने की भावना रखते है ? यह भी छोड़िये, लेकिन कोई आपके परिवार में विधवा वहिन हो तो वह अपने उत्कृष्ट वैराग्य में दीक्षित होना चाहे, तो क्या उसके मार्ग में भी आप आडे खड़े नहीं हो जाते है ? तरह-तरह के वहाने वनावेंगे और दीक्षा की आज्ञा को आगे से आगे धकेलते रहेंगे। यह नहीं सोचते कि कब कोई काल का ग्रास बन जायगा और दीक्षा के मार्ग में व्यवधान वनकर क्या आप किसी के संयमी जीवन के प्रति खिलवाड़ नहीं कर बैठेंगे ? काल की सवारी पहले ही आगई तो उसके और आपके सारे मनसूबे धरे ही रह जाते है। कई व्यक्ति इतनी अज्ञानी होते हैं कि वे आसानी से किसी भी भव्य आत्मा को अपने उत्थान के मार्ग पर निकलने ही नहीं देते हैं। विद्याधर के उत्कृष्ट विचारो को देखिये कि कन्या के लिये योग्य वर प्राप्त होते ही उसने एक क्षण के लिये भी सासारिकता में ठहरे रहना उचित नही समझा। यहा तक कि अपनी कन्या का विवाह अपने हाथों रचाने का मोह भी उसने नही किया।

महाराजा चन्द्रसेन के इस हेतु आग्रह पर भी विद्याधर ने भगवान् महावीर के आदर्श वाक्य का ही उल्लेख किया था कि अच्छे काम मे लगने के लिये क्षण मात्र का भी विलम्ब नहीं करना चाहिये। आप सोचिये कि दीक्षा लेने वाला तो एक क्षण का भी विलम्ब नही करना चाहता है किन्तु दीक्षा की आज्ञा देने वाला क्षणों की वजाय उस वैरागी या वैरागिन के कई वर्ष वरवाद कर देता है। क्या आप सोच सकते हैं कि उस प्रवृत्ति से कितने निकाचित अन्तराय कर्मों का बंध हो सकता है ? क्या आप भगवान् के आदर्शो को नही मानते ?

यहां पर विद्याधर की आत्मा भी शुभ भावों से ओत-प्रोत थी तो चन्द्रसेन की आत्मा भी साधना में रंगी रहने के कारण आत्म-कल्याण में अपना सहयोग देने के प्रति जागरूक थी। जब आग्रह करने के वाद भी विद्याधर ने दीक्षा के प्रति अपनी अति उत्कट

अभिलाषा व्यक्त की तो चन्द्रसेन ने उसमें किसी तरह की बाधा उपस्थित नहीं की। वे हठ कर सकते थे कि विवाह का अनुष्ठान तो वे पूर्ण करके ही जावें किन्तु किसी भी हलुकर्मी आत्मा की उड़ान को रोकना किसी भी साधक आत्मा का कर्त्तव्य नहीं है। इसी कारण उन्होंने उसी क्षण विद्याधर को उड़ने दिया।

❀ ❀ ❀

: ८ :

विद्याधर तो तत्काल दीक्षा ग्रहण करने हेतु अपने गुरु मुनि के पास पहुंचने के लिये आकाश मार्ग से उड़ गया किन्तु उसकी साधना तत्परता से महाराजा चन्द्रसेन अत्यधिक प्रभावित हुए। उनका श्रावक हृदय भी मनोरथ चिन्तन में लीन हो गया। उनका यह चिन्तन चलने लगा कि वह दिन धन्य होगा जब मैं भी इसी तरह संसार के समस्त बन्धनों को त्याग कर आत्म-कल्याण हेतु साधु धर्म को अंगीकार कर लूंगा।

इस आन्तरिक चिन्तन के साथ ही उन्हें उस समय के तात्कालिक कर्त्तव्य का ध्यान आया। अब तो उनका अपना उद्देश्य तथा उस विद्याधर का दायित्व एकरूप हो गया था, अतः उन्होंने विश्वसुन्दरी के पास पहुंचने का उपक्रम किया। उस ऊंचे स्थान से उन्होंने वह मणि हस्तगत की तथा उसे लेकर वे बावड़ी की सीढियों पर नीचे उतरने लगे। जब वे जल के किनारे पहुंचे तो मणि हाथ मे होने की वजह से पानी के बीच स्वतः ही मार्ग बन गया और वे उस मार्ग पर चलते हुए विद्याधर के भवन में प्रविष्ठ हो गये।

चन्द्रसेन ने देखा कि भवन जितना विशाल है, उतना ही सादगी से सजा हुआ है। वे भीतर तक गये तो उन्हे एक कक्ष मे विश्वसुन्दरी सामायिक साधना में संलग्न दिखाई दी।

विश्वसुन्दरी भी अपने पिता के सुसंस्कारो की छाया मे पली पोषी थी इसलिये वह भी सामायिक साधना का निरन्तर अभ्यास करती थी। वह कुमारिका थी किन्तु युवावस्था को प्राप्त थी या यों कहे कि प्रौढ़ यौवन काल मे थी क्योकि उसके पिता योग्य वर की खोज में लगे हुए थे। किसी भविष्यवक्ता ने जब उस विद्याधर को भविष्य-वाणी की कि उसकी कन्या के लिये योग्य वर उसे चम्पा नामक बगीचे में मिलेगा तो तब से विद्याधर ने उस बगीचे की बावड़ी के तले अपना भवन बनाकर निवास करना आरम्भ कर दिया। उसको उस भविष्यवक्ता ने यह भी बता दिया था कि चन्द्रसेन महाराजा किस निमित्त से चम्पा बगीचे मे पहुंचेगे। उस दृष्टि से उस विद्याधर

ने सदा सर्प के रूप में मणि लेकर बाहर निकलने का क्रम बनाया। भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई और बताये हुए दिन ही उसकी महाराजा चन्द्रसेन से चम्पा बगीचे में भेंट हो गई।

संयोग की विचित्रता देखिए कि चन्द्रसेन तो उस सर्प रूपी विद्याधर से मणि प्राप्त करने की उत्सुकता के कारण बात करना चाहता था तो विद्याधर उक्त भविष्यवाणी के आधार पर महाराजा चन्द्रसेन से भेट करने को उत्सुक था। दोनों की उत्सुकता का एक संगम हो गया। विश्वसुन्दरी को भविष्यवाणी की तो जानकारी थी किन्तु यकायक चन्द्रसेन के उसके भवन में प्रवेश करने से वह हड़बड़ा गई। वह सोचने लगी कि यह अजनबी आदमी कौन है ? उसके मन के यह आशंका भी पैदा हुई कि न जाने किसी ने उसके पिताजी की घात करके मणि प्राप्त करली हो और वैसा हिंसक पुरुष उस मणि की सहायता से यहां घुस आया हो।

किन्तु विश्वसुन्दरी बुद्धिशालिनी और विद्या सम्पन्न थी। प्राचीन काल में कन्याओं को चौसठ कलाओं की शिक्षा दी जाती थी। वे स्वावलम्बन का पाठ भी पढती थी तथा अपने सामान्य व्यवहार में वे अबला नहीं, किन्तु सबला के रूप में दिखाई देती थीं। आज उन कलाओं की तरफ किस का ध्यान है ? क्या आज की कन्याएं सबला हैं या अबला ? आज उन्हें कही बाहर अकेली जाना होता है तो साथ में कोई पुरुष चाहिए। अकेली जाने का उनसे साहस नहीं होता है। इसके सिवाय कोई साहस करती है तो वे किस प्रकार दुस्साहसी हो जाती है यह आप लोग ही जानें। वर्तमान शिक्षा जगत में जिस प्रकार के सांस्कृतिक कार्यक्रमों का क्रम चला है और उनके अन्तर्गत जिस प्रकार से खुले मंचों पर कन्याओं के नृत्य दिखाये जाते है, वे हमारी नैतिक संस्कृति के अनुकूल नहीं होते है। आज के माता-पिता अपनी बच्चियों को इस तरह स्टेज पर नाचती हुई देखकर खुश होते हैं, किन्तु इस पद्धति का कैसा कुप्रभाव उनके जीवन पर पड़ता है, उसका समय रहते वे आकलन नहीं कर पाते हैं, फलस्वरूप चरित्र सम्बन्धी दोष उत्पन्न होते हैं, जिनसे आगे जाकर दुःखभरी परिस्थितियां पैदा हो जाती हैं। नृत्य कला एक प्रकार की कला है। पहले भी यह कला कन्याओं को सिखाई जाती थी, किन्तु

उनका नृत्य अन्य पुरुषों के समक्ष नही कराया जाता था ताकि उनका शील शालीन बना रहे । विश्वसुन्दरी कलाओ की जानकार थी, लेकिन शीलवती और शालीन स्वभावी थी । उसने चन्द्रसेन को दूर से जब भीतर घुसते हुए देखा तो वह सावधान हो गई । अब तक उसकी सामायिक भी पूर्ण हो चुकी थी । अतः अपनी साधना समाप्त कर उसने आत्मरक्षा की तैयारी की । धनुष बाण हाथ में लेकर वह चन्द्रसेन के सामने पहुंची । उसने कड़कते हुए शब्दों में पूछा—बिना पूछे मेरे भवन मे प्रवेश करने वाले तुम कौन हो ? तुम्हारे हाथ में मेरे पिताजी की मणि कैसे पहुंच गयी है ? मेरे पिताजी कहा है ? इस तरह उसने नवागन्तुक के सामने प्रश्नों की झड़ी लगा दी ।

चन्द्रसेन उस वीरबाला की तरफ देखते हुए कुछ देर तक मन्द-मन्द मुस्कुराते रहे, बोले कुछ भी नहीं । विश्वसुन्दरी गरज उठी—यदि आपने किसी धूर्तता अथवा क्रूर कर्म से मेरे पिताजी की मणि प्राप्त करली है और अब इस भवन पर अपना अनुचित अधिकार जमाने के लिए आने का दुस्साहस किया है तो सावधान हो जाइये और पहले मुझ से दो-दो हाथ कर लीजिए । मै वीर कन्या हूं और वीरता के साथ आत्मरक्षा करने की कला जानती हूं । आप किसी भ्रम में न रहें ।

चन्द्रसेन भी चरित्र सम्पन्न पुरुष थे । वे परस्त्री को माता और बहिन के समान ही समझते थे । यद्यपि वहां पर उस समय वे भिन्न परिस्थिति मे खड़े थे । वे जानते थे कि इस युवा रूपवती के साथ उनका विवाह होना है । फिर भी उस समय सम्पूर्ण भवन में विश्वसुन्दरी के एकाकी होने के बावजूद उनका मन तनिक भी विचलित नही हुआ । जब वह वीरबाला युद्ध करने के लिए सामने खड़ी हो गई तो उन्हें मन ही मन प्रसन्नता हुई कि नारी हो तो ऐसी जो आत्मरक्षा में सन्नद्ध हो । अपनी भीतरी प्रसन्नता को उन्होंने मात्र अपनी मुस्कान में ही प्रकट की । उसी तरह मन्द-मन्द मुस्कुराते हुए वे बोले—तुम किस के साथ युद्ध करने के लिए तैयार हो गई हो ? क्या तुम अतिथि का महत्त्व भी नही जानती हो ? मैं तुम्हारे यहां एक मान्य अतिथि के रूप में आया हूं और तुम हाथ में शस्त्र उठाकर सामना करने के लिए आ गई हो—यह तुम्हारा कौनसा

शिष्टाचार है ?

अपने प्रश्नो के उत्तर मे नवागन्तुक के ये प्रश्न सुनकर विश्व-सुन्दरी हतप्रभ सी हो गई। यह विचार में पड़ गई कि यह कैसी वस्तुस्थिति है ? उसे यह भी आभास हुआ कि सामने उपस्थित पुरुष न तो हिंसक हो सकता है और न ही क्रूरकर्मी। वह तो असाधारण पुरुष सा दिखाई दे रहा है—एक शान्त और सौम्य पुरुष जो उसे ही उसके कर्त्तव्य का भान दिला रहा है। उसके हाथ में कोई शस्त्र भी नहीं है और उसके मुख से भी फूलो की तरह मधुर शब्द झड रहे हैं। उसे समझ में आ गया कि उसकी आशंकाएं निराधार है। उसके तन-मन में इस विचारणा के साथ ही हल्कापन आ गया और तनाव मिट गया। तब वह सरल स्निग्ध स्वरूप मे महाराजा के सामने खड़ी रही। वह कुछ भी बोल नही पा रही थी।

तब चन्द्रसेन ने अपनी सुकोमल वाणी में कहना शुरू किया—देखिये मेरे हाथ में कोई शस्त्र नहीं है कि मै यहां पर कोई क्रूर कर्म करके और मणि लेकर आया होऊं। मेरे पास में जो शस्त्र है वह तुम्हें दिखाई नहीं दे रहा है क्योंकि वह प्रेम का शस्त्र है और यह प्रेम का शस्त्र भी मैंने स्वयं ने नही उठाया है बल्कि तुम्हारे पूज्य पिताजी ने ही मुझे सौंपा है। तुम शान्ति और धैर्य रखो, मैं तुम्हे पूरा विवरण सुनाता हूं। निश्चिन्त हो जाओ कि मैंने छल-कपट पूर्वक कुछ भी नहीं किया है।

विश्वसुन्दरी ने यह सब सुना तो उसके हृदय में विश्वास की ज्योति जल उठी। उसे उक्त भविष्यवाणी का भी ध्यान था ही। उसने अपने हाथ के शस्त्र को दूर रखा और सिंहासन पर बैठने का उसने आगन्तुक से आग्रह किया। चन्द्रसेन भी 'अपनी होने वाली' कन्या की आंखों में झांक रहे थे और उसके चरित्र के विभिन्न पहलुओ को कौतूहल से देख रहे थे। उन्होंने अनुभव किया कि परिस्थितिवश उसकी आंखों में चंचलता आई किन्तु उसके साथ वीर रस भी जागृत हुआ। वस्तुतः उसका रूप-स्वरूप अलौकिक है लेकिन उसमें गम्भीरता है, शालीनता है तथा सौम्यता है। उन्होंने मान लिया कि वह एक नारी रत्न है।

ज्योंही महाराजा चन्द्रसेन सिंहासन पर बिराजे तो विश्व

सुन्दरी हाथ जोडकर सामने खड़ी हो गई और कहने लगी—महाशय, मेरी भूल के लिये आप मुझे क्षमा करे। मै नही जान रही थी कि आप मेरे पिताजी से आज्ञा लेकर ही यहा अतिथि के रूप में पधारे है। कृपया आप जलपान करके मेरी जिज्ञासा को शान्त कीजिये कि आपका यहां आगमन किस प्रकार एवं किस रूप में हुआ है? यह कहकर विश्वसुन्दरी चन्द्रसेन के जलपान हेतु भीतर से विविध व्यंजन लाने मे लग गई। जलपान के वाद महाराजा चन्द्रसेन ने उसे पूरा विवरण सुनाया कि किस उद्देश्य से वे इस चम्पा नाम के वगीचे में आये, किस तरह वहां मणिधारी सर्प के रूप में उसके पिताजी से भेट हुई और उनके सत्कार और स्नेह से कैसे वे परम हर्षित हुए? उन्होने यह बताते हुए विश्वसुन्दरी को अपना परिचय भी दिया और नाम भी वताया। नाम सुनते ही विश्वसुन्दरी सव कुछ समझ गई। तब चन्द्रसेन ने कहा कि जब उन्होने उसके पिताजी की, जिम्मेदारी स्वयं ले लेने का वचन दिया तो वे तुरन्त दीक्षा ग्रहण करने के लिये वही से आकाश मे उड़ गये। उनके निर्देशों के अनुसार ही वे उनकी मणि लेकर भवन मे उपस्थित हुए है।

तत्क्षण विश्व सुन्दरी अपने होने वाले पति के चरणों मे झुक गई और चरण स्पर्श करके वोली—आपका नाम सुनते ही भविष्य-वाणी के अनुसार मैं सव कुछ समझ गई हू तथा इस सम्वन्ध में सारी बात मुझे मेरे पिताजी वता चुके है। सिर्फ यह नही वताया था कि वे इस तरह यकायक चले जायेगे। धन्य है वे, जो उन्होने अपने आत्म-कल्याण के मार्ग पर आगे वढने में एक क्षण का भी विलम्ब नही किया। उनकी उच्च समता साधना के अनुसार मै सोचती हूं कि वे मोहग्रस्त होने वाले पुरुष ही नही थे। वे तो प्रतीक्षा ही कर रहे थे कि कब आपका पदार्पण हो और कब वे मेरा हाथ आपको सौंपकर इस कर्त्तव्य से मुक्त हो जाय। वे भाग्यशाली हैं कि उन्हे अपना वाछित अवसर मिल गया है। किन्तु मै भी कौनसी कम भाग्यशाली हूं जो आप जैसे गुणगान जीवन-साथी मिल रहे है।

इस ससार में कई तरह के स्वभाव वाले माता-पिता होते है। कुछ तो ऐसे भी होते है, जो केवल सन्तान को जन्म देने वाले होते हैं। विरले ही होते है, जो सन्तान की जीवनोन्नति के प्रति अपने

कर्त्तव्यों का निर्वाह करते हैं। कई माता-पिता पहले अपने स्वार्थों को देखते हैं और उन्हें पूरे करने के लिए अपनी सन्तान का उपयोग कर लेते है। किन्तु विश्वसुन्दरी के पिता ने अपनी पुत्री के जीवन को संस्कार सम्पन्न एवं सुखी बनाने के लिए कड़े कष्ट सहन किये और उसे योग्य वर को सौंप कर ही अपनी आगे की राह ली। भविष्य वक्ता द्वारा जानकारी लेने पर ही वे यहां रहने आये थे और मणिधारी सर्प के रूप में चम्पा बाग में भ्रमण करते रहे थे कि एक दिन उन्हें अपनी बेटी के लिए योग्य वर से भेंट हो सके। अपनी सन्तान के प्रति अपने सभी कर्त्तव्य पूरे करके ही वे आत्म-साधना के मार्ग पर पहुचे। अपने पिता के उपकारों का स्मरण करते हुए विश्वसुन्दरी अपने को अति कृतज्ञ अनुभव कर रही थी।

विश्वसुन्दरी ने महाराजा चन्द्रसेन से तब विनयपूर्वक निवेदन किया—आपको मेरे पिताश्री ने जो निर्देश दिये, वे मैने आपके मुख से सुन लिए हैं और अपने मन की सलज्ज स्वीकृति आपके चरणो मे प्रस्तुत कर दी है। अब आप जो भी आज्ञा दे, यह दासी उसे पूरी करने के लिए तत्पर खड़ी है। इसके साथ ही उसके नेत्रों से आंसुओं की धारा बह चली, जो आंसू उपकारी पिताश्री की स्मृति मे भी बह रहे थे तो अपने सुखमय भविष्य की प्रसन्नता मे भी।

मोती जैसे उन आसुओं का बहना महाराजा चन्द्रसेन को सहन नही हुआ, वे बोले—देवी, तुम्हारे नेत्रों से यह आसुओ की धारा क्यों बह चली है? क्या तुम्हारे हृदय मे किसी प्रकार का दुःख तो नही जगा है? अपने मुख पर निश्छल हंसी बिखेरते हुए विश्व-सुन्दरी ने कहा -महाराज, वे वियोग और संयोग दोनो के मिले-जुले आंसू हैं। पिताजी इस विवाह अनुष्ठान तक ठहर जाते तो अधिक संतोष मिलता। लेकिन उनका मेरे जीवन पर असीम उपकार है, जिसकी अन्तिम कड़ी है कि वे मुझे आपके सर्वश्रेष्ठ संरक्षण मे सौंप गये। इस संयोग के भी ये हर्षाश्रु हैं।

विश्वसुन्दरी के आंसुओ को अपनी कोमल अंगुलियों के छोरों से पौंछते हुए चन्द्रसेन ने आश्वस्त करते हुए कहा—कैसे भी हो, इन आंखों में आंसू मैं नहीं देख सकता हूं। तुम्हारे पिताश्री एक महान् आत्मा हैं, जिन्होंने एक ही पल में मोह का बंधन छिन्न-भिन्न कर

दिया और विना एक क्षण का भी विलम्व किये आत्म-कल्याण के मार्ग पर वीतराग भाव से वढ़ गये । मैं भी सामायिक की साधना का अभ्यासी हू और मैंने देखा कि तुम्हारा जीवन भी साधना के प्रति ही उन्मुख है । इस दृष्टि से हमारे जीवन का संयुक्त-स्वरूप आदर्श ही वनेगा—ऐसा मेरा विश्वास है । मेरा विश्वास तो यह भी है कि तुम्हारी कौख से ऐसा पुत्र उत्पन्न होगा जो हमारे श्रेष्ठ सस्कारो से संवर कर मेरे राज्य की प्रजा के लिए अति लोकप्रिय शासक सिद्ध होगा । यदि तुम्हारी सहमति हो तो आज ही दोनो विवाह-सूत्र मे आवद्ध हो जाएं ....।

विश्वसुन्दरी उसका अपने मुख से क्या उत्तर देती—सहमति का संकेत वह व्यक्त कर ही चुकी थी और अभी जो उत्तर उसे देना था वह उसने अपनी लाज भरी आंखों को नीची करके दे दिया । वह तो आनन्दमग्न हो गई कि उसे ऐसा भव्य, सद्‌गुणी एवं सुन्दर पुरुष पति के रूप मे प्राप्त हो रहा है । विवाह का प्रसग उसके कल्पना लोक मे छा गया क्योकि उसे अपने जीवन की सार्थकता साकार रूप लेती हुई दिखाई दी ।

चन्द्रसेन ने ही वार्ता आगे वढाई—देखो, विवाह की कई पद्धतिया प्रचलित है । यदि वर और वधू दोनो वयस्क हो तथा समान गुण, शील व धर्मधारी हों तो वे विना किसी साक्षी के भी स्वयमेव विवाह सूत्र में आवद्ध हो सकते हैं । दूसरे, सार्वजनिक विधि से भी विवाह कार्य सम्पन्न हो सकता है । विवाह विधि के सम्वन्ध मे तुम्हारा अपना विचार क्या है ? जव विश्वसुन्दरी भी सुशिक्षित थी तो उसे भी अपनी सम्मति तो देनी ही चाहिये । वह वोली—पहली पद्धति भी बुरी नही है किन्तु जगत्साक्षी से सार्वजनिक विधि ही उत्तम मानी जानी चाहिये । पिताजी आते तो उनकी साक्षी को ही पर्याप्त मान लेते किन्तु इस समय यही उचित रहेगा कि किसी की साक्षी से ही यह शुभ कार्य सम्पन्न किया जाय । चन्द्रसेन को उसके विचार जानकर वडो प्रसन्नता हुई कि यौवन के उद्दाम आवेग के वाद भी उसका कैसा मनोनिग्रह है ? तरुणाई की यह अवस्था तो ऐसी होती है जिसमे पुरुष या स्त्री दौड़ती ही नहीं, वल्कि आकाश में उड़ती है, किन्तु यह विश्वसुन्दरी कितनी सन्तुलित, संयमित और

मर्यादाशील है ? उनके हृदय में हर्षावेग बढ़ चला कि अपने उद्देश्यों के अनुकूल यह कितना सुन्दर सयोग बना है ?

चन्द्रसेन ने तब यही कहा—वस्तुतः तुम्हारी सम्मति सर्वथा उचित है । गुप्त विवाह में कोई कुछ भी भ्रम पैदा कर सकता है, इसलिये साक्षी से ही विवाह किया जाना चाहिये । मैं तुम्हारी भावना का सम्मान करता हूं । मै भी बाहर जाता हूं और किसी को साक्षी के रूप में लेकर वापिस आता हूं । इतना कहकर वे उठ खड़े हुए और मणि हाथ मे लेकर प्रवेश द्वार की ओर बढ़ चले । उनके साथ-साथ ही विश्वसुन्दरी भी शिष्टाचार के रूप में उठ खड़ी हुई और उन्हें द्वार तक पहुंचाने हेतु आगे बढ़ी ।

मणि हाथ में लेकर महाराजा बावड़ी से बाहर निकल आये और वहां पहुंचे जहां उनका चपल अश्व बंधा हुआ था । वे घोड़े पर सवार हुए और निकटस्थ गांव की दिशा मे बढ चले । गांव में पहुंच कर वे किसी विवाह कराने वाले पण्डित की खोज करने लगे । आखिर उन्हें एक पण्डित का पता चला । वे उसके निवास स्थान पर गये और पण्डित से कहने लगे—मैंने सुना है कि आप विधिपूर्वक विवाह संस्कार तो कराते ही है किन्तु साथ-साथ वर-वधू को उनके दाम्पत्य कर्त्तव्यों का बोध भी कराते हैं। आपकी शैली बहुत ही श्रेष्ठ है । क्या आप ऐसा ही उत्तम विवाह संस्कार कराने के लिये मेरे साथ चल सकेंगे ? पण्डित जी साथ चलने को तैयार हो गये, मगर पूछने लगे कि चलना कहां होगा ? राजा ने कहा - यहां से चम्पा नामक बगीचे मे चलें और वहां की बावड़ी पर पहुचना है । बावड़ी का नाम सुनते ही पण्डित जी बिदक गये, बोले—वहां मैं कतई नही चलूंगा क्योंकि मैं जानता हूं कि वहा पर एक मणिधारी विकराल सर्प रहता है । वहां पहुंचते ही मृत्यु एक निश्चित बात है । राजा ने समझाया—देखो वक्त एक सा नही रहता, बदलता रहता है । अब बावड़ी पर कोई खतरा नही है । मैं वही से आ रहा हू । मेरा कुछ नहीं बिगडा है फिर भला आपको कोई खतरा कैसे हो सकता है ? और मैं जो आपके साथ रहूंगा । आप अपनी सुरक्षा के बारे मे निश्चिन्त रहें । यह कहकर राजा ने पच्चीस स्वर्ण मुद्राएं पण्डित के हाथ पर धर दीं और कहा कि कार्य सम्पन्न करा लेने के बाद और धन मिलेगा । सोने

के पीलेपन ने पण्डितजी को सन्तुष्ट ही नही कर दिया वल्कि खुशी से पागल भी वना दिया। उसने इतना सोना एक साथ अपने जीवन काल मे भी नही देखा था। वह खुशी-खुशी राजा के साथ हो गया।

उस बावड़ी पर पहुंचते ही एक बार तो पण्डित की कपकपी छूट गई और वह चारों ओर सांप की झलक देखने लगा। राजा ने उसे आश्वस्त किया कि तुम्हारा वाल भी वांका नही होगा और कोई खतरा आया भी तो पहले मेरे पर आयेगा। मैं आगे-आगे चल रहा हूं, तुम मेरे पीछे-पीछे चले आओ। लेकिन मैं तुम्हारी ग्रांखो पर पट्टी वांधूंगा और तुम्हारे हाथ को पकड़ लूंगा ताकि तुम भयभीत नही होवो। पण्डित मान गया और राजा उसे हाथ पकड-पकड़ ठेठ विद्याधर के भवन मे ले चले गये।

भवन मे पहुंचकर पण्डित की आंखों की पट्टी खोल दी गई। तव वहा का दृश्य देखकर वह तो आश्चर्य चकित रह गया। वह समझ भी नही सका कि बावडी से वह इस महल मे कैसे और किस मार्ग से पहुंचा दिया गया है। वह असमजस मे गिरा हुआ सोचता रहा कि यह तो कोई दैविक रचना है और शायद जो उसे लाये हैं, वे भी कोई देव ही होने चाहिये। भय और हर्ष से पण्डित का मुंह लाल हो गया। तव चन्द्रसेन ने पण्डित को विश्वसुन्दरी का परिचय कराया और वताया कि उसे उन दोनो का विवाह सम्पन्न कराना है।

सबसे पहले पण्डित को विवाह का शुभ मुहूर्त निकालने के लिये कहा गया। पण्डित ने पोथी पत्रा देखा तो उसका चेहरा खिल उठा। उसने हर्षित होते हुए कहा—इस समय सर्वश्रेष्ठ मुहूर्त विजय मुहूर्त है ग्रौर इसी भव्य मुहूर्त मे विवाह कार्य प्रारम्भ हो जाना चाहिये।

यह आवश्यक नही होता कि जैसा पात्र होता है या जैसा उसका भावात्मक व्यवहार होता है, वैसा ही कथन किया जाता हो। सत्य तत्त्व को प्रकट करने के लिये कौन-सी वात कितने ग्रशो मे हरेक के लिये आचरण के योग्य होती है, वही सुनाई जाती है—ऐसा न समझे। जैसे यह मुहूर्त की ही वात आई है। कई भाई सन्तों के पास ग्राकर कहते हैं कि मुहूर्त निकाल दीजिये। भगवान् ने कहा है कि

समय मात्र का भी प्रमाद मत करो । मैं मेरी बात कहता हूं, किसी पर जवरदस्ती थोपता नहीं कि जहां समय मात्र के लिये भी विलम्व न करने का आदेश है, वहां भला मुहूर्त के लिये विलम्ब करने की क्या आवश्यकता है ? यदि दीक्षा करवाने वाला मुहूर्त मे विश्वास करता है तो मैं उनसे कह देता हूं कि आप अपनी स्थिति से जो करना चाहो, करो, लेकिन ऐसी साधना के कार्य में मुहूर्त के विश्वास को मै मानसिक रोग के समान समझता हूं । मैं एक बार जावरा में था, तब लोगों ने वहां के ख्याति प्राप्त राज ज्योतिषी जी से मुहूर्त निकलवाने का सुझाव दिया । मैंने उनसे पूछा कि क्या उनका निकाला हुआ मुहूर्त सदैव शुभ ही होता है ? तब कोई भाई फुस-फुसाया—उनके चार कन्याएं थी, बेचारी चारों बाल विधवा हो गईं । फिर मेरे बोलने को जरूरत ही नही पड़ी । क्या कोई ज्योतिषी अपनी कन्याओं का विवाह-मुहूर्त बेपरवाही से निकालेगा ? इसे छोड़िये, लेकिन विश्वामित्र जैसे ऋषि ने राम के सिंहासनारोहण का जो मुहूर्त निकाला था, कितनी बड़ी विडम्बना हुई कि उसी मुहूर्त में राम को वनवास के लिये प्रस्थान करना पड़ा । अतः यह मुहूर्त का मामला मन की सन्तुष्टि से अधिक कुछ नही होता है ।

चन्द्रसेन प्रतिदिन नियमित रूप से सामायिक की साधना करते थे । उन्हें नवकार मंत्र पर अटूट आस्था थी अत· उन्होंने पंडित से कहा—आपने मुहूर्त निकाला सो उत्तम है लेकिन मेरी अभिलाषा है कि आप विवाह संस्कार का प्रारम्भ नवकार मंत्र के जाप से करें क्योंकि यह महामत्र सम्पूर्ण तत्त्वों का सार है । तदनुसार चन्द्रसेन और विश्वसुन्दरी वर-वधू के वेश में विवाह मण्डप मे वैठकर मन में नवकार मंत्र का जाप करने लगे तो पण्डित भी मधुर गीतध्वनि में नवकार मंत्र बोलने लगा ।

उसके वाद पण्डित ने विवाह विधि चालू की । मंत्रोच्चारण के साथ विधि सम्पूर्ण करके पण्डित ने चन्द्रसेन से कहा—कन्या आपसे प्रतिज्ञा करना चाहती है कि मैं आपकी धर्मपत्नी या अर्धांगिनी तभी वनूं जब आप मेरे अलावा जगत्साक्षी से संसार की सभी स्त्रियो को माता और वहिन के तुल्य माने । चन्द्रसेन ने स्पष्ट किया—मैंने इनके सिवाय पहले बारह विवाह कर रखे हैं अतः इन सहित सभी

विवाहितों के अलावा मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि ससार की अन्य सभी स्त्रियों को माता और बहिन के तुल्य समझूंगा । तब विश्वसुन्दरी ने भी प्रतिज्ञा की कि मै इनके सिवाय जिनके साथ मेरा सम्बन्ध जोडा जा रहा है, ससार के अन्य सभी पुरुषो को पिता और भाई के तुल्य मानूंगी । यदि दीक्षा ग्रहण करके साध्वी बन जाऊं तो ये भी मेरे भाई तुल्य हो जायेगे ।

क्या आप लोग अनुभव करते है कि इस प्रतिज्ञा के प्रति बहिने जितनी दृढ होती है, शायद है पुरुष वर्ग उतनी दृढ़ता नही रखता ? इस तथ्य की निश्चितता अपने अपने घट के भीतर झांकने से ही हो सकेगी । बहिनों की प्रतिज्ञा के प्रति पूरी आस्था होती है किन्तु जब तक दोनो पक्ष दृढपूर्वक प्रतिज्ञाबद्ध नही रहते हैं तब तक शुद्धाचरण और सयम की स्थिति नही बन पाती है । कदाचित् कायिक वृत्ति पर रोक रह जाती होगी, परन्तु मानसिक वृत्तियो को चलायमान न होने देना बड़ा कठिन रहता होगा ।

आज के कई भाई सामायिक को अज्ञान दृष्टि से सोचकर यह कहते है कि हमारा मन अकुश में नही रहता है, लेकिन वे यह नही समझते कि सामायिक का मूल उद्देश्य ही मन को साधना है—अकुश मे लेना है । सामायिक मे बैठने पर वचन और काया की अस्थिरता तो मिटती ही है । इस दृष्टि से काया का चालीस प्रतिशत और वाणी का तीस प्रतिशत माने, तब भी सत्तर प्रतिशत सामायिक का हिसाब तो बैठ ही जाता है । वचन और काया की स्थिरता के बल से तब मन की स्थिरता साधने का अभ्यास करते रहना चाहिये । इस तरह धीरे-धीरे ही सही, लेकिन मन की स्थिरता का प्रतिशत भी बढता जायगा और कुछ ही अर्से मे सामायिक की साधना पूरी सफलता के साथ सधने लग जायगी । यह अवश्य है कि मन की साधना सहज नही होती है । रथनेमि जैसे बड़े-बड़े योगियों का मन भी कभी डिग जाता है । आप यह सोचते है कि सामायिक के अड़तालीस मिनिट तक भी मन स्थिर नही रहता है और बाहर कल्पनाओ मे दौड़ने लग जाता है । इसी कारण आपका विचार सशंकित हो जाता है कि मनस्थिर नही रह सकेगा और सामायिक के प्रति अज्ञान भाव जम जाता है । मन की कल्पना की दुनिया तो लम्बी चौड़ी होती है अत.

सामायिक में पहले वचन और काया की स्थिरता साध लें और तव एकनिष्ठा से मन को नियन्त्रण में करने की चेष्टा करे। किसी भी रूप में सामायिक के नियम को अपने उपेक्षा-भाव मे मत रखिये और सामायिक की साधना निरन्तर करते रहिये। यह तो खयाल करिये कि अड़तालीस मिनिट तक जव आप सामायिक में वैठे है तो कम से कम आपका मन यह तो नही कहेगा कि आप भोजन करलें या कि दुकान पर जाकर व्यापार शुरु करदे क्योंकि व्रत लेकर सामायिक तोड़ने का विचार तो नही ही बनेगा। इतना ही सोचा जा सकता है कि इस सामायिक के पूरी होते ही भोजन कर लूंगा अथवा दुकान पर जाकर व्यापार शुरू कर दूंगा। इस रूप में सामायिक के चलते हुए इतना भी मन नियन्त्रित हुआ तो वह भी उपलब्धि ही है।

सामायिक–साधना की स्थिरता का जब किसी के जीवन मे संचार हो जाता है तो वह संसार के कार्यो को भी स्थिर बुद्धि से सोचकर उन्हे भव्य तरीके से पूरे करता है। ऐसी ही स्थिर वैचारिकता के साथ विवाह सस्कार की सम्पन्नता हो गई। पण्डित को उन्होने विपुल धनराशि दी। वह प्रसन्नता से फूला जा रहा था कि जीवन मे पहली वार उसे इतनी धनराशि मिली है। उसने तब उसे जल्दी घर पहुचा देने का निवेदन किया। पहले की तरह आंखो पर पट्टी वांधकर चन्द्रसेन उसे बावड़ी से वाहर ले गये और फिर उसके घर पहुचा आये। चन्द्रसेन पुन. भवन मे लौट आये और विश्वसुन्दरी के साथ आनन्द से वही रहने लगे।

चन्द्रसेन ने अपना सारा पूर्व वृत्तान्त विश्वसुन्दरी को वताया और अपने जीवन परिवर्तन की कहानी भी सुनाई। उन्होंने यह भी कहा कि अपनी पटरानी की प्रेरणा तथा सन्तों के समागम से उन्होंने सामायिक की जिस साधना को पुष्ट किया है उसके माध्यम से उनके जीवन में स्थिरता, धैर्य एवं गम्भीरता आदि गुणो का सचार हुआ है। सामायिक के आनन्द रस से उनका प्रत्येक पल ओत–प्रोत रहता है। अन्त में उन्होंने कहा—हे विश्वसुन्दरी, तुम सी धर्मपत्नी पाकर मै आनन्द विभोर हो रहा हूं और यह कामना करता हूं कि तुम मुझे सामायिक के साधना-पथ पर अधिक अग्रगामी वनाओगी।

❀ ❀

पति और पत्नी की जोडी शरीर सम्बन्धों के लिये ही नहीं होती है अपितु दोनों के बीच मे अटूट आत्मिक सम्बन्ध भी माना गया है कि विवाहोपरान्त वे दो शरीर और एक आत्मा हो जाते है। आत्मिक सम्बन्ध का यह अर्थ है कि दोनो आत्म-विकास हेतु साथ-साथ मे धर्म की आराधना निष्ठापूर्वक करें तथा समता-साधना मे एक दूसरे के सहायक एवं पूरक बने। पति और पत्नी मे भी पत्नी पर अधिक दायित्व रखा गया है और इसलिये उसके पहले धर्म शब्द जोड़ा गया है। पत्नी को धर्मपत्नी कहा गया है, बल्कि पत्नी शब्द का संस्कृत में विश्लेषण किया गया है—पतिं नयति इति पत्नी अर्थात् जो धर्म मार्ग पर पति को अपने साथ-साथ ले जाती है। पति-पत्नी के पारस्परिक दायित्वो को समझते हुए ही चन्द्रसेन ने अपनी धर्म-पत्नी विश्वसुन्दरी से कहा था—ओ विश्वसुन्दरी, तुम सी धर्मपत्नी पाकर मैं आनन्द विभोर हो रहा हू और यह कामना करता हूं कि तुम मुझे सामायिक के साधना पथ पर अधिक अग्रगामी बनाओगी।

इस अभिलाषा के व्यक्तिकरण के साथ ही चन्द्रसेन ने अपनी समता साधना का भी विश्वसुन्दरी को परिचय दिया—पहले मैं अपने इस दुर्लभ शरीर का दुरुपयोग ही करता था और किसी प्रकार की साधना नही करता था। किन्तु मेरी पटरानी ने मुझे अद्भुत प्रेरणा दी तथा सन्तों का संसर्ग कराया जिससे मैं समता-साधना की तरफ मुड़ा। धीरे-धीरे जब मेरा आनन्द रस बढने लगा तो सामायिक मे मेरी निष्ठा भी बढ़ने लगी। अब मैं नियमित रूप से साधना करता हू और सामायिक किये बिना मुझे चैन नही पड़ता है। सामायिक किये बिना मैं भोजन नही करता हूं। मैं चाहता हू कि तुम भी मेरी तरह सामायिक का कठोर व्रत लेकर चलो। पति-पत्नी का पारस्परिक कर्त्तव्य ही यह होता है कि वे एक दूसरे को धर्म के मार्ग पर पूर्ण सहयोग देते हुए चले।

शादी विवाह के प्रसंग को आज दुनिया ने विकृत रूप मे ही समझ लिया है। पति-पत्नी यहां पर विषय-वासना के सेवन हेतु ही नही है। वे अधिक से अधिक जितना बन सके, उतना ब्रह्मचर्य का

पालन करे । पति में यदि दृढ़ता का अभाव है तो पत्नी का परम कर्त्तव्य है कि वह पति को धर्म कार्य मे पूर्णरूप से प्रवृत्त करे। वह यदि ऐसा नहीं करती है तो वह अपने कर्त्तव्य से गिरती है । वैसी अवस्था मे उसे धर्मपत्नी नही वल्कि कर्म पत्नी ही कहना पड़ेगा । कदाचित् धर्मपत्नी भी धर्म के मार्ग पर नही चल रही है तो पति का भी कर्त्तव्य होता है कि वह उसको धर्म के मार्ग पर चलावे, नही तो उसे भी धमपति के स्थान पर कर्म पति कहा जायगा । वास्तव मे जो धर्मपति है, वह कभी भी गलत रास्ते पर न खुद जाता है और न अपनी पत्नी को ले जाता है । वह पत्नी को अश्लील सिनेमा या वैसे विकारग्रस्त स्थानो पर नही ले जाता है । कई फिल्मे विकारी भावनाओं को उभारने वाली होती है । कभी पत्नी आग्रह करती है कि सिनेमा चलो, या कभी पति पत्नी को सिनेमा चलने का आग्रह करता है—ऐसा आग्रह न धर्मपति को करना चाहिये, न धर्मपत्नी को । ऐसा आग्रह करने वाले पति–पत्नी मानव तन के रहस्य को नहीं समझने वाले माने जायेगे । सच्चे धर्म–पति और धर्मपत्नी को अपनी वृत्तियों तथा प्रवृत्तियो पर गम्भीर चिन्तन करते रहना चाहिये कि कौनसी वृत्तिया और प्रवृत्तिया उन्हे धर्म मार्ग पर आगे वढ़ाने वाली है तथा कौनसी पीछे हटाने वाली ? इस प्रकार के चिन्तन का सुन्दर अवकाश सामायिक की साधना के समय ही प्राप्त होता है, अतः सामायिक की साधना किसी भी सुयोग्य दम्पत्ती के लिये परमावश्यक है । इसी वात पर चन्द्रसेन ने विश्व-सुन्दरी के समक्ष पूरा वल दिया ।

महाराजा चन्द्रसेन की नवीन धर्मपत्नी विश्मसुन्दरी रूप लावण्य में अद्वितीय थी । पूर्व जन्म में उसने धर्मसाधना की इसलिये उसे सुन्दर तन प्राप्त हुआ एव विश्वसुन्दरी नाम से विख्यात हुई । लेकिन कोई अगर पूर्व जन्म की कमाई को इस जन्म मे खर्च ही करता रहे और नई कमाई नही करे तो भविष्य के जीवन का क्या रूपक वनेगा—इस पर आसानी से अनुमान किया जा सकता है। इसलिये इस जन्म में भी पुण्य कर्मों का उपार्जन करना चाहिये जो शुभ कार्यो के सम्पादन से ही सम्भव हो सकता है । इस दृष्टिकोण के साथ चन्द्रसेन विश्वसुन्दरी के हावभाव पर मुग्ध नही हुए, वल्कि

सोच रहे थे कि विश्वसुन्दरी को भविष्य में धर्म के मार्ग पर कैसे स्थिर बनावे । वे सोचते थे कि उसके हृदय मे अभी ममता अधिक है और समता कम, अतः उसके अन्तःकरण को शुद्ध बनाने का प्रयत्न किया जाना चाहिये ।

चन्द्रसेन महाराजा इस उद्देश्य से अपनी नवीन धर्मपत्नी विश्वसुन्दरी के कार्य कलापों का निरीक्षण—परीक्षण करने लगे । आवश्यकता समझते तो उसके किसी कार्य का बारीकी से भी अध्ययन करते । इस अध्ययन के दौरान उन्हे यह जानकर आश्चर्य होने लगा कि विश्वसुन्दरी विद्याधर की पुत्री होने के बावजूद भी प्रत्येक कार्य मे अतीव कुशल है । उन्हे यह अवश्य अनुभव हुआ कि उसका जीवन जितना चाहिये, उतना धार्मिक नही है, अत उन्होने उसके अधूरे जीवन को परिपूर्ण धार्मिक बनाने का निश्चय किया ।

महापुरुषो के चरित्र को सुनकर आपके मन में एक प्रकार की जागृति उत्पन्न होती होगी । आप सोचते होगे कि हम तो ऐसे नही है, लेकिन यह सोचते है या नही कि क्या हम ऐसे नही बन सकते है ? महापुरुषत्व वैसे ही नही मिलता है । ऐसी जागृति के फलस्वरूप जब चारित्र्य को ऊपर उठाया जाता है तथा त्याग के क्षेत्र मे आगे बढ़ा जाता है तभी जागृतिपूर्ण जीवन मे उच्चता का स्तर बनता है । ऐसे उच्च जीवन का अवलोकन करके अथवा उसके सम्पर्क मे रहने से भी प्रेरणा मिलती है । यों तो चन्द्रसेन का जीवन भी गृहस्थाश्रम का ही जीवन था जैसा कि आप लोगों का जीवन है । वे महाराजा थे तो आप भी अपने घर के महाराजा ही हो । आपने तो एक शादी कर रखी होगी, पर उन्होने बारह के बाद तेरहवी शादी भी कर ली थी, लेकिन फिर भी विचार करिये कि उनके और आपके जीवन मे क्या और कितना अन्तर है ? आपने ममत्व को कितना छोड़ा है और समत्व को कितना अपनाया है ? सामायिक की साधना मे आपका मन कितना रम गया है और आपका स्वभाव कितना सर्व जनहितकारी बन सका है ? आप अपने दुर्लभ जीवन का सदुपयोग कर रहे है अथवा उसे विनष्ट कर रहे है ? चरित्र भाग को सुनते हुए यह सारी तुलना और समीक्षा आपको पूरी करनी चाहिये । यह तुलना या समीक्षा भी शान्त और एकान्त मन से की जानी चाहिये

जिसके लिये भी सामायिक की साधना आवश्यक है। सामायिक में बैठकर इस विषय पर गहरा चिन्तन करें, ताकि जागृति की अवस्था उत्पन्न हो, जो समभाव मे ही सम्भव हो सकती है।

चन्द्रसेन भी इसी चिन्तन में लगे थे कि उन्होंने जिसे अपनी धर्मपत्नी वनाई है, उसमें धर्म के संस्कार कितने गहरे हैं? उन संस्कारों की गहराई का पता लगाकर उन्हें यह प्रयास करना होगा कि वे दृढतर बनें। धर्मपत्नी की वास्तविकता इसी में है कि वह पति के जोवन को धर्ममय बनादे। इतनी योग्यता विश्वसुन्दरी में भी जगा देनी होगी। इसी से दोनों पति–पत्नी के जीवन में समरसता पैदा होगी। यह वे जानते थे कि विश्वसुन्दरी साधारण नारी नहीं है, विद्याधर की पुत्री होने से संस्कारित एवं विचक्षण बुद्धिवाली है अत: धर्म और साधना का मार्ग यदि उसे समुचित रीति से दिखाया जायगा तो वह अवश्य ही उस पर निष्ठापूर्वक चलने के लिये उद्यत बन जायगी। उसे सिखाना होगा कि मानव के जीवन मे यदि धर्म नहीं है तो वह मूर्छित और प्राणहीन जीवन है।

इस चिन्तन के पश्चात् एक दिन अवसर देखकर महाराजा चन्द्रसेन अपनी धर्मपत्नी विश्वसुन्दरी से वोले—प्रिये, तुमने सभी प्रकार का विज्ञान सीखा है और अव विवाहोपरान्त मेरे साथ सम्वन्धित हो गई हो। इस दृष्टि से पति–पत्नी की विचारधारा समान और एकरूप होनी चाहिये तभी उनके जीवन में सामंजस्य वना रह सकता है।

विश्वसुन्दरी ने उत्तर दिया—प्राणनाथ, सच्चे अर्थों मे मैं पतिव्रता हूं। मैने समर्पित भावना के साथ विवाह किया है। मेरे विचार अव आपके विचारों से कतई भिन्न नहीं हो सकते है। मेरे पिताजी भी उदात्त धार्मिक विचारों के थे अत: उन्होंने मुझे तरुणों के ससर्ग में खुली छूट नहीं दी जिससे मेरा चरित्र संरक्षित रहा। यदि मुझे उचित दिशानिर्देश नहीं मिला होता तो आज मेरा जीवन कुछ का कुछ होता। आप निश्चिन्त रहें, जिस दिशा में, जिस गति से आपके चरण आगे वढ़ेगे, आपके पीछे-पीछे मेरे चरण भी चल पड़ेंगे। आप तो सुविज्ञ हैं कि जब राम के चरण वन की ओर चले तो क्या

किसी ने सीता को वैसा करने की सलाह थोड़ ही दी थी ? सीता के चरण स्वयमेव राम के चरणों के पीछे-पीछे चल पडे । पतिव्रता नारी का ऐसा सुनिश्चित चरित्र होता है। सीता को तो सभी ने समझाया कि वन का कष्टमय जीवन वह नही जी सकेगी अतः न जावे । राम ने भी समझाइश की लेकिन क्या सीता अपना पतिव्रत धर्म त्यागने को तैयार हुई ? नाथ, मै भी सीता के पतिव्रत धर्म को आदर्श मानकर उसका दृढतापूर्वक पालन करने वाली नारी हूं । आप किसी भी प्रकार की शंका को अपने मन मे स्थान न दे ।

चन्द्रद्रसेन हर्षित होते हुए कहने लगे—मुझे विश्वास हो गया है कि तुम भी वैसी ही पतिव्रत धर्म को दीपाने वाली नारी हो । परन्तु मैं यह जानना चाहता हूं कि तुमने अपने इस जीवन मे धर्म कला का कितना विकास किया है ? वीतराग देव के धर्म का कितना रस चखा है और उससे अपने जीवन को किस रूप में आप्लावित वनाया है ? अपने धर्मपत्नी के पद का धर्म कितना गहरा है ?

इन प्रश्नों को सुनकर विश्वसुन्दरी ने आश्चर्य के साथ महाराजा चन्द्रसेन की ओर देखा और मन ही मन सोचा कि ये कैसे पति है जो विवाह के पहले पूछी जाने वाली वात को विवाह के वाद पूछ रहे है ? फिर भी ये आदर्श पति है जो मुझे विवाह के वाद वासना की ओर नही मोड़ रहे है वल्कि धर्म पथ का ज्ञान करा रहे है । वह चन्द्रसेन की आकृति पर वदलते-उठते भावो का सूक्ष्म निरीक्षण करने लगी और उसके मन में निश्चय हुआ कि उसके पति पांच इन्द्रियों के विषय में ही आसक्त नही हैं । उनके जीवन मे धर्म की प्रधानता है । किन्तु उसने सोचा कि मुझे भी मेरे पति के धर्म सम्वन्धी अभिप्राय को स्पष्टतया से समझ लेना चाहिये । इस दृष्टि से प्रकट रूप मे विश्वसुन्दरी ने पूछा—आपका धर्म कला से क्या तात्पर्य है, कृपया विस्तार से समझावें ।

चन्द्रसेन ने समझाना शुरू किया—प्रिये, मैं भी पहले धर्म के मर्म को नही समझता तथा धर्मकला से विहीन जीवन जी रहा था । मेरी पटरानी ने सबसे पहले मुझे धर्म का वोध कराया और मैंने नित्य अडतालीस मिनिट की सामायिक-साधना प्रारम्भ की । तव से मै मन, वचन एवं काया से समभावी वनने का यत्न करता

आ रहा हूं । इस पर विश्वसुन्दरी ने कहा—वैसे तो मैं भी सामायिक से अनभिज्ञ नहीं हूं किन्तु आप जैसी सुदृढ़ साधना का मै लगनपूर्वक अनुसरण करूंगी एवं आपसे शिक्षा लेती रहूंगी । मै शीघ्रातिशीघ्र अपने जीवन के समस्त विचारों तथा आचरण को धर्मकला मे ढाल लूंगी तथा आपकी सच्ची धर्मपत्नी कहलाने का अधिकार प्राप्त करूंगी । तब चन्द्रसेन ने सामायिक की विधि बताई और उसके भावात्मक पहलू पर प्रकाश डाला । उन्होंने यह भी बताया कि चाहे रसोई बनाते हो, बाहर आते जाते हों या अन्य कोई भी कार्य करते हों—सदा काल विवेक को जागृत रखना चाहिये । कही पर भी हिंसा वृत्ति को बढ़ावा नही मिलना चाहिये और सभी के साथ व्यवहार करने मे अहिसा व समता को प्रमुखता दी जानी चाहिये । उन्होंने पुन: बल दिया कि सामायिक का व्रत प्रात:–सायं नियमपूर्वक पालन करना चाहिये, क्योकि सम्पूर्ण साधना के मगलाचरण के रूप मे सामायिक को विशिष्ट महत्त्व दिया गया है ।

विश्वसुन्दरी ने पुन: आश्वस्त किया—नाथ, मेरे माता-पिता दोनो परम धार्मिक थे तथा अपना सारा कार्य धर्म की प्रधानता के साथ ही करते थे । उन्ही के सुन्दर संस्कार मेरे जीवन मे भी व्याप्त हैं । मेरी माता का पहले ही स्वर्गवास हो चुका था और मेरे पिताजी साधु धर्म अंगीकार करने के लिये कितने उत्सुक थे—यह तो आप स्वयं जानते है ।

तब चन्द्रसेन एवं विश्वसुन्दरी दोनों ने सामायिक की पोशाक पहनी तथा साधना में अपनी एकात्मकता को जोड़ ली । चन्द्रसेन ने उसे सामायिक लेने के विभिन्न पाठो का महत्त्व समझाया और कहा—देखो, सामायिक में समस्त सावद्य योगों का परित्याग किया जाता है जिनमें अठारह पाप भी सम्मिलित है । पहला पाप हिंसा है और उससे बचना अहिसा धर्म है । हिसा में दस प्राणों की हिंसा मानी गई है—यह कहते हुए चन्द्रसेन ने दस प्राणो का स्वरूप समझाया तथा इन प्राणों की सर्वत्र एवं सर्वदा रक्षा करने की प्रेरणा दी । उन्होने यह सत्य भी प्रकट किया कि जिस प्रकार के कर्मो का उपार्जन किया जाता है, उसी के अनुसार उनका शुभ अथवा अशुभ फल भोगना पड़ता है, किन्तु सामायिक की साधना जितनी उत्कृष्ट

वन पडती है, उतने अशो में कई प्रकार के अशुभ कर्म क्षय भी होते रहते है । अत. सामायिक की साधना जीवन विकास के लिये अनमोल है । विश्वसुन्दरी ने इस तत्त्व—चिन्तन को दत्तचित्त होकर ग्रहण किया एव अपना सकल्प वनाया कि वह वर्तमान जीवन मे आत्म विकास की उच्चतर सीढ़ियो पर चढ़ती हुई अपनी आन्तरिक स्वरूप को प्रकाशमान वनाने का अथक प्रयत्न करती रहेगी ।

इस प्रकार सांसारिक जीवन के साथ-साथ चन्द्रसेन एवं विश्वसुन्दरी का धार्मिक जीवन भी निष्ठापूर्वक चलने लगा । वे पति-पत्नी थे यह सही था लेकिन अपने पदो के आगे लगे 'धर्म' शब्द को वे हमेशा हर कार्य में आगे ही रखते थे । अपने आचरण की सुचारुता के साथ वे गृहस्थ जीवन के आदर्शो को प्रकाशित करने लगे ।

समय तो अविराम गति से चलता ही रहता है-- वह कभी रुकता नही, किसी के लिये भी रुकता नही । चन्द्रसेन तथा विश्व-सुन्दरी का दाम्पत्य जीवन भी अति मधुरता व धार्मिकता को लेकर निरन्तर प्रवाहित निर्झर की तरह वह रहा था । एक दिन चन्द्रसेन को ज्ञात हुआ कि विश्वसुन्दरो गर्भ की स्थिति मे है तो उसी दिन से दोनो ने पूर्ण वह्मचर्य व्रत का पालन करना प्रारम्भ कर दिया तथा वे सामायिक की साधना मे भी अधिक समय देने लगे ताकि गर्भा-वस्था मे ही सन्तान श्रेष्ठ संस्कारो से मण्डित हो सके ।

ब्रह्मचर्य का पालन करना—यह धर्म का सस्कार है । जहा ये संस्कार नही हैं वहा कितनी भ्रूण हत्याए होती है । इस ज्वलन्त समस्या की तरफ न सरकार का ध्यान है, न समाज के नेताओ का खयाल । आज तो परिस्थितिया इतनी विषम हो गई है कि विवाह करने से पहले भी कई भ्रूण हत्याएं होने लगी है और अवैध गर्भपात को कानून सम्मत वना दिया गया है । दु खी व्यक्ति यहां भी आकर अपना दुःख सुनाते है और कहते है कि कोई मंत्र वताइये कि जिससे उनका दुःख मिट जाय । मैने पूछा कि आपको किस वात का दुःख है तो कहते है कि क्या वतावे, जितनी सन्तान आई, सव अधूरी वाहर आई, क्या यह ऊपर का दोष है ? मैंने कहा—न तो ऊपर का दोष है, न किसी दूसरे का दोष है । यह सव तुम्हारा ही दोष है ।

क्यों नहीं तुम जब गर्भ की स्थिति का ध्यान हो जाता है, तब ब्रह्मचर्य की स्थिति से रहते हो ? यदि अपनी वासना पर नियन्त्रण रखो तो अपनी सन्तान का भविष्य भी नही बिगड़ेगा । चन्द्रसेन विवेकशील साधक थे । इसीलिये उन्होने गर्भ की स्थिति की जानकारी होते ही ब्रह्मचर्य का पालन आरम्भ कर दिया तो दोनो पति-पत्नी धर्माराधना में प्रवृत्त हो गये ।

चन्द्रसेन प्रतिदिन सामायिक मे स्वाध्याय करते तथा नित नया ज्ञान लेते । चाहे वे अध्ययन करते अथवा ध्यान मे बैठ जाते, उसकी मुख मुद्रा पर सदैव प्रसन्नता खेलती रहती जो आकर्षक भी होती तो प्राभाविक भी । विश्वसुन्दरी एक दिन पूछ ही बैठी—नाथ, क्या कारण है कि आप सदा प्रसन्न दिखाई देते है ? चन्द्रसेन ने उसे समभाव एवं तटस्थता का सुफल बताया ।

एक दिन सदा प्रसन्न रहने वाले चन्द्रसेन के चेहरे पर जब कुछ उदासी दिखी तो विश्वसुन्दरी ने उसका कारण पूछा क्योकि यह उसके लिये आश्चर्य की स्थिति थी । चन्द्रसेन ने कहा - अब गृहस्थाश्रम की कठिन परिस्थिति मेरे सामने आ गई है और उसी की मै चिन्ता कर रहा हूं । अब तुम्हारे गर्भ को आठ मास पूरे होने आ रहे हैं, और ऐसे अवसर पर यहा एकाकी रहना उचित नही लग रहा है । बालक के जन्म के समय कोई भी कठिनाई आ जाय तो यहां निराकरण का कोई साधन नही है, इस कारण यह स्थान अब हमें छोड़ देना चाहिये । विश्वसुन्दरी ने भी समस्या का समर्थन करते हुए कहा—बालक की सब तरह से सुरक्षा की स्थिति तो होनी ही चाहिये । जहां भी आप कहे, मैं चलने को तैयार हूं । यहां से किसी भी समीप के शहर मे चले चले । तब चन्द्रसेन ने सुझाव दिया—किसी दूसरे शहर में क्यो चलें ? अपने राज्य की राजधानी चले, जहां बाहर के उद्यान मे स्थित मेरे भवन में सभी प्रकार की सुविधाएं उपलब्ध हैं ।

इस सुझाव पर विश्वसुन्दरी तुरन्त ही सहमत हो गई और दोनों वहां से रवाना होकर चम्पा नगरी के बाहर स्थित उद्यान में पहुंच गये । उद्यान का भवन खोल दिया गया तथा माली ने दीवानजी को महाराजा के आगमन की सूचना दी । दीवान से बात

अधिकारियो के वीच फैली और वहां से सारे नगर मे वात फैल गई । सारी जनता खुशी से झूम उठी कि महाराज वापिस पधार गये है, नया विवाह करके भी आये है और सवकी मनोकामना के शीघ्र पूर्ण होने की आशा भी है । महलों से लेकर झौपडियो तक प्रसन्नता का वातावरण छा गया ।

सूर्य के प्रकाश से ससार मे सभी प्रसन्न होते हैं, किन्तु उल्लू एक ऐसा प्राणी होता है, जिसे सूर्य का प्रकाश नही सुहाता । उसे तो रात का अंधेरा ही पसन्द पड़ता है । इस समाचार से जहां सभी ओर प्रसन्नता छा गई, वहां महलो मे पटरानी को छोडकर अन्य रानिया सौतिया डाह की शिकार हो गई । पटरानी तो वहुत ही प्रसन्न हुई कि महाराजा और जनता की मनोकामना शीघ्र पूरी होगी किन्तु अन्य रानियो के मन मे यह ईर्ष्या जगी कि अव महाराजा हमें तो पूछेगे ही नही—सिर्फ नई रानी का ही सम्मान किया जायगा । उनका यह विक्षोभ अज्ञान का परिणाम था क्योंकि वे अपने भविष्य को लेकर आशकित बनी हुई थी । यह स्थिति देखकर पटरानी ने सभी अन्य रानियो को बुलाकर कहा—आज विशेष हर्ष और प्रमोद का समय है । देखो, महाराजा के कोई सन्तान नही थी और सन्तान के लिये ही उन्होने मेरे बाद ग्यारह और विवाह किये किन्तु फिर भी सफलता नही मिली । सफलता का सेहरा अव तेरहवी रानी के सिर पर बंधा है तो यह सबके लिये प्रसन्नता का विषय है । आप अपने लिये कोई आशंका खडी न करे । जव हम कभी से समता साधना में सलग्न हैं तो हमारा भविष्य कभी भी दुःखद नही वन सकता है । आप तो इसकी भी खुशी मनावे कि अव हमे एक सखी व सहेली और मिल गई है तथा हमारी संख्या वढ़ गई है । उसकी ही वजह से हमारा सबका कलंक धुल जायगा और महाराजा पुत्र-वान वन जायेंगे । इस तरह पटरानी ने सभी रानियो में समभाव एवं सद्भाव जगाने का प्रयास किया ।

पहली महारानी का जीवन समता रस से भरा पूरा था, इसी कारण वह सभी अन्य रानियो को प्रसन्न होने की वात समझा रही थी । यदि विचारों में समभाव न हो तो कौनसी स्त्री अपने सिर पर सौत आने से दुःखी नहीं होगी ? किन्तु पटरानी ने क्या कहा ? यही

कि महाराजा का भविष्य उज्ज्वल बनेगा तो राज्य तथा प्रजा का भविष्य भी उज्ज्वल होगा तथा इन सभी के उज्ज्वल भविष्य मे ही तो हमारा भी भविष्य उज्ज्वल रहेगा । फिर भी दूसरी रानी के मन में कुशंका काम कर रही थी ।

पटरानी ने साधना मे प्रवृत्त होकर अपने दु:खमय जीवन को सुखपूर्ण बना लिया था तो उसने महाराजा के जीवन को भी आमूल-चूल परिवर्तित कर दिया जिससे वे भी समता के साधक बन गये थे । उसने अन्य रानियों को समता से जोड़कर उनके जीवन मे सुधार ला दिया था, किन्तु सौत के धक्के से वे विचिलत हो उठीं। वे सभी यही सोचने लगीं कि इस तेरहवीं रानी की उपस्थिति मे उन सबका अहित ही होने वाला है । उन सभी को महाराजा के व्यवहार से भी असन्तोष हो रहा था कि वे उद्यान छोड़कर राजभवन मे उनकी सार सम्भाल करने को आये तक भी नही । पटरानी उन सभी असन्तुष्ट रानियों को फिर समझाने लगी—तुम महाराजा का बुरा व्यर्थ ही मान रही हो । काफी समय बाद आने के कारण वे राज्य के कर्मो में भी व्यस्त हो गये होंगे, वरन् महाराजा का जीवन अब तो पूरी तरह से समता साधना के प्रति निष्ठावान बन चुका है। वे न किसी से पूर्णतया राग रखते है तो न किसी के प्रति द्वेष ही। अतः तुम सब भी तटस्थ भाव से सुखपूर्वक रहो ।

तब अन्य रानियों ने कहा—आपका ऐसा विश्वास ठीक नही है । महाराजा ने आपके साथ भी दुर्व्यवहार किया था और अब नये िवाह के बाद सभी के सिर पर आपत्ति आ सकती है अतः आप भी हमारे साथ रहें । पटरानी बोली—मैं तुमसे अलग कहां जा रही हूं, तुम्हारे ही साथ हूं लेकिन सद्‌वृत्ति रखने का तुम्हे सही परामर्श दे रही हूं । तुम्हारे साथ रहते हुए एक बात स्पष्ट कर दूं कि मै सदा सद्‌वृत्ति के साथ रहूंगी, गलत बात नहीं करूंगी । मै तुम्हें जो सही रास्ता दिखा रही हूं, तुम उसी पर चलो । इस पर अन्य रानियों ने कहा—आप अपनी धर्मसाधना करती रहें । हम आपकी वात भी सुनेंगी लेकिन हम जो कुछ करें उसमें आप हस्तक्षेप भी न करे । फिर ग्यारह

रानियां पटरानी के पास से चली गई और परस्पर विचार करने लगीं कि भविष्य को देखते हुए पानी आने के पहले ही पाल बांध लेनी चाहिये। उन्होने सोचा कि ऐसा उपाय निकाला जाय कि जिससे न रहे बांस और न बजे बांसुरी।

विषमता जिनके हृदय में से छूटती नही है, वे समता के अमृत मे भी विषमता का विष घोलने की कुचेष्टा करते हैं।

❀ ❀ ❀

: १० :

चिन्तन चिन्तन में कितना अन्तर होता है ? एक का अशुभ चिन्तन होता है तो दूसरे का शुभ । अशुभ चिन्तन करने वाला दूसरे के बारे में तरह-तरह की गलत कल्पनाएं करके उसका अहित चिन्तन करने में लग जाता है जबकि दूसरे के मन में कोई बुराई नही होती, बल्कि वह पहले के लिये हित की बात ही सोच रहा होता है। महाराजा चन्द्रसेन के सम्बन्ध में भी कुछ ऐसी ही परिस्थिति बन रही थी ।

महाराजा जब विश्वसुन्दरी के साथ अपनी राजधानी को लौटे तो गर्भस्थिति के कारण राजभवन में नही आये और बाहर के उद्यान में ही ठहर गये । जब उनकी अन्य रानियों ने यह समाचार सुना तो सिवाय पटरानी के अन्य ग्यारह रानियां अपने भविष्य को खतरे मे समझकर आकुल-व्याकुल हो उठी । फिर उनकी वह आकुलता ईर्ष्या की आग में जलकर भयावह हो उठी । वे यह सोच-सोचकर जल उठीं कि राजधानी में आकर भी महाराजा उनसे मिलने नही आये। पटरानी ने उन्हें बहुत समझाया किन्तु वे अपनी गलत कल्पनाओं के कारण अशुभ चिन्तन करने लगी ।

उधर महाराजा पहले तो विश्वसुन्दरी के लिये समुचित व्यवस्थाएं करने में जुटे रहे । फिर लम्बे अर्से बाद अपने राज्य मे लौटे थे अत: राजकीय काम-काज देखने में व्यस्त हो गये । किन्तु हर समय वे यही सोचकर खेद कर रहे थे कि वे राजभवन नही जा पाये हैं और अपनी प्रेरणा स्रोत पटरानी तथा अन्य ग्यारह रानियों से नहीं मिल पाये हैं । ज्योंही अवकाश मिले, वे तुरन्त उधर जाने की सोच रहे थे । उनके मन में ग्यारह रानियों के प्रति किसी प्रकार की बुराई नहीं थी और न वे उनके लिये किसी प्रकार का अशुभ चिन्तन ही कर रहे थे । यदि वे कुछ सोच रहे थे तो वह उनके प्रति हित-चिन्ता ही थी ।

इस प्रकार चिन्तन की भिन्न-भिन्न धाराएं चल रही थी महाराजा चन्द्रसेन के राजपरिवार में । इधर व्यस्तता के कारण वे राजभवन में नही जा पा रहे थे और उधर उनकी ग्यारह रानियां

प्रतिहिंसा की आग में जलती हुई पागल हो रही थी—इतनी पागल कि अपना भान भूलकर घातक षड्यन्त्र रचने में लग गईं।

विश्वसुन्दरी की गर्भावस्था को नौवा मास चल रहा था। उद्यान के सुरम्य वातावरण में धर्म साधना के साथ वह अपने गर्भस्थ शिशु का लालन-पालन कर रही थी। उसकी देखरेख के लिये नगर की सबसे होशियार दाई सलखू नाम की नाइन को नियुक्त कर दिया गया था। वह दिन रात नई महारानी के साथ ही रहती और उसका व उसके गर्भ का हर तरह से खयाल रखती। वह प्रसव कार्य मे बहुत ही कुशल थी अतः महाराजा नई महारानी के स्वास्थ्य के प्रति निश्चिन्त हो गये, फिर भी उसकी बराबर सार संभाल कर लेते थे। महाराजा और राज्य की समस्त जनता की यही मनोकामना थी कि गर्भस्थ शिशु पुत्र रूप में हो तो राजकुमार की प्राप्ति से राज्य के सुयोग्य उत्तराधिकार की समस्या का श्रेष्ठ एवं सर्वजनहितकारी समाधान हो जायगा। सलखू नाईन को इसी दृष्टि से पर्याप्त धनराशि देने का आश्वासन दे दिया गया था ताकि वह पूरी परवाह से अपने कार्य में जुटी रहे।

किन्तु ग्यारह रानियों के हृदय डाह और द्वेष से अग्नि कुण्ड की तरह जल रहे थे। उस जलन मे वे भूल गई कि वे जो कुछ कर रही है क्या वह उनके लिये उचित है? वे सबका हित भूल गई और अपने अहित की कल्पनाजन्य आशंकाओं मे ही डूब गई। हर समय वे ग्यारह रानियां साथ में बैठी रहती और बदला निकालने के तरह-तरह के दुष्ट उपायो के बारे मे सोचती रहती। उन्होने तब अपनी विश्वस्त दासियो को गुप्त तरीके से उद्यानस्थित भवन की सारी जानकारी लेने के लिये भेजा। उन्होने वापिस आकर उन्हे खबर दी कि महारानी विश्वसुन्दरी अद्वितीय सुन्दरी है लेकिन धीर गम्भीर है, उसकी गर्भस्थिति भी सानन्द चल रही है एवं नगर की कुशल दाई सलखू नाईन उनकी देखरेख में लगी हुई है। यह सब सुनकर ग्यारह रानियो के कलेजे पर साप लौट गये। नई महारानी इतनी सुन्दर है तो भला महाराजा अब उनकी ओर आंख उठाकर भी क्यो देखेंगे? दूसरे, यदि उसने राजकुमार को जन्म दिया तो महाराजा उन सब की जिन्दगियों को बेहाल भी बना सकते है।

इसलिये उनकी राह में यह जबरदस्त कांटा आ गया है जिसको समय रहते कुचल देना चाहिये। ऐसे दुष्ट भावों से वे ग्यारह रानिया बुरी तरह से पीड़ित हो उठीं।

अब सलखू नाइन को किसी भी तरह उन्हें अपनी ओर करके कांटा निकाल देना ही हितकर लगा। वे पागलों की तरह इस दुष्कर्म में जुट गई। उन्होंने अपनी एक सर्वाधिक विश्वस्त दासी को उद्यान मे भेजा कि वह सलखू नाइन को उनके पास बुलाकर लावे। कुछ ही देर मे वह दासी निराश होकर लौटी कि नाइन ने आने से इन्कार कर दिया है क्योंकि वह नई महारानी की सेवा में लगी हुई है। तब ग्यारह मे से एक रानी ने कहा—हमने गलती की सो उसे बिना किसी प्रलोभन के बुलाने को भेजा। इस तरह काम थोड़े ही होता है। तब उसने अपने गले से कंठला निकाल कर उस दासी को दिया और समझाया कि यह कठला वह पहले नाइन को दे दे, फिर उसे हमसे मिलने को कहे। सोने का कंठला काम कर गया। स्वामिभक्त सलखू उस सोने को देखकर अपनी स्वामिभक्ति भी कुछ देर के लिये भूल गई और ग्यारह रानियों से मिलने के लिये उस दासी के साथ चली आई।

विश्वसुन्दरी स्वयं तथा उसके गर्भ की पूरी जानकारी उन ग्यारह रानियों ने सलखू नाइन के मुंह से ली तो वे अधिक चिन्ता-ग्रस्त हो गई कि अब उनका सर्वनाश निश्चित है। नई महारानी अपूर्व सुन्दरी है, धर्म साधना करने वाली है और सद्‌गुणी राजकुमार को जन्म देने वाली है—तब भला उन्हें पूछेगा भी कौन ? महाराजा तो उन्हे ठुकरायेंगे ही, किन्तु राज्य में कहीं भी उनकी पूछ नही रहेगी। ऐसे कुविचार से ग्रस्त होकर बाकी दसो रानियो ने भी अपने-अपने गले में से अपने सोने के कंठले उतार कर सलखू नाइन के हाथों मे धर दिये। नाइन तो बावली हो उठी। एक कंठले ने ही उसे भान भुला दिया था, अब तो कुल ग्यारह कंठले उसकी झोली में आ गिरे थे। इतने अधिक स्वर्ण को पाकर तो वह उन्मत्त ही हो उठी।

सलखू की उन्मत्तता और ग्यारह रानियों के मन की धधकती हुई आग आपस में मिल गई।

इस ससार मे जिधर देखो, उधर राग और द्वेष का दावानल धधकता हुआ मिलेगा, फिर भी ममता मे डूबी हुई आत्माए समता का अमृत चखने के लिये जागृत नही होती है—यही बडी विडम्बना है। महाराजा चन्द्रसेन के अनजाने ही उनके ही रविनास मे ऐसा भीषण दावानल जल उठा था कि जिससे क्या अनर्थ घट सकता था, किसी ने नही जाना।

वे ग्यारह रानिया सलखू नाइन के सामने हाथ बाध कर खडी हो गई और अपने पद की गरिमा को धूल मे मिलाकर याचना भरे शब्दो मे कहने लगी—ओ नाइन मां, हमारा जीवन अब तुम्हारे आसरे है और इस रक्षा कार्य का भार हम सभी तुम्हारे ऊपर ही छोड रही हैं। हमारे जीवन को बचाना या नष्ट कर देना अब तुम्हारे ही हाथो मे है। उन्मत्त नाइन इस नाटक को समझ नही पाई, इसलिये आभार के भार के साथ उसने पूछा—आप सब यह क्या कह रही है—मै कुछ भी समझ नही पाई हू। आप मुझसे क्या कार्य करवाना चाहती है—यह साफ-साफ बताइये। तब ग्यारह रानियो की मुखिया बोली—नाइन मा, राज्य मे आ जाने के इतने समय बाद भी महाराजा हमसे मिलने तक नही आये हैं, क्योकि वे नई महारानी के हाथ के खिलौने बन गये है। अब हमारा तिरस्कार और हमारे भविष्य की दुर्दशा निश्चित है जिससे तुम ही हमको उबार सकती हो। सौत के रूप मे आई यह नई महारानी ही हमारे लिये घातक शत्रु हो गई है और उसी से हमारी रक्षा आवश्यक है। अब तुम्ही सोचो कि हमारा काम तुम किस रीति से सफलतापूर्वक कर सकती हो। यदि हमारा काम तुमने सफलतापूर्वक कर दिया तो जो स्वर्ण हमने अभी तुम्हे दिया है, उससे कई गुना स्वर्ण हम तुम्हें और दे देगे। तुम निहाल हो जाओगी।

सलखू नाइन का मस्तक यह सब सुन देखकर बुरी तरह से चक्कर खाने लगा। कुछ देर स्तब्ध सी रहकर वह अपनी चेतना मे लौटी तो पुन कल्पना मे सोने का पीला पीला ढेर दिखाई दिया और उस ढेर के दृश्य ने उस फर्ज को धो पौछकर एकदम नष्ट कर दिया। वह उचक कर बोली—मैं सब कुछ समझ गई हूं। जैसा आप चाहती है, वह मैं कर लूगी। आप सब बेफिक्र रहे। रानियो

की मुखिया ने पूछा—कैसे क्या करोगी—यह तो हमें बता दो। नाइन को कहां भान था सो कुछ सोचती, बोल पड़ी—कोई योजना आपने सोची हो तो वही बता दो सौ मै उसके अनुसार कार्य कर लूंगी। उसे उत्तर मिला—देखो, जिस गर्भ के पीछे यह नई महारानी और महाराजा फूले-फूले फिर रहे है, उनका इस तरह फूलना खतम हो जाना चाहिये। फिर मुखिया ने उसके कान मे गुप्त तरीका बताया और कहा—सब कुछ इतना गुप्त रहना चाहिये कि किसी को भनक तक न पड़े। काम बन जाय और किसी तरह की बदनामी न हो—इसका पूरा ध्यान रखना होगा। समझ गई न कि सांप भी मर जाय और लाठी भी न टूटे। सलखू नाइन ने हामी भरी और कहा—अब आप मुझे यहां न बुलावे, नही तो व्यर्थ की शंका पैदा होगी। मैं वही रहकर सारा काम खूबी से कर लूंगी। फिर सलखू नाइन उद्यान की तरफ चली गई।

यह पैसा, यह अर्थ, यह सोना सोचिये कि किसको कौनसा अनर्थ करने के लिये नही उकसा देता है? क्या आज की दुनिया इन्ही के पीछे पागल होकर नही भटक रही है और न जाने क्या-क्या अनर्थ नही कर रही है? अर्थ अधिकांश लोगों के माथे पर चढ़कर घातक अनर्थ कर रहा है और इन्सानियत को पैरो तले रौद रहा है। किन्तु जो समता के रस में अपने जीवन को भिगो देते हैं, वे अर्थ के प्रति अपनी ममता को भी नष्ट कर देते है। सर्वजगत् की कल्याणी मानवता को वे अपने रोम-रोम मे बसाकर महामानव बन जाते है।

विश्वसुन्दरी भी इस तरह के घात-प्रतिघात के षड्यन्त्र से दूर अपनी समता-साधना में आन्तरिक आनन्द का रसास्वादन कर रही थी। विपमता का विष उसे कही छू भी नही गया था। वह तो समभाव पूर्वक समस्त जगज्जीवों के कल्याण की ही कामना कर रही थी।

गृहस्थाश्रम मे रहते हुए भी चन्द्रसेन ने जिस गहन भावना से सामायिक का समता-रस अपने हृदय मे भरा तो उसके कितने अनूठे चमत्कार प्रकट हुए। किस प्रकार देवता ने उनकी सहायता की तो वाणी की गम्भीरता ने विद्याधर को कितना प्रभावित बना दिया। उसने न केवल अपनी मणि ही दी बल्कि अपनी सुपुत्री का हाथ भी

उन्हे सौप दिया । यह उनकी समत्व शक्ति ही थी जिसके बल पर उन्हे विश्वसुन्दरी जैसी धर्मपत्नी मिली और अपने राज्य के उत्तराधिकारी के उत्पन्न होने की सुखद संभावना । ये सारी उपलब्धियां चन्द्रसेन ने अपनी इहलोक की सामायिक-साधना के सुफलस्वरूप ही प्राप्त की थी ।

महराजा चन्द्रसेन को जब सलखू नाइन ने विश्वसुन्दरी की देखभाल से पूरी तरह आश्वस्त कर दिया तो उन्होने राजकीय व्यवस्था सम्बन्धी मामलो को निपटाया । उससे उन्हे जब कुछ अवकाश मिला तो वे रनिवास अपनी पहले की रानियो से मिलने के लिये गये । पटरानी तो नई महारानी के आने से बहुत प्रसन्न थी ही क्योकि उसके जीवन मे भी समभाव का आदर्श फैला हुआ था, अत: महाराजा के आते ही उसने सच्चे दिल से स्वागत किया और नई उपलब्धियो की बधाई दी । बाद मे वे शेष ग्यारह रानियो से मिलने गये और अपना सारा विवरण सुनाया । उन्होने यह भी समाधान दिया कि गर्भावस्था से कारण नई महारानी को उद्यान के एकान्त और शान्त वातावरण मे रखा है वरना प्रसवोपरान्त उन्हे राजभवन मे लाया जायगा व सबसे मिलवाया जायगा । किन्तु उन रानियो के जीवन मे समता का रस नही था—अपने स्वार्थो का मोह था और दुर्बुद्धि का प्रभाव था अत ऊपर से तो उन्होने प्रसन्नता दिखाई लेकिन भीतर मे जहर भरी ही बनी रही ।

उधर सलखू नाइन अपना दैनिक कामकाज निपटारा कर एकान्त मे जाकर बैठी और सोचने लगी कि ग्यारह रानियो का काम कैसे पूरा किया जाय ? उसकी नजरो के सामने एक-एक करके ग्यारह सोने के कठले बार-बार घूम रहे थे । अच्छे कार्यो के लिये भी चिन्तन एकान्त मे होता है तो बुरे कार्यो के लिये चिन्तन हेतु भी एकान्त ही चाहिये । कारण यह है कि एकान्त के समय बुद्धि स्थिर रहती है और उस समय मे सोचने से काम को सफल बनाने का पक्का उपाय सूझ जाता है । सलखू तुलना करने लगी कि ग्यारह रानियों ने ग्यारह कठलो के अलावा और भी स्वर्ण देने का आश्वासन दिया है तो महाराजा भी विपुल धनराशि प्रदान करेगे । उसने मन मे सोचा कि चालाकी का ठेका तो उसकी जाति ने ले ही रखा है, फिर वह

क्यों नहीं दोनों पक्षों को अपनी होशियारी दिखावे ?

जब उसे मालूम हुआ कि महाराजा नई महारानी के पास आये हैं तो वह वहां से उठी और दौड़कर प्रसन्नमुख महाराजा के सामने पहुची । उसने महाराजा से निवेदन किया कि वह उनसे एकान्त में कुछ बात करना चाहती है । महाराजा ने तुरन्त वहां से सबको बाहर चले जाने का संकेत किया और सलखू से पूछा—क्या बात है ? नाइन ने कहा – महाराज, मैंने महारानी जी के गर्भ का आज अच्छी तरह से निरीक्षण किया तो सिर पर प्रकट होने वाले लक्षणो से मुझे यह समझ में आया है कि गर्भ मे एक नही, बल्कि दो सन्तान है— जुड़वा सन्तान, अत. दोनो का जन्म जुड़वा ही होगा । दोनो मे से हो सकता है कि एक राजकुमार हो तथा दूसरी राजकुमारी ।

क्रिया चरित्र वैसे ही बड़ा अजीब होता है और उस पर नाइन का क्रिया चरित्र तो अपना सानी नही रखता है । उस सलखू नाइन ने विश्वसुन्दरी के गर्भ के अन्दर की बात हावभाव बनाकर इस ढग से महाराजा को कही कि उन्हें उसकी सच्चाई पर विश्वास हो गया कि दो सन्ताने ही जन्म लेने वाली है । एक समभावी पुरुष जब तक स्पष्ट प्रमाण नही दीखता, किसी को दुष्ट मानता नही और उसकी बात में अविश्वास करता नही, फिर भला सीधी दृष्टि से चन्द्रसेन उस विश्वासपात्र नाइन की बात मे अविश्वास क्यों करते ?

जहां सज्जन और सरल व्यक्ति दूसरे को भी अपने जैसा ही समझता है, वहां दुर्जन व दुष्ट स्वभावी व्यक्ति अपना कुकर्म बडे ही छल-कपट के साथ पूरा करना चाहता है । किसी दुर्जन को पहिचानने के लिये हकीकत में दूसरे दुर्जन की ही जरूरत पड़ती है । कूटनीति का कांटा कूटनीति की मदद से ही निकाला जा सकता है ।

चन्द्रसेन ने सलखू को कहा—पक्का ध्यान रखना कि महारानी और उसके गर्भ की सुरक्षा की पूरी-पूरी जिम्मेदारी तुम्हारे ऊपर ही है । ठीक तरह से सन्तोषजनक कार्य करो जिससे मैं तुम्हे इतना धन दूंगा कि तुम निहाल हो जाओगी । लेकिन सोच लेना कि जहां जरा भी बेपरवाही या गड़बड़ी तुमसे हो गई तो उसकी कड़ी से कड़ी सजा मिलेगी ।

सलखू के मुंह से यही निकला राजन्, आप मुझ पर पूरा विश्वास रखे । मुझे इस काम का सबसे ज्यादा अनुभव है और मैं अपना काम पूरी परवाह के साथ करूंगी । उसके आश्वासन से पुनः महाराजा राजकाज देखने में व्यस्त हो गये । अब सलखू के मन मे जबरदस्त संकट खड़ा हो गया । एक तरफ तो वह ईर्ष्या और प्रतिशोध की आग मे जल रही ग्यारह महारानियों को प्रलोभन के वश में होकर विश्वास दिला आई है कि उनका काम वह पूरा करेगी । दूसरी ओर उसने महाराजा को भी पक्का आश्वासन दे दिया है कि नई रानी और उसके गर्भ की सुरक्षा की पूरी-पूरी जिम्मेदारी उसके ऊपर है । एक ओर अनीति का प्रलोभन है तो दूसरी ओर भी नीति का पूरा पारिश्रमिक मिलने की आशा है किन्तु दूसरी ओर उसके मन में कठोर दण्ड का भय भी खड़ा हो गया ।

जब प्रसव काल समीप आने लगा तो विश्वसुन्दरी को भारी वेदना होने लगी । वेदना इतनी बढ़ गई कि वह उसे सह न सकी और बेहोश हो गई । उस समय में सलखू विचार करने लगी कि उसे अपना काम बनाने का यह सुनहला समय मिला है । इस समय यहा पर कोई नही है और महारानी भी मूर्च्छित पडी है इसलिये मुझे जो उपाय करना है, वह जल्दी कर लू । उसका दिमाग हवा मे दौडने लगा कि प्रसव ठीक तरह से करा दूं तो विपुल धनराशि मिल जायगी और शायद महाराजा प्रसन्न होकर जागीर भी ऊपर से दे दे । उधर ग्यारह रानियों को भी खुश कर दूं तो मेरा घर सोने से भर जायगा । उसका दुष्ट विचार जगा कि अगर इस महारानी को जहर देकर या कुछ करके खत्म कर दूं तो दोनो पक्ष प्रसन्न हो जायेगे - एक अपना उत्तराधिकारी पा जाने से तो दूसरा अपना काटा निकल जाने से, लेकिन जहर आदि का पता लग सकता है और उस दशा मे उसका पकड़ा जाना निश्चित है । वह फिर विचार करने लगी कि तब क्या करे ?

सलखू ने सभी तरीकों पर विचार किया, लेकिन आखिर यही तय किया कि वह नई महारानी की जिन्दगी को खत्म नही करेगी । एक तो वह विश्वसुन्दरी है और दूसरे, विद्याधर की पुत्री होने के कारण अनेक विद्याओ की ज्ञाता है, अत इसका प्रसव अच्छी तरह से

हो गया और वह खुश हो गई तो उसको भी कोई न कोई विद्या सिखा देगी । वह अपने घर को सोने से तो उस विद्या के प्रभाव से ही भर देगी । इस कारण नई महारानी की हत्या का पाप वह कतई मोल नहीं लेगी । लेकिन उन ग्यारह रानियों को खुश करने के लिये उसने जो कार्यक्रम सोचा है, उसको विश्वास है कि वह कार्यक्रम यथासमय अवश्य ही सफल हो जायगा ।

प्रसव की असह्य वेदना से विश्वसुन्दरी बेहोश हो गई थी लेकिन उसकी वह बेहोशी किसी बीमारी का परिणाम नही थी। जब उस सलखू नाइन ने तय कर लिया कि महारानी की कोई हानि नही पहुंचानी है इसलिये उन ग्यारह रानियों का काम तो तभी बन सकता है जब आने वाली सन्तान का कुछ किया जाय । फिर वह विचार करने लगी कि महाराजा, दीवान जी वगैरा सब जानते है, ९वां मास पूरा होने वाला है और सन्तान आने वाली है, ऐसी अवस्था में क्या आने वाली सन्तान को भी किसी प्रकार की हानि पहुंचाना उसके लिये घातक नहीं हो जायगा ? वह पकडी जायेगी और उसे कड़ी सजा भुगतनी पड़ेगी । अब उसकी घाटधड़ और ज्यादा बढ गई कि वह क्या करे ? उसकी दशा पागलों जैसी होने लगी ।

जिस कमरे में महारानी छढपटा रही थी, उसी कमरे मे सलखू भी खड़ी थी । उसी समय उस कमरे की खिड़की से उसे वाहर एक दृश्य दिखाई दिया । बाहर भी एक कुतिया प्रसव वेदना के कारण छटपटा रही थी । उस कुतिया का प्रसव अपने आप ही हो रहा था, उसके पास कोई दूसरा नही था ।

सलखू तव कुतिया पर से नजर हटाकर महारानी के पास गई और उसने सुखद प्रसव के लिये विधिपूर्वक कार्य करना शुरू कर दिया । जब प्रसव हुआ तो वास्तव में दो सन्तानों ने जन्म लिया— एक पुत्र तथा दूसरी पुत्री । बच्चों को कभी-कभी माता-पिता की सुन्दरता मिलती है और यदि बच्चों की पुण्यवानी अधिक प्रबल हो तो वे माता–पिता से भी अधिक सुन्दर हो जाते हैं । सलखू ने देखा कि वे पुत्र और पुत्री अपने माता–पिता से भी अधिक सुन्दर और आकर्षक थे । उन्हें देखकर उसके मन मे भी प्रमोद भाव जागृत हुआ। उसे अनुभव हुआ कि अपने जोवन मे उसने अनेकानेक प्रसव कार्य

कराये लेकिन इतनी सुन्दर सन्तान पहले उसके देखने मे कभी भी नही आई थी। तव क्या वह ऐसी मनमोहक सन्तानों का घात करेगी ? वह विभ्रमित हो गई । यदि घात करे और इस वीच महारानी की मूर्छा टूट जाय तो उसकी क्या दुर्दशा हो सकती है— कहा नहीं जा सकता। वह कुछ भी नही कर पाई।

तभी प्रसव हो जाने से वेदना मिटी तो महारानी की मूर्छा भी टूटी, किन्तु शान्ति मिल जाने से उसे निद्रा आ गई। तव सलखू की दुर्भावना फिर भड़क उठी। उसने सोचा कि उसे अपना काम वनाने का योग फिर मिल गया है। उसको उपाय सूझ गया। उसने कुतिया का प्रसव अभी देखा ही था—उसके भी दो पिल्ले हुए थे-एक वच्चा और एक बच्ची। झट से उसने तय कर लिया कि विश्वसुन्दरी के दोनों बच्चों को वह मार कर कुतिया के सामने रख आवे और कुतिया के दोनो वच्चों को लाकर विश्वसुन्दरी के पास सुला दे— वस उसका काम बन जायगा तथा महाराजा को दो सन्तान होने की उसके द्वारा कही हुई बात भी सच हो जायेगी।

यह सोचकर सलखू ने नई महारानी के दोनों वच्चो को अपने हाथों में उठाया और उनके गले दबाने की निर्दयता उसके क्रूर मन में जागी। किन्तु यकायक उसका हाथ रुक गया। उसके मन की निर्दयता जैसे दूर भागने लगी और उसकी जगह स्नेह भावना पैदा होने लगी। फिर भी वह बच्चो को हाथों में लिये खडी थी न मारने का निश्चय कर पा रही थी और न ही न मारने का। उसका मस्तिष्क असमंजस में ही डूबा रहा।

पाप कार्य करने का पल भी वड़ा नाजुक होता है। जब मनुष्य पाप करने पर उतारू होता है तो एक वार उसके भीतर कंपकपी छूट जाती है। उसके भीतर से आवाज उठती है कि वह पाप करने से वाज आए। उसका अन्तःकरण जागृत हो जाता है। मोह या किसी अन्य पाप भावना के वशीभूत होकर वह पाप कार्य करने को तैयार होता है लेकिन उसके अन्तःकरण से आवाज उठती है कि ऐसा मत करो - यह क्रूरता का कार्य है और ऐसा घातक कार्य करना उचित नही है। ऐसे समय में साधारण तौर पर पापी मनुष्य का मन वदल जाता है और वह पाप कार्य करने से अपने को रोक लेता है।

सलखू के खयालों में भी उस समय ऐसी ही ऊंच-नीच चल रही थी। उसने सोचा कि ऐसा पाप कार्य करने से जागीर तो मिलने से रही–उसका बुरा नतीजा भी भुगतना पड़ सकता है । वह भी अपनी अन्तरात्मा की आवाज सुनने लगी । मूल में पाप से कैसे बचा जाय—यह प्रत्येक प्राणी की भावना होती है और अगर वह अपने भीतर के चिन्तन को मान लेता है तो हकीकत में वह पाप से बच भी जाता है । जो अन्तरात्मा की आवाज को सुनकर पाप से बच जाते है, वे पुण्य का उपार्जन कर लेते हैं, किन्तु जो अन्तरात्मा की आवाज को ठुकरा कर पाप कार्य में अपने मनोभावों की निर्दयता को प्रकट कर ही देते है, वे अपने इस जन्म तथा भावी जन्मों को पाप के काले कर्मों से रंग देते है ।

उस पापिनी सलखू का मस्तिष्क भी असमंजस से बाहर निकला, क्योंकि उसने अपनी अन्तरात्मा की आवाज को अनसुनी कर दी थी । उसने अपने मनोभावों की क्रूरता को न रोकने का निश्चय किया और तदनुसार वह अपनी दुष्प्रवृत्ति में लग गई ।

दुष्टात्मा यह नहीं विचारती कि उसके पाप कार्य का कितना घातक परिणाम सामने आ सकता है और वह तो अपनी दुष्टता का दृश्य दिखा ही देती है । यह दूसरी बात है कि प्रकृति ढाल बनकर उसकी दुष्टता को सफल न होने दे।

❀ ❀

: ११ :
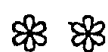
सम्पूर्ण पाप प्रवृत्तियो का वीतराग देवों ने एक मूल वताया है और वह मिथ्यात्व । मिथ्यात्व मिटाया जा सकता है सम्यक्त्व-सयम से और पूर्ण संयम के माध्यम से ही आत्म-विकास की महायात्रा सफलतापूर्वक सम्पन्न की जा सकती है । किन्तु जव तक पूर्ण सयम अंगीकार करने की स्थिति न बने, तव तक भी सयम की साधना तो आरम्भ की ही जा सकती है । श्रावक धर्म साधु धर्म की निचली सीढी है और श्रावक धर्म का पालन करते हुए आशिक सयम साधना होती ही है । आशय यह है कि असयम जितना अधिक मनुष्य की वृत्तियो तथा प्रवृत्तियों मे फैलता जाता है, उतना ही जीवन मे निकृष्ट पतन होता जाता है । अत. ऐसे पतनकारक असयम को नियन्त्रित करने के लिये संयम की साधना जितने अंशो मे भी की जा सके, करना आवश्यक ही है ।

सलखू नाइन एक वार जो असंयम की फिसलन पर फिसली तो फिर फिसलती ही चली गई, अपने आप को रोक नही पाई, क्योंकि उसने संयम का आश्रय ग्रहण नही किया ।

महाराजा चन्द्रसेन ने सलखू नाइन की असंयमी वृत्ति को पहचाना नही और उसके द्वारा दिये गये विश्वास के पीछे वे निश्चिन्त बने रहे । किन्तु जव सारी घटना उनके सामने आई तो वे हतप्रभ ही नही रह गये बल्कि उसके धक्के से तिलमिला उठे । महाराजा को स्वप्न मे भी आशका नही थी कि नई महारानी विश्व-सुन्दरी कुतिया के पिल्ले सरीखे वच्चे–बच्चियो को जन्म देगी । ऐसी अनहोनी के सामने तो वे आतंकित जैसे हो गये । वार–वार यही विचार आने लगा कि आखिर यह कैसा तमाशा हो गया है ?

वे सोचने लगे—मेरी पटरानी ने मुझे धर्म के मार्ग पर प्रवृत्त वनाया तव से मैं नियमित रूप से सामायिक की साधना कर रहा हूं । जनता के आग्रह पर मैंने तेला करके देव का आह्वान किया और देव ने भी स्पष्ट कथन किया कि मुझे सन्तान की प्राप्ति होगी तथा जनता की मनोकामना पूर्ण होगी । तो क्या देव का कथन भी असत्य

सिद्ध हो जायगा ? देव की भविष्यवाणी के अनुसार ही मुझ मणि मिली और विद्याधर ने अपनी पुत्री मुझे सौपी । हमारा विवाह हुआ और सारे लक्षण पूर्ण आशाजनक थे, फिर यह क्या परिणाम सामने आ गया है ? स्वयं विश्वसुन्दरी परम चारित्र्यशील महिला है, धर्माराधना में भी वह प्रवृत्त हो गई है, फिर ऐसा दुर्भाग्य कैसे प्रकट हुआ ? सलखू नाइन का भी क्या दोष निकालूं ? वह तो सूचना देते समय खुद ही बुरी तरह से रो रही थी । इस तरह सरल हृदय महाराजा तरह-तरह से विचार करते रहे ।

बात स्पष्ट नही हुई किन्तु बार-बार उनका मस्तिष्क सशंकित होने लगा । देववाणी झूठ निकले—यह सम्भव नही । दोनो धर्म-साधकों के ऐसी सन्तानें हों—यह भी कल्पनीय नही है । फिर यह क्या ? क्या सलखू नाइन की ही तो कहीं गड़बड़ी नही है ? शका उठती और प्रमाणहीन होने से फिर मिट जाती, किन्तु फिर उठ जाती । वह समाप्त नहीं हो रही थी ।

कहा गया है कि किसी भी विषय मे जब कोई शका उत्पन्न हो जाय तो उसका तुरन्त समाधान कर लेना चाहिये, क्योकि संशयात्मा विनश्यति—जो सशयशील बना रहता है, उसका विनाश हो जाता है । विनाश का अभिप्राय है कि वह मानसिक रोग से ग्रस्त हो जाता है जिसकी चिकित्सा भी सरलता से सम्भव नही होती है । कदाचित् शंका नही है और जीवन में दोष लग गया है तो वह बराबर कचोटता रहता है । उस दोष को प्रकट करने में सकोच किया जाता है कि लोग क्या कहेंगे, लेकिन ऐसे दोष के लिये भी अगर शुद्ध मन से आलोचना नही की जाती है तो उससे भी मानसिकता मे विकार पैदा हो जाते है । सशय निवारण नही करने से तो कई मामले सुनने में आये है कि बड़े-बड़े लोग भी पागल हो गये । ब्यावर चातुर्मास मैने स्वय ने देखा कि एक भाई बेकार बकता रहता था । मैने पूछा कि वह कौन है तो मुझे बताया गया कि पहले यह व्यक्ति बहुत ही बुद्धिमान था किन्तु उसको अपने योग्य कार्य नही मिला तो पागल हो गया ।

महाराजा की विचार-ग्रस्तता मिट नही रही थी । बात क्या बनी ? देववाणी खाली नही जाती । जनता की भावना भी सामूहिक

रूप से प्रकट होती है तो वह असफल नही होती। फिर यह विपरीत रूप कैसे सामने आया है ? उसका मन करने लगा कि कोई विशिष्ट ज्ञानी मिल जाय तो सारी परिस्थिति का समाधान करा लू। फिर सोचा कि तेला करके पुन: देव का आह्वान करूं। श्रीकृष्ण ने भी अपने छोटे भाई के होने की जानकारी लेने के लिए देव को बुलाया था। परन्तु मेरी वर्तमान मानसिक स्थिति इतनी डांवाडोल है कि मन का स्थिर रह पाना कठिन है। मुझे कुछ न कुछ उपाय तो निकालना ही चाहिए, जिससे इस घटना का स्पष्टीकरण मिल सके।

जिसने समस्त पापपूर्ण कृत्यो के एक मात्र हेतु मिथ्यात्व के घातक स्वरूप को नही समझा, वह भला मानवता के पवित्र स्वरूप को समझ ही कैसे सकता है ? कारण, मिथ्यात्व उसके हृदय मे ऐसी निर्दयता भर देता है कि उसे अपना स्वार्थ ही दिखाई देता है—मानवता का ध्यान तक नही आता। सलखू नाइन ने जब ऐसा पाप कार्य किया तो न तो उसने अपनी अन्तरात्मा की आवाज सुनी और न उसने गहराई मे जाकर सोचा कि उस पाप का क्या नतीजा होगा ? यह भी नही समझ पाई कि पाप का भडाफोड़ हो जायगा तो उसके पास जो सम्पत्ति है वह भी क्या उसके पास रह पायेगी ? फिर आने वाली सम्पत्ति का क्या है ? सोना कहा रह जायगा रानियां कहां रह जाएगी और उसे फांसी पर लटक जाना पड़ेगा—स्वार्थ मे अंधी बनकर यह भी वह दिल मे नही जमा पाई। उसने यह भी विचार नही किया कि जीवन निर्वाह के लिए कितना-सा धन चाहिए और बहुत सारा सोना मिल जायगा तो क्या वह रोटी के बदले सोने को खा सकेगी ?

किन्तु सलखू के हृदय मे मानवता का वास नही था, इसलिए सद्य जन्मजात फूल से कोमल और सुन्दर बच्चो के साथ वह ऐसा पाप कृत्य कर सकी। वे बच्चे पूर्व जन्म की पुण्यवानी लेकर आये थे तभी तो राजघराने में जन्मे। उनकी आकृतिया बता रही थी कि उनका पुण्यार्जन कितनी उत्कृष्ट कोटि का था। लेकिन इस सलखू पापिन ने ईर्ष्यालु रानियो से प्रलोभन पाकर कैसा घृणित कुकृत्य किया ? वह सोचने लगी कि अब कैसे क्या करूं ? बच्चों की तरफ नारी सुलभ ममता से भी देखती तो मन पिघल जाता, किन्तु धन

प्राप्ति की लालसा में वह तो अन्धी और बेजान हो गई थी। धन के पीछे कभी-कभी मनुष्य मे ऐसी जघन्य क्रूरता भी आ जाती है कि वह अपने जन्मदाता उपकारी माता-पिता तक का घात कर बैठता है। पैसों का खून जब डाढ़ के लग जाता है तो ऐसी क्रूरता बढती रहती है। चंद चांदी के टुकड़ों के पीछे ही तो दहेज जैसी राक्षसी प्रथा चल रही है जिसके कारण कितनी कन्याएं या महिलाएं मर रही है या मारी जा रही है ? ऐसे लोभी मनुष्यों को क्या कहा जाय-राक्षस ही कहा जाय या कोई दूसरी उपमा दी जाये ? पशु भी ऐसा दुष्कर्म नहीं करते हैं। असली शेर भी उतना ही शिकार करता है जिससे कि उसका पेट भर जाय और सही भूख न लगे तब तक शिकार नहीं करता और यह मनुष्य क्या करता है ? पेट भरने के लिए या पेटियां भरने के लिए या धन का पहाड़ खड़ा करने के लिए ? ऐसी लालसा के साथ वह खोटे से खोटा आचरण करते हुए भी नही हिचकिचाता है। इसी कारण मानवता तक को भूल जाता है। कोठो में अनाज सड़ता रहता है, पेटियो मे कपड़े गलते रहते है, फिर भी लोभी मनुष्य उसे भूखों और नंगो को देना नही चाहता। ऐसे मनुष्यो को आप किस कोटि मे रखना चाहेगे ? आप ही निर्णय ले और इस सदर्भ मे अपने जीवन व्यवहार पर भी अवश्य एक नजर डाल ले।

इस सलखू नाइन ने असंयम में डूबकर कौन-सा पाप ढाया ? वह नये जन्मे बच्चे-बच्चियों के प्रति अपनी कर्त्तव्य भावना दिखाती तो वह आगे चलकर कितना लाभ उठा सकती थी ? लेकिन भ्रष्टमति होकर स्वार्थ में अन्धी बन गई और पशु से भी निकृष्ट कृत्य कर बैठी। उसने सोच लिया कि जब तक महारानी बेहोश है, तब तक काम निपटा लेना चाहिए। अब विलम्ब करने का प्रसग नही है। अपने हाथो से इन बच्चो को मार डालू ..... वह सोचती है, लेकिन फिर ठिठक जाती है। कैसे मारूं ? मेरे हाथों से न मारूं और ऐसा करूं कि ये जीवित न बच सके।

महाराजा के उस निजी उद्यान के पीछे ही जंगल शुरु हो जाता था। उस जंगल में एक ऐसा कुआ था, जिसमे पानी नही था, उसमे कूड़ा-कचरा भरा था और कई तरह के जन्तु रहते थे। उस कुए का ध्यान आते ही सलखू ने उन नवजात शिशुओ को लेकर उस

दिशा में तेजी से कदम बढाये । उसने दोनों सुन्दर सुकुमारों को कुए में फंक दिया और कुतिया के दोनों पिल्लों को लेकर वापिस चली आई । वे ही दोनो पिल्ले थे जो महारानी को वताये गये कि वे उसकी कोख से जन्मे है और यही बात महाराजा को वताई गई, जो उसे एक दुर्घटना मानकर बुरी तरह से चिन्तित हो रहे थे। उनसे गुत्थी नही सुलझ रही थी कि ऐसी अकल्पनीय वात कैसे घटित हो सकती है ? इसका कारण यही था कि वे सद्भावी महाराजा उस घटना का दोषारोपण बिना सूत्र के किसी के ऊपर नही करना चाहते थे । फिर सलखू ने यह सूचना महाराजा को ऐसे नाटकीय हाव-भाव के साथ दी कि उन्होंने उसके प्रति किसी तरह की शंका नही की ।

. सलखू ने सोचा कि मेरे अलावा किसी को भी बच्चो के कुए मे डालने का पता नही है, सो बात छिपी ही रह जायगी । कोई नही जान पायेगा कि मैंने क्या किया ? यह सोचकर वह निश्चिन्त हो गई और उसने एक दासी को भेज कर महाराज को सूचना करवाई कि प्रसवकार्य ठीक तरह से पूरा हो गया है । महाराजा ने यह सुना तो दौडे-दौड़े आये क्योंकि शुभ सूचना सुनने के लिए वे परम उत्सुक हो रहे थे । वे तो दासी की बात सुनते ही विचार-मग्न हो गये कि अब तुरन्त क्या-क्या कार्यक्रम रखने है ? कार्यक्रमो में उनका ध्यान गया कि गरीबो को धन बांटना है, जनता की भलाई के काम करने है, कैदियों को छोड़ना है आदि-आदि । उनका मन बना कि ऐसे शुभ अवसर पर पूरा परोपकार करना है ।

जब महाराजा महारानी के कक्ष के बाहर पहुचे तो सलखू उन्हे सूचना देने के लिए झूठ बाहर निकल आई । उसने अपने चेहरे को नकली दु:ख और पीड़ा के भावों से रंग लिया तथा मुंह बनाकर इस तरह महाराजा के सामने खड़ी हो गई जैसे उसकी रुलाई छूट रही हो, मगर वह कुछ भी बोल नहीं पा रही हो । महाराजा का तो हर्ष समा नही रहा था, अत: उस ओर तुरन्त उसका ध्यान नही गया और वे पूछ बैठे—क्या हुआ सलखू ? क्या दोनों राजकुमार आये या दोनो राजकुमारियां अथवा एक राजकुमार और एक राजकुमारी ? महाराजा की जिज्ञासा उग्र बनी हुई थी । सलखू तो नाइन चरित्तर शुरू कर बैठी और फफक-फफक कर रोने लगी । महाराजा आश्चर्य

चकित कि इस मंगल वेला में भला यह क्या कर रही है ? उन्होंने डपट कर पूछा—क्या बात है ? वह बोली कुछ नहीं और इस तरह जमीन पर गिर रड़ी जैसे कि हकीकत में उसको चक्कर आ गया हो। फिर हड़बड़ा कर वह उठी और विलाप करते-करते कहने लगी—महाराज, महारानी जी का जीवन तो बच गया किन्तु मेरा ही भाग्य फूटा हुआ निकला जो उनकी कोख से आदमी के नही, कुतिया के बच्चे निकले है। महाराज को तो इतना सुनते ही मूर्छा जैसी आने लगी। पहले तो वे जैसे विचार शून्य से हो गये, बाद मे जो भाति-भाति के विचारों से ग्रस्त हुए तो विचारमग्न ही बने रहे।

महाराजा हतप्रभ से सोच ही रहे थे कि दीवानजी आ गये और सलखू को झिझोडकर पूछने लगे कि ऐसी अनहोनी कैसे हो सकती है ? सलखू ने सोचा कि मौके पर तीर मार दूं, सो बोली मैं जानती हूं कि ऐसी अनहोनी कैसे हो सकती है—मुझे सब पता है। दीवानजी अचम्भे से उसका मुह ताकने लगे और बोले—स्त्री के गर्भ से कभी पशु जन्में—ऐसा मैने नही सुना। फिर तुमको क्या पता है, जल्दी से बताओ। महाराजा का ध्यान भी अनायास ही उसकी तरफ मुड़ गया।

सलखू कहने लगी—आपने नही सुना होगा किन्तु कभी-कभी ऐसे मौके भी आते हैं। पशु का सम्बन्ध स्त्री से हो जाता है तो ऐसी अनहोनी भी हो जाती है। यह सुनते ही महाराजा तो जैसे पानी-पानी हो गये और कुछ का कुछ सोचने लगे।

कल्पना कीजिये कि असंयम के कुटिल बीज को जब दुष्ट मनुष्य झूठ और नीचता के पानी से खीच देता है तो उसका कैसा विकृत फल प्रस्तुत हो जाता है ? सलखू ने तोड़ मरोड़ कर ऐसी घटना खड़ी कर दी जैसे वह दूध की धुली हुई है और जो पाप किया है, वह सब महारानी ने किया है। छल-छद्म की सीमा लांघ गई थी वह ! मन ही मन वह खुशी के झकोरे खा रही थी कि कितनी सफाई से उसने षड्यन्त्र को कामयाब बना दिया है ? अब उसकी पौ बारह है। सभी ओर से उसको लाभ ही लाभ है। ग्यारह रानियों का मनचाहा उसने कर दिया था कि राजकुमार-राजकुमारी न रहे और नई महारानी इतनी बदनाम हो जायगी। महाराजा को भी

उसका अहसान ही मानना पडेगा कि ऐसी कठिन परिस्थिति में भी नई महारानी की जिन्दगी बचा ली गई है ।

महाराजा कांपते कदमों से महारानी के कक्ष में पहुंचे और उन्होने देखा कि वास्तव में उसके पहलू मे दो पिल्ले पडे हुए है। वही से महाराजा उल्टे पैरों अपने कक्ष में चले गये और मन को नियन्त्रित करके साधना-रत हो गये । नई महारानी पश्चात्ताप करने लगी कि उसने ऐसे क्या कुकर्म पहले के जन्म में किये थे जिनका ऐसा कुफल उसे आज देखना पडा । महाराजा की रुष्टता तो उसको मिलेगी ही, ऊपर से अपयश और भोगना पडेगा । उधर ग्यारह रानियां खुशी से फूली जा रही थी कि सलखू ने जैसा कहा वैसा ही कर दिखाया । उसका वदला पूरा हो गया था - अव मुंह दिखावे महाराजा और हिम्मत करे उनका निरादर करने की ? असल में क्या वात होती है और दुष्ट उसका क्या अपरूप बनाकर उसे सवके सामने प्रस्तुत कर देता है कि नकल का असल से कही ताल्लुक तक नही दिखाई देता। चन्द्रसेन और विश्वसुन्दरी आर्त और रौद्र ध्यान से विलग होकर अपना अन्त करण धर्म ध्यान में लगा रहे थे तो ग्यारह रानिया व सलखू प्रतिशोध और स्वार्थ की दुष्टताभरी खुशी मे फूली जा रही थी। क्या आश्चर्य है कि साधु बिच्छू को वचाना नही छोडता और विच्छू उसे डक मारना नही छोडता । महाराजा शोक सन्ताप दूर करने के लिये धर्म की आराधना में प्रवृत्त हो गये और नई महारानी भी पश्चात्ताप करती हुई सोचने लगी कि यह उसके पूर्वसंचित कर्मो का फल है अथवा किसी षड्यन्त्र का परिणाम, किन्तु कोई निश्चित निर्णय न ले पाने के कारण आत्म-साधना एवं समभावना मे तन्मय वन गई । वह सर्व प्रकार से धर्म ध्यान का अवलम्वन लेकर चलने लगी ।

पूर्व जन्म की पुण्यवानी का जव उदय होता है और आयुष्य का वल प्रवल होता है तो उसका कैसा भी दुष्कर्म कुछ भी नही विगाड सकता है । सलखू तो नवजात शिशुओ को कुए मे फेंकती ही तत्काल वापिस चली आई थी किन्तु उसी समय उधर से एक ब्रह्मानन्द नाम के फक्कड़ वावा निकले, जिनकी दृष्टि शिशुओ की तरफ चली गई । शिशुओं को जव फेंका गया था तो वे सूखे पत्तो की

ऐसी मोटी परत गिरे कि उन्हें कोई आंच नहीं आई अ:त वे रोने लगे। शिशुओं का रुदन भी उन बाबा ने सुना तो वे तुरन्त कुए के भीतर पहुंचे और दोनों बच्चों को हाथ में लेकर बाहर निकल आये।

यह गम्भीर चिन्तन का विषय है कि पाप कृत्य कर लेना तो सहज है किन्तु उसको दबा देना उतना ही कठिन—पाप छिपाया ना छिपे, छिपे तो मोटा भाग। इस कारण प्रत्येक विवेकशील मानव को पाप को जड क्या है—इसे समझना चाहिये और उस मूल को पकड़कर संयम की दिशा में अग्रसर होना चाहिये। संयम पर पूर्ण श्रद्धा रहेगी तो एक दिन अवश्य आयगा कि पूर्ण संयम अंगीकार किया जा सके। यह भी संयम का प्रथम चरण है कि जब साधु अवस्था स्वीकार्य न हो, तब तक श्रावक के बारह व्रत अवश्य ग्रहण किये जांय। संयम की साधना करने से ही आत्मा क्रूर कर्मों के बन्धन से बच सकती है। इसी भावना के साथ चन्द्रसेन एवं सुन्दरी तब सयम का अवलम्बन लेकर उस कठिन समय में भी शान्ति का अनुभव करने लगे। बाह्य परिस्थितियों की अत्यधिक अशान्ति का भी आन्तरिक शान्ति से शमन हो जाता है।

मनुष्य का मन चिन्तन की एक ही धारा में लम्बे समय तक लगातार टिका हुआ नही रहता है। एक ही धारा अधिक से अधिक एक मुहूर्त तक चलती है। क्योंकि उसके बाद दूसरी धारा चल जाती है। महाराजा चन्द्रसेन की चिन्तनधारा भी आन्तरिक चिन्तन मे चली तो अन्तमुहूर्त में विश्वसुन्दरी की ओर मुड़ गई और वे सोचने लगे कि इतने लम्बे समय तक धर्मपत्नी के नाते विश्वसुन्दरी के साथ रहने से उसकी चारित्रिक उच्चता का ही अनुभव हुआ है तथा उसकी आन्तरिक विशुद्धता का ही परिचय मिला है, फिर यह कैसे क्या हो गया? उन्हें तो उसके अनुकूल दिव्य स्वरूपी सन्तान की ही आशा थी। ऐसी आशा के विपरीत वह कुतिया के पिल्लों जैसी सन्तान को जन्म दे—यह कतई विश्वसनीय नही लगता। किन्तु यह नाइन जो बोल रही है, वह भी भला गलत क्यों बोलेगी? तो क्या महारानी ने मेरे जीवन पर कलंक लगाया है और अपने जीवन तथा इस राज परिवार को भी लाछित किया है? इसी तरह उनके मानस में कभी यह तो कभी वह उठता रहा—चिन्तन में स्थिरता अथवा

निश्चितता नही आ सकी । उनकी मनःस्थिति ऐसी असन्तुलित सी हो रही थी कि भांति भांति के विचार उठते रहे । यह भी उनके मन मे आया कि पशु से सम्पर्क होने के तथ्य का पता विश्वसुन्दरी से पूछ कर क्यो न लगाया जाय ?

धीरे-धीरे चन्द्रसेन का सोच एकांगी होने लगा और एकतरफी भावना बनने लगी कि विश्वसुन्दरी का ही दोष हो सकता है । यह सोचते हुए उनके मन में उठा कि ऐसी महारानी का मुंह भी नही देखना चाहिये । विचार की उसी धारा मे उन्होने दासियो को आज्ञा दे दी कि नई महारानी को दूसरे छोटे मकान में पहुंचा दो और वहां उसकी खाने पीने की समुचित व्यवस्था कर दो—राजरानी की तरह सम्मान देने की आवश्यकता नही है । यह आज्ञा देकर महाराजा वहां से चले गये और भीतर ही भीतर खिन्न से रहने लगे । उनका राज्य के कामकाज मे भी मन नही लगता था । दीवानजी बार-बार आश्वस्त करते कि जो हुआ सो हुआ, उसे भूल जाइये किन्तु महाराजा न उस घटना को भूल पाते और न अपने मन को स्वस्थ बना पाते । उनको ऐसा अनुभव होने लगा कि वे किसी भी कार्य को करने में समक्ष नही रह गये है ।

उधर महारानी विश्वसुन्दरी विचार कर रही थी कि पतिदेव मेरे साथ कितना स्नेह रखते थे और मेरी बात को पूरा आदर देते थे किन्तु अशुभ कर्मो का कैसा झौका आया है कि वे मुझसे इस तरह रुष्ट हो गये है । मैंने अज्ञानपूर्वक कोई काम किया हो, अपनी आत्म-शक्ति को कभी गलत रास्ते पर लगाई हो अथवा किसी पर झूठा लाछन लगाया हो—ऐसा मुझे याद नही पडता है । किसी पर कोई दोष लगाने से क्या लाभ ? सलखू नाइन को पूरी विश्वासपात्र समझकर ही महाराजा ने लगाई होगी और उसको काफी धनराशि भी दी, फिर वह ऐसा काम क्यों करने लगी ? फिर कुतिया के ये पिल्ले मेरी गोद में कैसे आये ? मै जहां तक अपने पिछले जीवन का अवलोकन करती हूं और अरिहन्त सिद्ध की साक्षी से अपने आचरण की आलोचना करती हूं तो एक भी तथ्य ऐसा समझ मे नही आता है जो न्यूनतम रूप से भी कलंकयोग्य माना जा सके । जब से मैंने होश सम्हाला है तब से अपनी एक-एक वृत्ति और प्रवृत्ति की तरफ

बारीकी से भी देखती हू तब भी मुझे एक भी वृत्ति या प्रवृत्ति ऐसी नही दीखती कि मै चारित्र्य के ऊचे धरातल से कभी भी फिसली होऊं । मैने सदा ही सभी पुरुषों को पिता और भ्राता के तुल्य माना है, फिर पशु के प्रति मेरी विकारपूर्ण विचारणा स्वप्न में भी सम्भव कैसे हो सकती है ? जब मैने पशु को विकार की दृष्टि से न सोचा, न देखा तो फिर यह पशुवत् सन्तति मेरी कोख से कैसे जन्म ले सकी । सलखू नाइन ने तो कहने को कह दिया कि स्त्री जिस किस्म के पशु से ससर्ग करे, वैसे पशु के बच्चे उस स्त्री की कोख से जन्म ले सकते है । लेकिन मेरा मन तो जानता है कि मेरे मामले मे यह सरासर झूठ है । फिर इसके पीछे क्या रहस्य हो सकता है ?

उसके दिमाग में यकायक सूझा कि क्या यह कोई षड्यंत्र नहीं हो सकता है ? मेरे साथ महाराजा का विवाह हो जाने से और उनका मेरे प्रति अत्यन्त स्नेह प्रदर्शित होने से अन्य महारानिया कही जलभुन न गई हों और उन्होने कोई प्रपंच खड़ा न कर दिया हो। हो सकता है कि मेरी प्रशंसा से वे मेरी बड़ी बहिने ईर्ष्यालु वन गई हो । कारण, दूसरी बहिनों के सन्तान नहीं हुई और मेरे हो रही थी सो उसके कारण भी भी दुर्भावनावश कोई कुकृत्य करवा दिया गया हो । यह ऐसा कुकृत्य कराया गया है कि सन्तान भी नष्ट हो जाय और मै भी बदनाम होकर महाराजा की नजरो से गिर जाऊं। कुकृत्य यह करवाया हो कि मेरे बच्चों को उठवा लिया गया हो और मेरी अचेतनावस्था के समय कुतियां के पिल्ले रखवा दिये गये हो । लेकिन इस तरह से कुकृत्य का मेरे पास प्रमाण क्या है ? फिर सहसा मै किसी पर आरोप कैसे लगा सकती हू ? यो देखे तो प्रत्येक नारी सन्तान चाहती है और उसके किसी कारण से सन्तान नही हो तो वह दूसरी की सन्तान से भी स्नेह करती है । मेरी बड़ी महारानियों के सन्तान नही हुई तो वे मेरी सन्तान की ईर्ष्यावश शत्रु भी हो सकती है और उसके लिये स्नेह भावना वाली भी हो सकती है इसलिये कल्पना के आधार पर दोषारोपण करना नये कर्मो के वन्ध का कारण हो सकता है और मेरे लिये ऐसा करना योग्य नही है ।

तो क्या यह किसी देव माया का परिणाम तो नही ?

किसी देव ने कौतूहलवश रूप परिवर्तन कर दिया हो और मेरे धैर्य व सदभावों की परीक्षा ले रहा हो जिसने मेरे बच्चों को हटा कर कुतिया के पिल्ले रख दिये हों। जीवित पुत्रों को हटा कर मृत पुत्रों को रख देने की दैविक घटना देवकी महारानी के साथ भी तो घटी थी। कही ऐसी ही स्थिति मेरे साथ तो नही बन गई ? कही ऐसा हो तो चारों ओर पता तो लगवाना चाहिये कि किसी को नवजात शिशु कही पडे हुए मिले हो।

विश्वसुन्दरी दु:खित मानस के साथ तरह-तरह की कल्पनाए कर रही थी—किसी भी एक कल्पना पर ठहर नही पाती थी। एक तो सन्ताने गायब कर दी गई और दूसरे अपयश और रोष की स्थिति का सामना करना पड़ रहा था महारानी को। विवाह की अल्पावधि में ही कष्टो का ऐसा पहाड़ उसके सिर पर आ गिरेगा—ऐसा उसने सोचा तक नही था।

दु.खो के इस पहाड़ की सबसे बड़ी चट्टान के रूप मे उसके सामने आया था उसके पतिदेव का उसके प्रति प्रकट किया गया रोष और तिरस्कार। पिता तो ससार छोड़कर चले गये। अब पूरे ससार में पति के सिवाय उसका अपना है ही कौन ? और वे पति ही उसके प्रति रुष्ट हो गये है तो वह किसके सहारे जी सकेगी ? महाराज ने खुद ने समझाया था कि यह पति-पत्नी का सम्बन्ध धर्म से जुडकर एक दूसरे को आपत्ति से बचाने और धर्म मार्ग पर प्रवृत्त कराने के लिये है लेकिन वे ही मेरे साथ कठोर हो गये और अपना कर्त्तव्य भूल गये है। किन्तु उनको भी क्या दोष दू ? उन्हें अपने लिये से भी बढकर जनता के लिये सन्तान की कामना थी। उस कामना पर एकाएक कुठाराघात हो जाने से उनका विचार सन्तुलन एकदम विचलित हो गया है और वे हताश से ग्रस्त हो गये हैं।

महारानी अन्ततोगत्वा इसी बिन्दु पर आकर ठहर जाती है कि मुझ किसी को कोई दोष नहीं देना चाहिये और मारी

परिस्थिति का शान्त चित्त से सामना करना चाहिये। दोष लगाकर आर्त्त रौद्र ध्यान करूंगी तो और नये कर्मो का बंध होगा। ऐसा मुझे नही करना चाहिये। पतिदेव ने मुझे जो धर्म का प्रकाश दिखाया है साधना का समत्त्व दिया है—उससे भटक कर मुझे अन्धकार में नही पहुंच जाना चाहिये अथवा विषमता के दलदल में नहीं फंसना चाहिये।

❀ ❀

: १२ :
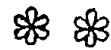
साधना में दृढ़ता की परीक्षा कई प्रकार से होती है। आप लोग भी सामायिक करते है नियमित भी करते होगे और अपने जीवन में ऊंची नीची परिस्थितियां भी आती होंगी। कभी सामाजिक सम्बन्धों में तनाव आते है या आर्थिक दृष्टि से लाभ-हानि के प्रसंग उठते हैं अथवा अन्य प्रकारों से आपत्ति विपत्ति के अवसर दीखते है, तो ऐसा विचार उठता होगा कि इतने समय से सामायिक की साधना या धर्माराधना कर रहे है, फिर भी इस तरह को खेदकारक परिस्थिति का सामना करना पड़ रहा है तो फिर क्या लाभ हुआ सारी साधना का ? यह सोचना मन की कमजोरी है जो कठिन समय में साधना के विषय में शंकाएं उत्पन्न हो जाती हैं। कभी-कभी कई भाई हताश होकर साधना का मार्ग छोड़ भी देते है।

किन्तु वास्तविक दृष्टि से विचार किया जाय तो ऐसी ऊंची नीची परिस्थितियों को साधना की दृढ़ता को परखने की कसौटी मानकर चलना चाहिये। विद्यार्थी वर्ष भर पढाई करता है और उसके बाद जब उसकी परीक्षा ली जाती है तो उसी से उसकी पढाई की जांच होती है। आप सामायिक करते रहे और जब ऊंची नीची परिस्थितियां आवें तब घबरा उठे तो सोचिये कि आप परीक्षा मे उत्तीर्ण होंगे अथवा अनुत्तीर्ण ? परीक्षा काल आने पर ही तो सामायिक की साधना की मजबूती जांची जा सकेगी। अतः ऊंची नीची परिस्थितियो को परीक्षा काल समझकर चलना चाहिये तथा धर्म ध्यान के स्थायित्व को सुदृढ बनाना चाहिये ताकि विपत्तियो का कभी बडा झोका आवे तब भी स्थिरता बनी रह सके।

यदि आपत्तियो-विपत्तियों से घबरा कर धर्माराधना छोड़ दी जाती है अथवा उसमें शिथिलता आ जाती है तो समझना चाहिये कि तब तक जो धर्मध्यान किया गया था, वह सही तरीके से नही किया गया। साधना की वास्तविक परीक्षा तो तब ही होती है जब सुख सुविधा नही रहती हैं और दु:खो की स्थिति आ जाती है। अगर ऐसे समय में वीतराग देवों के प्रति अटूट श्रद्धा

बनी रहती है तो पहले की साधना में भी चार चांद लग जाते हैं । ध्यान रखिये कि धर्म सदा हितकारी ही रहता है । ऊंची-नीची परिस्थितियां तो पूर्वाजित कर्मों के शुभाशुभ फल के रूप मे आती हैं । जहां कष्टकारक परिस्थितियों से घबराहट पैदा नही होनी चाहिये, वहां सुखदायक परिस्थितियों में भी बेभान होकर फूल नही जाना चाहिये । दोनों प्रकार की मनोदशाओं में साधना का क्रम दुर्बल होता है, यदि समत्त्व भाव न रखा जाय ।

महारानी विश्वसुन्दरी ने उस विपत्ति काल को अपना परीक्षा काल ही समझा । वह विविध विचारों के प्रवाह में डूबी हुई सोच रही थी कि वह परिस्थिति उसके निकाचित कर्म बन्धन का ही फल है जिसे शान्ति पूर्वक भोगने से ही साधना का क्रम बना रह सकता है । कदाचित् कर्मो का बन्धन कमजोर होगा तो शुभ साधना के वल से वह टूट जायगा और परिस्थिति में सुखकारी परिवर्तन उपस्थित हो जायगा । अतः पतिदेव ने जो सामायिक की साधना बताई है, उसमें समभाव पूर्वक प्रवृत्त रहना चाहिये । इस समय यही मुख्य अवलम्बन होगा । यह मेरी सामायिक साधना की परीक्षा है—इसमें मैं विफल न हो जाऊं । सोना अगर आग मे डालने पर उजला न हो और काला पड जाय तो उसको सोना कौन कहेगा ?

इस प्रकार समभावी विचारणा के सहारे महारानी अपनी मनोदशा में स्वस्थ सन्तुलन कायम करने का प्रयास करने लगी । अवमानना के साथ किये गये अपने छोटे और पुराने मकान में रूखी-सूखी खाकर भो वह अपनी धर्म धारणाओं को सुदृढ बनाने लगी । वह उस समय आत्म शान्ति के लक्षण को अपने समक्ष रख कर चल रही थी ।

दूसरी ओर मिथ्यादृष्टि आत्माएं जो अपनी शक्ति का स्वार्थ एवं नीचतावश दुरुपयोग करती हैं, उन्हें भी उसका दुष्परिणाम भुगतना पड़ता है । समय लगता है लेकिन कुकर्म का कुफल मिले विना नही रहता है । सलखू नाइन धर्म कर्म का मर्म कतई नहीं जानती थी । वह तो अर्थ लाभ और भौतिक सुख को ही सब कुछ मानती थी । अन्तराय कर्म का क्षयोपशम था सो उसके पास काफी

सम्पत्ति आ गई थी । महाराजा ने उसे उसका पूरा पारिश्रमिक दिया और तय था कि ग्यारह महारानियां भी षड्यंत्र की पूर्ण सफलता से परम प्रसन्न होकर उसकी झोली सोने से भर देगी । किन्तु सारी सम्पत्ति की प्राप्ति उसे अपनी आत्मा के घोंर अधःपतन से ही होने वाली थी । वह निन्द्य कुकर्म करके उसने अपनी शक्ति का भयंकर दुरुपयोग किया । सलखू को धन के लालच ने मूर्छाग्रस्त सी बना दी थी—इसी कारण वह अपने अध पतन को अपनी प्रसन्नता के रूप में ले रही थी ।

ग्यारह रानियों की वही विश्वस्त दासी सलखू के घर पर पहुंची और उसने सन्देश दिया कि रानियां उसे बुला रही हैं । वह तुरन्त उनके पास पहुंची । सलखू को देखते ही सभी रानियां अपनी खुशी जाहिर करने लगीं कि जैसा वादा किया था, सलखू ने अपनी अक्ल से उसे कामयाब कर दिखाया है । मुखिया महारानी बोली—सलखू, हम तुम्हारा लोहा मान गई हैं कि तुमने सारे षड्यन्त्र को बडी खूबी के साथ सफल बना दिया लेकिन यह तो बताओ कि इस काम को तुमने किया किस तरह और नई महारानी की वे सन्ताने थी कैसी ? सलखू गरूर में भरकर कहने लगी—क्या वताऊं कि आपका काम पूरा करने में मुझे कितनी सूझबूझ और हिम्मत दिखानी पडी है ? मुझे बहुत खुशी है कि मैंने आप की आज्ञा पूरी कर दी लेकिन मेरे मन में यह खतरा मंडरा रहा है कि कही भंडाफोड हो गया तो मेरा क्या होगा ? वाकी नई महारानी की दोनों सन्तानों के वारे में सुनकर आपको भी आश्चर्य होगा कि वे अति सुन्दर एवं सुकोमल ही नही, वल्कि दिव्यस्वरूपी थी । मेरा कठोर दिल भी एक वार तो उनके लिये पिघल उठा था किन्तु मैंने अपने आपको सम्भाला और मजवूत वनाया । फिर उन बच्चों को उठाकर पास के जगल वाले कुए में फैंक आई और कुतिया के दो पिल्लों को लाकर महारानी के पास में सुला दिये । उस समय प्रसव वेदना के कारण महारानी वेहोश पड़ी हुई थी और मेरे सिवाय वहा और कोई भी नही था । यह सुनकर वे रानियां चौकी और वोलीं—क्या तुमने उन वच्चों को जीवित ही कुए में फेंक दिया या मारकर ? सलखू ने घवरा कर कहा—मैं इतनी कठोर और क्रूर होते हुए भी उन मनमोहक शिशुओं

को मार नहीं सकी उन्हें यों ही कुए में फेंक आई लेकिन वे उस कुए में बच थोडे ही सकते हैं । बेचारे तभी मर गये होंगे । उनकी मृत देहे भी वहां के जन्तु खा चुके होंगे । तब वे रानिया आश्वस्त हो गई और उन्होंने अपने कहने के अनुसार विपुल स्वर्णाभूपण सलखू को दे दिये । इधर महारानियां खुशी से पागल थीं और उधर सलखू भी खुशी के हिंडोले में झूल रही थी ।

जो आत्मा अच्छे कर्म बांधकर आती है तो उसकी पुण्यवानी का उदय होता है और किसी का भी निमित्त मिले उसका जीवन संरक्षित और पोषित हो जाता है । आज के लौकिक व्यवहार के भी कई उदाहरण सामने आते हैं कि जो बहिन अपनी नैतिकता से गिरकर गलत रास्ते पर चली जाती है और वह कभी नवजात शिशु को बाहर जंगल में अथवा अन्यत्र फेंक आती है तब भी कई निमित्तो से उस शिशु की रक्षा हो जाती है । ऐसा भी एक उदाहरण सामने आया है कि ऐसे ही फेंका गया एक नवजात शिशु जंगली जानवर का दूध पीकर बचा ही नही बल्कि बडी उम्र का भी हो गया—हां, उसके संस्कार उस जंगली जानवर के समान ही ढल गये । नई महारानी विश्वसुन्दरी की उन दोनो दिव्य सन्तानों को भी ब्रह्मानन्द नाम के फक्कड उस कुए से निकाल कर अपने आश्रम मे ले गये ।

फक्कड ब्रह्मानन्द उन बच्चों की कमनीयता, कोमलता और दिव्य आकृतियां देखकर आश्चर्य चकित हो गये । वे चमत्कारी बाबा के नाम से जाने जाते थे । उनका आश्रम नगर से दूर था, फिर भी वहां उनके कई भक्त आते रहते थे । बाबा ने सोचा कि इन दोनों बच्चों का पालन पोषण आश्रम में ही कराया जाय । उन्हे उन बच्चों के जनक और जननी पर क्रोध भी आया, जिन्होंने मोहवश सन्तान पैदा करने का पाप तो किया, लेकिन उनका पालन पोषण करने से दूर हट गये । मनुष्य जाति के ऐसे निर्दयो को उन्होने धिक्कारा । बाबा विचार करने लगे कि पशु पक्षी भी अपनी सन्तति को ममता देते है लेकिन नवजात इन शिशुओं के माता-पिता ऐसे निर्दयी कैसे निकले ? बच्चों की आकृतियां तो यह बताती है कि इनको पैदा करने वाले भी प्रभावशाली होने चाहिये, फिर ऐसे व्यक्ति भला अपनी सन्तान को यों क्यों फेंक देते ? हो सकता है कि यह दुष्कृत्य किसी

और ने किया हो ? यह भी हो सकता है कि किसी कुमारिका की ये अवैध सन्तति हो और इस कारण फिकवा दी गई हो । कुछ भी हो—वच्छे वहुत ही पुण्यशाली दिखाई देते है और इनकी तेजस्विता को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि इनकी माता अवश्य ही चारित्र्य-शीला रही होगी, क्योकि चरित्रहीन मा को ऐसी सन्तान की प्राप्ति नही हो सकती है । जो भी हो, ये बालक अत्यन्त सौभाग्यशाली होने चाहिये ।

तभी तो बाबा ने सोचा कि ये उन्हे भी इतने प्रिय लग रहे है जिन्हे देखकर ही अद्‌भुत आनन्द की प्राप्ति हो रही है । इस उनकी गुण निष्पन्नता की दृष्टि से उन बाबा ने बालक का नाम रखा आनन्दसेन और बालिका का चम्पकमाला । ब्रह्मानन्द ही आनन्दसेन और चम्पक माला के माता, पिता और रक्षक सब कुछ बन गये जिनके स्नेह भरे संरक्षण मे वे दोनो बच्चे चन्द्रकलाओं की तरह बढ़ने लगे । उनका आश्रम उन बच्चो की मधुर किलकारियो से गूंजने लगा ।

कई सन्यासी तो सूखे लकड़ों को जलाकर आतापना लेते है तो कई सन्यासी हाथी पर बैठकर घूमते है, किन्तु ब्रह्मानन्द अलग ढंग के सन्यासी थे । वीतराग वाणी से उनका सम्पर्क हो चुका था तथा वे सम, सवेग, निर्वेद, अनुकम्पा एव आस्था को सम्यक् दृष्टि के साथ लेकर चल रहे थे ।

हमारे कोई भाई पूछते है कि मेरे भीतर सम्यक्त्व आया या नही, किन्तु इस वात का निर्णय बाहर वाला दूसरा नही वता सकता है । इसका निर्णय तो चिन्तन के आधार पर स्वय को ही लेना पड़ता है । दीन दु:खी को देखकर जिसका हृदय करुणा से द्रवित हो उठता है, विषय कषायो से जिसका मन उदास हो गया है अथवा विषमता के दृश्यो से जिसका अन्त:करण कष्ट पाता है उसे समझना चाहिये कि उसकी आत्मा सम्यक्त्व के पथ पर अग्रसर हो रही है । ब्रह्मानन्द भी सम्यक्त्व के भाव एवं व्यवहार रूपो को इस रूप में आचरित कर रहे थे । वे उन दोनों शिशुओं का लालन-पालन करते हुए अपने भीतर समत्व भावना का आनन्द ले रहे थे । इस भावना के साथ मोह ममत्व नही रहता । उन्होने यह नही सोचा कि ये शिशु मेरे नही है फिर मै इनके लालन पालन का श्रम क्यों करू ? जो माता

सम्यक् दृष्टि नही होती है और संयुक्त परिवार के सभी बच्चो को रमाती है तो उसके मन मे मेरे तेरे का भेद उठता है और देरानी-जेठानी का चक्कर पैदा होता है । अपना पुत्र जरा सा भी रोवे तो उसे घबरा कर उठा लेती है और भांति-भाति के उपायो से चुप करती है लेकिन वही बच्चा अगर देरानी का जेठानी का हो तो ऊपर का ढोंग कर लेगी मगर मन से सावधान नही रहेगी । सम्यक्दृष्टि भाव वाली माता इस तरह का भेद नही करती है । अपना हो या दूसरी का—सभी बच्चों को एक सा समझती है । यह सम्यक् दृष्टि का भाव उन आत्माओं में सुन्दर रीति से उदित होता है, जो सामायिक की साधना मे निरन्तर तन्मय बनती है । समत्व भावना की दृष्टि से वे ब्रह्मानन्द संन्यासी उन शिशुओं को अपने ही समझकर उन पर अपना स्नेह उडेल रहे थे ।

एक दिन रात्रि के समय आकाश में बादल मडरा रहे थे । उस समय बाबा ब्रह्मानन्द ध्यान की स्थिति में बैठे हुए थे । उसी कमरे में दोनों शिशु भी सो रहे थे । अचानक बालक आनन्दसेन को पिशाब की हाजत हुई तो वह उठ खड़ा हुआ और बाबा से कहने लगा कि मुझे पिशाब करना है । बाबा ने बाहर जाकर पिशाव कर आने को कह दिया । रात में गहरा अन्धेरा छाया हुआ था अत. बालक ने कहा कि उसे अकेले बाहर जाने में भय का अनुभव हो रहा है ।

संन्यासी ने आनन्दसेन को जोश दिलाते हुए कहा—तुम तो क्षत्रिय के वीरपुत्र जैसे लगते हो, फिर तुम्हें भयभीत तो होना ही नही चाहिये । बाबा की इच्छा थी कि बच्चो को ऐसे श्रेष्ठ संस्कार दूं कि आगे जाकर इनका जीवन बहुत ही व्यवस्थित और सन्तुलित हो जाय । बच्चों को भय के संस्कार देते है तो वे भयभीत बनते हैं और कभी-कभी भयवश अपना जीवन विनष्ट तक कर देते हैं । भय के कुसंस्कारो से मन आरम्भ में ही दुर्बल हो जाता है । बाबा ने आनन्दसेन को कहा कि बाहर कोई भय नही है, तुम नि.शंक होकर चले जाओ । इस पर आनन्दसेन अकेला ही झोपड़ी से बाहर पिशाव करने के लिये चला गया ।

ज्योंही आनन्दसेन पिशाव करने को हुआ कि उसे एक

विकराल रूप सामने दिखाई दिया । वह डर गया और जोर-जोर से चिल्लाने लगा कि बाहर भूत बैठा है ।

सन्यासी ने बाहर निकल कर चारो ओर देखा कि बालक को किसने डरा दिया है ? फिर ललकार लगाई—कहा है भूत ? तब आनन्दसेन तो आकर सन्यासी के पैरो से लिपट गया किन्तु सन्यासी भी यह देखकर आश्चर्य चकित रह गया कि यह सामने विकराल रूप किसका दिखाई दे रहा है ? उन्होंने कड़ककर पूछा—कौन हो तुम ? वह विकराल रूपधारी व्यक्ति आगे बढ़ा और संन्यासी को प्रणाम करके बोला—गुरुदेव, यह तो मै हाथी हूं, लेकिन पशुरूप हाथी नही । हाथी मेरा नाम है । मैं पहलवानी करता हूं । मेरा हाथी जैसा बदन होने से लोगो ने मेरा नाम ही हाथी पटक दिया है । किन्तु हूं मैं आपका शिष्य । संन्यासी चौके और बोले—भाई, तू मेरा शिष्य कब से हो गया ? हाथी ने हंसकर कहा—मैं आपके सामने तो पहली बार ही आया हू लेकिन आपको महामन्त्र का जाप करते और उपलब्धियां प्राप्त करते जब से देख रहा हूं तब से ही मन मे मैंने आपको गुरु मान लिया है । आप प्रतिदिन जब भ्रमण करने बाहर जाते है तब नित्य कर्म के रूप मे मैं प्रतिदिन आपके दर्शन कर लता हूं । उस बाबा ने पूछा—फिर अभी आकर तुम बच्चे को क्यों डराने लगे हो ? हाथी ने कहा—मैं अभी बच्चे को डराने नही आया हूं । मेरा लम्बा चौडा शरीर देखकर बच्चा वैसे ही डर गया है । यह कहते हुए उसने बच्चे को बड़े प्यार से गोद में उठा लिया तो आनन्दसेन का भी डर दूर भाग गया ।

हाथी पहलवान ने आनन्दसेन को बड़े प्यार से दुलराते हुए कहा—देखो भैया, मेरे शरीर को देखो—यह विकराल नही बल्कि पुष्ट शरीर है । गुरुजी अगर तुम्हे मुझे सौप दे तो मैं भी तुम्हारे शरीर को व्यायाम का ऐसा अभ्यास कराऊं कि तुम्हारा शरीर भी पुष्ट और सुगठित बन जाय । बाबा ने पहलवान को कहा—चलो भीतर आओ । हाथी ने कहा—मैं भीतर नही आ सकूंगा किन्तु मेरे मन में इस बालक को देखकर यह जिज्ञासा उत्पन्न हुई है कि आप इसे मन से पहलवान बना रहे है तो मैं तन से पहवान बनादूं । यों तो मनोबल ही मुख्य होता है और मनोबल से ही कोई निर्भय बन

सकता है, फिर भी शारीरिक बल भी साथ में जुड़ जाये तो मन का बल बढ़ जाता है । वैसे मनोबल ही सर्वोच्च होता है ।

स्वर्गीय आचार्य श्री गणेशीलालजी म. सा. ने लगभग २२–२३ वर्ष तक स्वतन्त्र चातुर्मास नही किया । वे प्राय: आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. के साथ ही चातुर्मास किया करते थे । एक बार आचार्य श्री ने उन्हें बुलाया और कहा—आप को आगामी चातुर्मास चुरू में स्वतन्त्र रूप से करना है । आपका यह चातुर्मास विरोधी पक्ष के बीच में होगा क्योंकि उस कस्बे मे समर्थन करने वाले तो एक दो भाई ही है । ध्यान रखें—कष्टप्रद अवस्था मे रहना पड़ेगा । उन्होने आज्ञा स्वीकार की और चुरू पहुंच कर अपने मन की पहलवानी साधी । चातुर्मास आरम्भ हुआ तो व्याख्यान की प्रभावशाली शैली के कारण प्रतिदिन परिषद् बढ़ने लगी, अन्य मतालम्बी भी बड़ी संख्या में आगे लगे और उपस्थिति जो चन्द व्यक्तियों से शुरू हुई थी, पाच-पांच सौ तक पहुंच गई । रेगिस्तानी जलवायु और खानपान के असर से पूज्य श्री के शरीर में कष्ट पैदा हुआ, फिर भी वे मन की मजबूती को बराबर बनाये रख रहे थे । अन्य मतावलम्बियों के यहा गोचरी जाने में बत्तीस दोष टालने की दृष्टि से वड़े परिषह सहने पड़ते थे तथा इस बीच उनके नेत्रों की रोशनी भी कम होने लगी किन्तु किसी को इन कष्टों का भनकारा तक नही मिला । इस तरह मन की पहलवानी का उन्होंने अनुपम आदर्श प्रस्तुत किया ।

हाथी पहलवान की बात ब्रह्मानन्द संन्यासी को पसन्द आगई और उन्होंने उसके प्रस्ताव को स्वीकृति दे दी कि आनन्दसेन को शारीरिक दृष्टि से पुष्ट, सुगठित एवं बलशाली बनाने का अभ्यास वह करावे । संन्यासी मन की पहलवानी उसे सिखा ही रहे थे । मन की पहलवानी कठिन साधना के बाद ही प्राप्त हो सकती है । सन्त तुकाराम जी ने वह पहलवानी साधी थी कि उनकी क्रोधी पत्नी ने एक बार उनकी पीठ पर गन्ना दे मारा । घटना यों है एक दिन बाहर से एक गन्ना लेकर आये । और उसे अपनी पत्नी के हाथ में थमा दिया । पत्नी ने पूछा क्या देनें वाले नें एक ही गन्ना दिया तब तुकाराम जी ने कहा देने वाला तो पूरी भारी ही आग्रह पूर्वक दे

रहा था । पर मैं एक ही गन्ना लाया । इससे पत्नी को क्रोध आ गया जिससे वह गन्ना उसने तुकाराम जी की पीठ पर दे मारा । गन्ने का टूटना ही था । वह टूट गया । उसके तीन टुकड़े हो गये तुकाराम को क्रोध आ जाना था पर नहीं आया । आता भी कैसे ? उन्होंने मन की पहलवानी जो साध रखी थी । उन्होने हसते हुए उत्तर दिया, तुम कितनी चतुर हो, तुमने एक गन्ने के तीन गन्ने बना दिए । संयोग की बात है घर मे सदस्य भी अपन तीन ही हैं । जिससे सबको एक-एक गन्ना (गन्ने का टुकड़ा) मिल जायेगा । ऐसी पत्नी यदि आप लोगों को मिल जाय तो क्या घर छोड़ कर नही भाग जाओगे ? आशय यह है कि मन को समता की साधना से ही साधा जा सकता है ।

जिस आत्मा ने पूर्व जन्म मे धर्म का कार्य किया, शुभ भावनाओं के बल से अपने आपको निर्भय बनाया तथा दीनहीनो को शक्तिभर अपना संबल दिया, वह आत्मा निज स्वरूप की शुद्धि के साथ श्रेष्ठ पुण्य पुंज का संचय करती है । फिर उस पुण्यवानी का अगले जन्म में जब उदय आता है तब वही पुण्यवानी कठिनतम आपत्तियों के बीच मे भी उसकी जीवन रक्षा करती है । आनन्दसेन ऐसा ही पुण्यशाली जीव था । जन्मते ही कुए में डाल दिया गया और माता-पिता के शुभ संयोग से वंचित रहा, फिर भी उसे बाबा ब्रह्मानन्द का संरक्षण व सहयोग मिल गया । यही नही, बाबा के आश्रम में उसे संस्कारपूर्ण शिक्षा की सुविधा भी प्राप्त हुई । बाबा उसे वीतराग देवों की वाणी का रस-पान कराते और उसके मन को मजबूत बनाते तो हाथी पहलवान ने उसमे शारीरिक बल का विकास करके उसे अच्छा पहलवान ही बना दिया ।

आनन्दसेन अपनी तरुणाई में पहुंचकर सुन्दर और सुदर्शनीय युवक तो बना ही, किन्तु मानसिक एव शारीरिक शक्ति की जो उसकी आकृति पर झलक दिखाई देती थी, वह किसी को भी प्रभावित किये बिना नही रहती थी । एक दिन हाथी पहलवान ने अपने शिष्य की परीक्षा लेने की ठानी और जब परीक्षा ले ली तो वह खुशी से पागल हो उठा । वह भागा भागा बाबा ब्रह्मानन्द के पास पहुंचा और बोला—गुरुदेव, आज मैं आश्चर्य चकित रह गया हूं कि शिष्य

अपने शिक्षक से आगे बढ़ गया है। ब्रह्मानन्द समझे नही, कहने लगे-क्या हुआ ? मैं समझा नही। तब हाथी ने समझाया—मैं आज परीक्षा लेने की इच्छा से आनन्दसेन के साथ मल्लयुद्ध करने लगा तो मैं दग रह गया कि सारा अपना बल लगा लेने के बावजूद मैं उसके हाथों हार गया। अब तक मेरा अनुभव था कि मेरे समान बलशाली कोई नहीं है लेकिन अब आनन्दसेन मुझसे बढ़कर हो गया है। किन्तु आज मैं बहुत खुश हूं। उन्होंने भी कहा—अरे हाथी, जैसे तुम आज बहुत आश्चर्य कर रहे हो, वैसे ही मैं भी बहुत आश्चर्य कर रहा हूं क्योंकि मेरा अनुभव यह है कि आनन्दसेन अपने मन की मजबूती मे उतना पारंगत नही हो सका है जितना कि मैं उसे बनाना चाहता हूं, फिर भी मैं अपना प्रयत्न बढ़ा दूंगा।

उधर चम्पा नगरी में प्रति वर्ष मनाये जाने वाले महोत्सव का समय समीप आ रहा था जिसमें भांति-भांति के आयोजन रखे जाते थे। इन आयोजनों में प्रयास यह रहता था कि राज्य में विकसित हो रहे विभिन्न गुणों का प्रदर्शन उनमें हो। इसी दृष्टि से मल्लयुद्ध याने पहलवानों की कुश्ती का भी कार्यक्रम उसमें रखा गया। महोत्सव का समय समीप आ जाने पर सभी कार्यक्रमों की सार्वजनिक घोषणा कराई गई, ताकि उनमें अपने गुणों का प्रदर्शन करने के लिये कलाकार सम्मिलित होने हेतु सम्पर्क कर सके। यह घोषणा आनन्दसेन के कानों में भी पड़ी। उसने सोचा कि वह भी मल्लयुद्ध के कार्यक्रम में भाग क्यों न ले ? वह अपने शिक्षक हाथी पहलवान के पास पहुचा और बोला—यदि आप आज्ञा दे तो मैं राज्य-महोत्सव के मल्लयुद्ध कार्यक्रम में भाग लेना चाहता हूं जिससे मैं आपकी शिक्षा का सफल रूप दिखा सकूं। हाथी ने कहा—इसके लिये तुम बाबा ब्रह्मानन्द की आज्ञा लो क्योकि उन्हीं की आज्ञा से मैंने तुमको पहलवानी सिखाई है। वे ही जीवन का आन्तरिक विज्ञान जानते है और तुम्हारे मन को पहिचानते हैं। हम तो यह भी नही जानते कि तुम्हारे माता-पिता कौन है और तुम्हारा विशेष परिचय क्या है ?

आनन्दसेन तो माता और पिता दोनों के रूप में बाबा ब्रह्मानन्द को ही जानता था, अतः बोल पड़ा—मेरे माता-पिता और सब कुछ बाबा ही तो हैं। हाथी ने समझाया—बाबा ने तो तुम्हारा

लालन-पालन और शिक्षा–दीक्षा की है। तुम्हारे माता और पिता तो कोई और है जो अज्ञात है। आनन्दसेन ने पूछा—तो मेरे माता-पिता का पता कैसे लगेगा ? हाथी ने यही कहा—इसकी चिन्ता मत करो, समय पर सब कुछ ज्ञात हो जायगा। अभी तो मल्लयुद्ध के कार्यक्रम मे अपने भाग लेने की अनुमति बाबा से प्राप्त करो।

तरुण आनन्दसेन उस समय वहां से रवाना तो हो गया किन्तु उसके तरुण मानस में एक गम्भीर जिज्ञासा जाग उठी कि उसे अपने जन्मदाता माता–पिता का पता लगाना है। वह बाबा के पास पहुंचा और बोला—बाबा, यहां राजधानी मे बहुत बड़ा महोत्सव हो रहा है जिसमें विविध प्रकार के प्रदर्शन और कार्यक्रम रखे गये है। इनमे से एक मल्लयुद्ध का कार्यकम भी है। मैं आपसे इस कार्यक्रम में भाग लेने की अनुमति चाहता हूं। बाहर से बड़े–बड़े पहलवान कुश्तियां लड़ने के लिये आयेंगे। मुझे विश्वास है कि मै उन्हे पछाड़ दूंगा। इससे आपका और चम्पानगरी का नाम ऊंचा उठेगा।

ब्रह्मानन्द आनन्दसेन की बात सुनकर गम्भीर मुद्रा में बैठ गये और अन्तर्ध्यान करने लगे। इस प्रकार आन्तरिक चिन्तन के बाद वे बोले—पुत्र, अभी तुम अपनी शक्ति को गोपन करके रखो। मनुष्य को जो जो शक्तियां मिलती है, उन सभी का प्रदर्शन नही करना चाहिये। कूड़े–करकट को बाहर फैंको और रत्नों को भीतरी तिजोरी में रखते जाओ। गुणों का प्रदर्शन करने की आवश्यकता नही है, जब अवसर आवे तब उनका इस तरह परिचय दो कि उसका कुछ सार निकले।

गौतम स्वामी कई लब्धियों के धारक थे, किन्तु वे अपनी लब्धियों को गोपन करके रखते थे। ब्रह्मानन्द भी वीतराग वाणी का मर्म जानते थे, इसी कारण उन्होने ध्यान करनें के बाद कहा—मुझे विश्वास है आनन्द कि तुम इस कुश्ती प्रतियोगिता में हारोगे नही लेकिन अभी तुम्हारी शक्ति के प्रदर्शन का समय नही आया है इसलिये प्राप्त शक्ति का अभी प्रदर्शन नही बल्कि तुम्हें गोपन करना है। आनन्द तो अपनी तरुणाई में था और तरुणाई मे उतावलापन होता है। इस अवस्था में गम्भीरता से चिन्तन करने में कम रुचि रहती है, सो वह कहने लगा– बाबा मुझे अपनी शक्ति को गोपन रखने का

आप निर्देश कर रहे है तो क्या आप मुझे कमजोर समझते हैं या मेरे हार जाने की आशंका रखते हैं ? बाबा ने उसकी पीठ ठोककर कहा अरे नहीं भैया, मैं तुम्हें कमजोर थोड़े ही समझ रहा हूं। सिर्फ अभी सन्तोष रखने की बात बता रहा हूं। किन्तु आनन्दसेन हठ करने लगा तो बाबा ने आज्ञा देते हुए भी यह कहा—देखो, मैं तुम्हें आज्ञा दे रहा हूं किन्तु मेरे अन्तर्मन से नहीं। लेकिन मेरी एक बात बराबर याद रखना।

ब्रह्मानन्द बाबा अनुभवी थे। उन्होंने सोचा कि तरुण को ज्यादा दबाना भी ठीक नही है, किन्तु आज्ञा देकर भी उसे सावधान बना देना चाहिये। अतः वे बोले—एक बात का पूरा ध्यान रखना कि जब किसी भी समय तुम्हारे ऊपर कोई कष्ट आ जाय तो तुम नमस्कार महामंत्र का जाप कर लेना और वीतराग देव द्वारा बताई गई विधि के अनुसार मुझे भी याद कर लेना।

❀ ❀ ❀

: १३ :

"उत्सवप्रिया: हि खलुजना."—मनुष्य को उत्सव प्रिय लगते है। चम्पानगरी के विशाल प्रागण मे वार्षिक महोत्सव का आयोजन किया गया था। प्रांगण ध्वजाओं व पताकाओं से सजाया गया तथा एक ओर विशाल मन्च बनाया गया। उस प्रांगण के चारों ओर जनता के लिये बैठकर देखने का स्थान वनाया गया। मन्च पर महोत्सव मे भाग लेने वाले कलाकारों को विठाया गया तो एक ओर दूसरे मन्च पर महाराजा एवं राज परिवार के लिये सुसज्जित स्थान बनाया गया। महोत्सव के विविध कार्यक्रमों को देखने के लिये उमड़ा हुआ जनोत्साह अपूर्व था।

रनिवास मे रहने वाली महारानियों में से पटरानी तो वहुत ही गम्भीर एवं साधक स्वभाव वाली थी। किन्तु शेष ग्यारह रानियों की वृत्तिया चंचल तथा दुर्गुणयुक्त थी। वे भी इस महोत्सव को देखने के लिये आई हुई थी।

महाराजा अपनी नई महारानी विश्वसुन्दरी के प्रति अतीव आकृष्ट थे किन्तु उसके उस प्रसवकाल के वाद से अतीव उपेक्षित हो गये थे। उनका मन उससे इतना हट गया कि इतने वर्षो मे उन्होने उसके पास जाकर पूछा तक भी नही कि वह कैसे है। इस अर्से में उन्होने पहले की रानियों के साथ अपना आकर्षण जोड़ लिया था। वे उन रानियों की वात भी सुनने लगे तो उनकी सुख सुविधाओ का विशेष ध्यान भी रखने लगे। अत: जव उन रानियो ने महोत्सव में सम्मिलित होने की इच्छा प्रकट की तो वे उन्हे अपने साथ लेकर महोत्सव के प्रांगण मे पहुंचे।

महाराजा के वहां पहुंचते ही कार्यक्रमों को प्रारम्भ करने की घोषणा कर दी गई। अन्य कार्यक्रमों के साथ मल्लयुद्ध का कार्यक्रम भी आयोजित था जिसके लिये अन्य पहलवानों के साथ सिंह के समान भव्य आकृति वाले आनन्दसेन की उपस्थिति का सवको आभास हो रहा था। अधिकांश लोगों की आश्चर्य चकित दृष्टि आनन्दसेन पर लगी हुई थी कि यह प्रभावशाली तरुण कौन है, कहां

से आया है और किस कार्यक्रम में भाग लेगा ? किन्ही लोगों ने मालूम किया कि यह तरुण बाबा ब्रह्मानन्द के आश्रम से आया है और मल्ल युद्ध में भाग लेगा। वे सोचने लगे कि ऐसा सुकोमल और सुन्दर तरुण भला इन पहलवानों का कैसे मुकाबला करेगा ? लेकिन वे यह भी जानते थे कि अगर बाबा ब्रह्मानन्द के आश्रम से आया है तो अवश्य ही यह युवक विशिष्ट प्रतिभा एवं योग्यता वाला होना चाहिये। उन्हें वह विशिष्टता भी साफ-साफ दिखाई दे रही थी क्योंकि वह युवक शरीर से हृष्ट-पुष्ट, संस्कारों से शालीन और चारित्र्य सम्पन्नता से तेजस्वी दिखाई दे रहा था।

तभी मल्लयुद्ध के कार्यक्रम की घोषणा हुई और वह तेजस्वी तरुण अखाड़े में आ खड़ा हुआ। सब उत्सुकतापूर्वक उसी ओर देख रहे थे। महाराजा ने भी तब ध्यानपूर्वक उस तरुण को देखा जो अपनी तरुणाई में अतीव ही आकर्षक और मनमोहक लग रहा था। यही नही, उसे देखकर उनके हृदय में ऐसा रोमाच होने लगा था कि वे बिना कारण ही उसके प्रति आनन्दाभिभूत हो गये।

अखाड़े में कुश्तियां होने लगीं और देखते-देखते आनन्दसेन सभी नये पुराने पहलवानो को पछाड़ता हुआ चला गया। वह सर्वविजेता बन गया। पुण्यवानी क्या-क्या करतब दिखाती है ? सारा जन समूह जयघोष के साथ उसकी सराहना करने लगा। महाराजा ने भी मन ही मन उसका विशेष सम्मान करने का निश्चय किया। ज्योंही आनन्दसेन के सर्व विजेता होने की घोषणा की गई तो महाराजा अपने सिहासन से स्वयं उठकर अखाड़े तक गये और उन्होने अपने हाथों आनन्दसेन को स्वर्ण हार पहिनाकर उसका विशेष सम्मान किया।

जब चन्द्रसेन और आनन्दसेन पास-पास खड़े चारो ओर से जनता का अभिवादन स्वीकार कर रहे थे तो उस जोड़ी को देखकर सभी मन्त्रमुग्ध से हो गये। वें ग्यारह रानियां तो उस दृश्य को देखकर चौंक उठीं, वल्कि एक वार ऊपर से नीचे तक कांप उठीं। अरे, यह क्या ? यह आनन्दसेन कहां का पहलवान है ? इसे देखकर ऐसा लग रहा है जैसे स्वयं महाराजा खड़े हों। दोनों इस तरह दिखाई दे रहे हैं जैसे एक नहीं दो चन्द्रसेन खड़े हों। महाराजा की हूब-

प्रतिकृति सी यह कौन तरुण है जिसके प्रति देखते हुए आकर्षण समाप्त ही नहीं होता है ?

उस भव्य तरुण को देखकर जहां पटरानी परम प्रसन्न हो रही थी, वहां अन्य ग्यारह रानियां शंका और भय से आतंकित हो उठी। कई तरह के विचार उनके मस्तिष्क में उमड़ने घुमड़ने लगे। उनका सन्देह जागा तो उनकी ईर्ष्या भी जागी। कहा जाता है चोर की दाढी मे तिनका होता है याने कि जब किसी का पता लगाने की बात आती है तो सबसे पहले चोर के मन मे ही शंका जागती है। ग्यारह रानियां उस तरुण के प्रति सशंकित हो उठी। पटरानी की विचारधारा उनसे भिन्न दिशा मे चल रही थी। वह सोच रही थी अतीत की बाते कि जब उससे महाराजा को सन्तान की प्राप्ति नही हुई तो उन्होने एक-एक करके ग्यारह विवाह और किये, किन्तु उनसे भी सन्तति नही हुई। जब देव ने भविष्य-वाणी की और महाराजा तदनुसार नई महारानी को ब्याह कर गर्भवती की अवस्था में उसे राजधानी मे लाये तो सबको आशा हुई कि इस नई महारानी से महाराजा एवं जनता की आशा पूर्ति अवश्य होगी। इसके विपरीत जब महारानी द्वारा कुतिया के पिल्ले जनने की बात जाहिर हुई तो महाराजा अतीव खिन्न हो गये। आज इस तरुण को देखकर कुछ का कुछ विचार आ रहा है। यह दिव्य सन्तान किसकी कुक्षि से जन्मी है - यह मै नही जानती, मगर यह निश्चित है कि इसको जन्म देने वाली माता महारानियों सी ही शालीन, सुसंस्कृत और चारित्र्य सम्पन्ना होनी चाहिये। इसको देखकर मेरे मन में बहुत ही प्रमोद हो रहा है और यह भावना जाग रही है कि न हुआ अपना ही राजपुत्र, क्यो नही महाराजा इसे ही गोद लेले और अपने राज्य का उत्तराधिकारी बनाले ? उसने अपना यह सुझाव महाराजा को एकान्त में निवेदन करने का भी निश्चय कर लिया। पटरानी का जीवन समता रस से ओत-प्रोत था। अतः वह उस तरुण की गुणधर्मिता पर रीझ गई थी।

पटरानी जहां अमित हर्ष के सागर में हिलोरे ले रही थी, वहीं ग्यारह रानिया शंका और भय से थरथराती हुई प्रतिहिंसा की ज्वाला में जलने लगीं। जब से आनन्दसेन की आकृति देखी और

उसका महाराजा की आकृति से मिलान किया तब से उनके तन मन में शिथिलता छाने लगी थी। उसी शिथिलता की प्रतिक्रिया के रूप में उनकी प्रतिहिंसा जाग रही थी। वे सोचने लगीं कि पटरानी जी को अलग रखकर हमने षड्यन्त्र रचा और सलखू नाइन के माध्यम से उसे पूरा कराया गया, किन्तु लगता है कि उसमें असफलता ही हाथ लगी है। सलखू ने नई महारानी के बच्चों की जीवन लीला समाप्त नही की थी और उन्हें जीवित ही सलखू कुए मे फेंक आई थी जिसका यह परिणाम हुआ। हो सकता है कि वे बच्चे जीवित बच गये हो और किसी का संरक्षण पा गये हों। यह तरुण तो इस प्रकार से बचा हुआ राजकुमार ही हो सकता है। इससे साफ है कि सलखू ने आश्वासन देकर भी हमे धोखा दे दिया और विपुल स्वर्ण राशि हमसे लेकर चली गई। ग्यारह रानियां परस्पर बहुत धीरे-धीरे बात करने लगी कि उनके अनुमान के अनुसार यह तरुण नई महारानी विश्वसुन्दरी का ही राजकुमार होना चाहिये। इसका प्रमाण है कि इसकी और महाराजा की आकृतिया एकदम से समान हैं।

महोत्सव के सभी कार्यक्रम सम्पन्न हो जाने के बाद सभी अपने-अपने स्थानों को लौट गये। महाराजा भी राजभवन मे पहुंच गये किन्तु उनका मानस तब भी अतीव हर्षावेग से रोमांचित हो रहा था। बार-बार उनकी आंखों के सामने आनन्दसेन की भव्य आकृति ही घूम रही थी और वे उसके प्रति आकृष्ट हो रहे थे। कहते है कि सयानों का एकमत होता है। तदनुसार पटरानी की तरह ही महाराजा के मन मे भी विचार उठा कि वह पहलवान तरुण तो मेरे से भी अधिक भव्य व्यक्तित्व वाला दीख रहा था और मुझे बहुत प्यारा लग रहा था। उस पर मेरा लाड प्यार ठीक सन्तान की तरह उमड़ रहा था और अब भी उमड़ रहा है। मैं इसे समझ नहीं पा रहा हूं लेकिन मेरा मन हो रहा है कि वह तरुण हमेशा मेरे पास ही रहे।

राजभवन पहुंचते ही ग्यारह रानियों ने अपने कक्ष में एक गुप्त बैठक की और उस तरुण के सम्बन्ध मे विस्तार मे चर्चा की। उन्होने निर्णय लिया कि इसी समय सलखू नाइन को बुलाकर सारी

पूछताछ करनी चाहिये । सलखू बुलाई गई और ज्योंही वह आई, सभी रानियां उत्तेजित होकर बोल पड़ी—सलखू, तुमने यह क्या किया ? हमको तेने धोखा क्यों दिया ? उन बच्चों को तेने मारा नही और अब लगता है कि वे जीवित रहकर बड़े हो गये हैं । सलखू भी महोत्सव के दृश्य को देख आई थी और स्वयं वह भी सशंकित थी, अतः तत्काल कुछ बोली नहीं, शान्त खड़ी रही । तब तो मुखिया रानी क्रोधित होकर बोली—अब तेरा मुंह बन्द क्यो है ? इतना सारा सोना भी हम से ले गई और झूठा आश्वासन देकर तूने हमें ठग लिया । हमने कितना कहा था कि हमारी लाज रखना और अब दीखता है कि वहीं हमारी लाज चौपट हो जायगी ।

तब धीरे-धीरे सलखू कहने लगी आपसे मैं माफी चाहती हूं । उन नवजात शिशुओ की आकृति ही इतनी भव्य और प्यारी थी कि मैं चाहकर भी उन्हें मार डालने की हिम्मत नही जुटा पाई । मेरी अन्तरात्मा ने भी साक्षी दी कि ऐसे शिशुओं को अपने हाथों से मारने का पाप मत कर, इसलिये एक बार तो मैने कुछ भी नही करने का विचार किया । लेकिन तुरन्त ही मुझे आपको दिये गये मेरे आश्वासन का ध्यान आ गया और मैंने सोचा कि उसको पूरा करने के लिये मुझे कुछ तो करना ही चाहिये । यह सोचकर ही मैं दोनो शिशुओं को कुए में फेंक आई कि इस तरह मुझे उन शिशुओं को हाथ से मारना भी नही पड़ेगा और आपका काम भी बन जायगा ।

मुखिया रानी चीख उठी - यह सब तो हमने सुन रखा है लेकिन क्या तेने आज कुश्तियों मे सब पहलवानों को पछाड देने वाले उस तरुण को नही देखा ? क्या उस पहलवान तरुण की आकृति हूबहू महाराजा की आकृति से नही मिलती थी ? उसे देखकर क्या तेरे मन में यह विचार नही उठा कि महाराजा का ही वह राजकुमार होना चाहिये ? महाराजा कभी भी चरित्रहीन नही हो सकते, इस लिये यह तय है कि वही विश्वसुन्दरी की कोख से जन्मा हुआ राजपुत्र होना चाहिये । अब देखले कि जब तक वह तरुण जीवित है, न हमारा जीवन सुरक्षित है और न ही तुम भी कठोर दण्ड से बच पाओगी । हमें एक पल भी चैन नही पड़ रहा है—यह तू

समझ ले और जो कुछ अब भी कर सकती हो, वह कर वरना हम तो उपाय कर ही रही हैं।

आनन्दसेन ने भला इनमें से किसका क्या विगाड़ा था? अज्ञानी व्यक्ति अपने स्वार्थों में अन्धे बन कर दूसरों को देखकर जलते भुनते है और निर्दोष होने पर भी उनको हानि पहुंचाने की कुचेष्टाएं करते हैं। बारीकी से देखें तो आज यही दशा ठौर-ठौर पर इस संसार में बन रही है। सांसारिक प्राणी अपने दोष नही देखते चाहे वे पहाड़ जितने बड़े हों मगर दूसरों के राई जितने दोप भी देखते हैं और उनको पहाड़ जितना बनाकर दूसरों को दिखाते हैं। यह दोष दृष्टि क्यों बढ रही है? इसलिये कि इस लालसाग्रस्त मन में आशान्ति व्याप्त हो रही है। उस अशान्ति के कारण उसमे अपने आपको देखने की आदत नही रही है। इस कारण संशोधन नही हो पाता है।

रानियों ने सलखू नाइन को डपट कर कहा—अब देखना कि हम क्या करती हैं? लेकिन याद रखना कि हमारी बात कहीं बाहर न फूटे। सलखू ने हाथ जोड़कर कहा—इसके लिये आप बिल्कुल निश्चित रहें। मै आपके साथ हूं। जब भी मेरी सेवा की जरुरत समझें तो मुझे बुलवा ले। मै आपकी आज्ञा का पालन करूंगी। सलखू को रवाना करके ग्यारह रानियां गुप्त मन्त्रणा करने लगी कि अब आगे क्या किया जाय? हमारा अभी महाराजा से जो मधुर सम्बन्ध चल रहा है, अगर इस कांटे को राह में से नहीं हटाया तो वह खतरे मे पड़ जायगा। वे सब नया षड्यन्त्र रचने में व्यस्त हो गई।

फिर जब महाराजा उनकी तरफ आये तो उन रानियों ने बड़ा त्रिया चरित्र दिखाया। राजभवन के अपने निवास वाले हिस्से की ऐसी दुर्दशा बना दी जैसे कि किसी डाकू ने घुस कर उटका पटक कर दी हो। अपने वस्त्रो व बालो की दशा भी ऐसी अपरूप कर दी जैसे कि उधर आने वाले डाकू ने उनके साथ भी बलपूर्वक छेड़छाड़ की हो। महाराजा उस अस्त-व्यस्तता को देखकर चौंक उठे कि राजभवन मे आकर इस तरह का अपराध करने का दुस्साहस किस दुष्ट ने किया है? रानियों ने भांति-भांति के बनावटी हाव-भाव दिखाये और दासियों की झूठी साक्षियां प्रस्तुत कराई कि जिसने

आकर यहां सबको सताया है उसको हमने कल ही मल्लयुद्ध में देखा था—वही आनन्दसेन जिसने सभी पहलवानों को पछाड़ दिया था। रानियो ने एक स्वर से कहा—महाराज, आपने उसका बहुमान किया तो उसका हौंसला बढ गया। उसी ने आकर राजभवन में यह तहस–नहस मचाया है और हमारे साथ भी उसने दुर्व्यवहार किया है।

महाराजा भौचक्के होकर उन रानियों को देखते रहे और अपनी आंखों में तैरती हुई आनन्दसेन की शिष्ट व सदाशयी मूर्ति को ध्यान में लेकर सोचते रहे कि यह कैसी विचित्र घटना उन्हे बताई जा रही है ? क्या आनन्दसेन जैसा भव्य व्यक्तित्व वाला तरुण कभी भी ऐसा उपद्रव कर सकता है ? महाराजा ने विचार किया कि मैं गृहस्थाश्रम में रहता हुआ वीतराग देव का अनुयायी हूं और श्रावक के बारह अणुव्रतों का पालन करता हूं। श्रावक का पहला अणुव्रत मैंने अंगीकार कर रखा है कि निरपराधी प्राणी को न मारना है, न सताना है, किन्तु अपराधी—हिंसा का मुझे त्याग नहीं है। वीतराग का अहिंसा धर्म कायरों का नही, वीरों का धर्म है। जो वीतरागवाणी का आशय भली प्रकार नहीं समझते हैं, वे सन्तों की अहिंसा वृत्ति को देखकर बिना विचारे बोल पड़ते हैं कि यह अहिंसा तो कायरों की अहिंसा है। जैसे साधु धर्म है कि कोई एक गाल पर चांटा मार दे तो दूसरा गाल भी उसके सामने कर दो, लेकिन अपनी ओर से किसी प्रकार की हिंसा वृत्ति मत दिखाओ। दूसरे लोग सोचते होंगे कि जैसा साधु करते है, वैसा ही श्रावक भी करते होंगे। किन्तु गृहस्थाश्रम में रहने वाला श्रावक पांच महाव्रतों का नहीं, बारह अणुव्रतों का पालन करता है जिसके अनुसार वह अपने प्रति अपराध करने वाले अपराधी के अपराध का प्रतिकार करने का त्याग नहीं करता है।

इस विचारणा के साथ महाराजा चन्द्रसेन ने सोचा कि जब रानियों से तथा अन्य साक्षियों से प्रमाणित हो गया कि राजभवन में आकर आनन्दसेन ने ही अपराध किया है तो मैं श्रावक होते हुए भी अपराधी के नाते आनन्दसेन को दंड दे सकता हूं। वे भला इतनी साक्षियों को अविश्वसनीय क्यों मानते ? अतः **उन्होने** उस

तरुण के प्रति अपने मन में उठे प्यार के ज्वार को भी दूर धकेल दिया। उन्होंने निश्चय कर लिया कि आनन्दसेन के इस गम्भीर अपराध को देखते हुए प्राणदंड ही दिया जाना चाहिये। तब उन्होंने इस निर्णय को कार्यान्वित करने के लिये कार्यवाही शुरू कर दी।

तत्काल महाराजा ने सेनापति को बुलाकर आज्ञा दी—तुम आज रात को ही सेना की टुकड़ी साथ ले जाकर बाबा ब्रह्मानन्द के आश्रम को घेर लो और उनके पुत्र आनन्दसेन को पकड़ लो जिसे मैंने प्राणदण्ड देने का निर्णय लिया है। महाराजा की आज्ञा से सूर्योदय होने से पहले ही बाबा ब्रह्मानन्द का आश्रम घेर लिया गया। तब सेना का मुख्य अधिकारी बाबा के पास पहुंचा और बोला—महाराजा की आज्ञा है कि आप अपने पुत्र आनन्दसेन को हमें सौप दो, क्योंकि वह अपराधी है—राजद्रोही और देशद्रोही है। हम उसे प्राणदण्ड देंगे। बाबा ने अपने ध्यानयोग से आसन्न संकट को समझ लिया और तदनुसार अपना उत्तर देने लगे।

बाबा ब्रह्मानन्द ने सेना के मुख्य अधिकारी को अपना उग्र रोष जताते हुए कहा कि आप मुझे क्या कह रहे है—इसका भी आपको भान है? आप मुझसे मेरा पुत्र मांग रहे हो सो ऐसा कहते हुए क्या आपको शर्म नहीं आती? मैं जन्मजात ब्रह्मचारी हूं और क्या ब्रह्मचारी के भी कोई सन्तान होती है? फिर कोई भी मेरा पुत्र कैसे हो सकता है? ब्रह्मचारी के स्त्री घर-बार आदि कुछ भी तो नहीं होता। आपको एक संन्यासी के सामने सोच-समझ कर बोलना चाहिये।

संन्यासी की डांट सुनकर सेना का वह अधिकारी स्तब्ध रह गया। बात बाबाजी की सही थी। अब आगे बाबाजी से तर्क वितर्क करने में उसे कोई सार नहीं दिखाई दिया। इस कारण उसने अपने सिपाहियों को आदेश दिया कि वे खुद ही आश्रम का चप्पा-चप्पा छान मारें और जहां भी वह आनन्दसेन दिखाई दे उसे घर पकड़ें। अपने अधिकारी की आज्ञा पाकर वे सिपाही निःशंक होकर बाबाजी के आश्रम में प्रवेश कर गये। सिपाहियो ने सारे आश्रम को छान मारा लेकिन वहां तो आनन्दसेन क्या, न तो कोई प्राणी मिला, न कोई सम्पत्ति ही। निराश होकर अधिकारी ने

आश्रम से उन सैनिको को हटा लिया तथा चारों तरफ दूर-दूर तक आनन्दसेन की खोज में उनको रवाना कर दिया। किन्तु आनन्दसेन का दूर तक भी कही पता नहीं चला।

सेना के उस मुख्याधिकारी ने तब यह सूचना महाराजा कोदी—राजन्, उस आश्रम मे तो हमें आनन्दसेन भी नहीं मिला, किन्तु कोई आपत्तिजनक सामग्री भी नही मिली। आनन्दसेन आश्रम में रहता है—यह बात आपको किसने बताई थी, ताकि उससे पूछताछ की जाय। महाराजा ने कहा कि यह बात तो महारानियों ने ही कही है। तब वह सैनिक अधिकारी बोला—महाराज, आप ही विचार करे कि आश्रम और पहलवान का भला आपस में क्या सम्बन्ध हो सकता है? मैने सैनिकों को चारों तरफ दूर–दूर तक खोजने के लिये भी भेजा किन्तु कही भी आनन्दसेन का कोई पता नही लगा। महाराज ने सोचते-सोचते हुए फिर भी कहा—पता लगाओ कि आखिर वह राजभवन मे घुस कैसे गया और उड़ कर फिर चला कहां गया? मन मे सोचते रहे कि यह कही किसी व्यन्तर देव–देवी की करामात तो नही है। आखिर उन्होने उस मामले को वहीं समाप्त कर देना उचित समझा और उस सेना-धिकारी को बिना कोई नया आदेश दिये ही वापिस भेज दिया। उन्होंने जाकर रानियों को आश्वासन दे दिया कि आश्रम मे पहलवान नही मिला है और उसकी सब जगह भी खोज करा ली गई है। हो सकता है कि यह उत्पात आनन्दसेन का रूप बनाकर किसी देव–देवी ने किया हो अतः घबराने की कोई बात नही है। पहलवान की खोज जारी है सो जब भी और जहां भी वह मिलेगा, उसे खत्म करवा दिया जायगा। यह उत्तर सुनकर वे रानियां सन्तुष्ट हो गई कि अब वह बच नही सकेगा।

वे ग्यारह रानियां हर्ष मनाने लगीं कि अब उनके खतरे के दूर होने में कोई सन्देह नही रह गया है। न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी। वह तरुण इस संसार में नही रहेगा तो कभी भी उनके षड्यन्त्र का भंडाफोड़ नही होगा। इसके साथ ही कभी भी विश्व-सुन्दरी का सम्मान नहीं होगा तो उनके प्रति चल रहा महाराजा का सम्मान और सद्व्यवहार बना रहेगा। अपने आपको सभी

प्रकार से निष्कंटक समझ कर वे रानियां अपने आपको सौभाग्य-शालिनी मान रही थी ।

सत्य को बार–बार अपने कपटपूर्ण प्रपंचों से ढकते रहो, किन्तु एक दिन ऐसा अवश्य आता है जब असत्य का अन्धेरा मिट जाता है और सत्य का प्रकाश चारों ओर फैल जाता है ।

❀ ❀ ❀

: १४ :

अपने ध्यान योग से बाबा ब्रह्मानन्द ने पहले ही देख लिया था कि अभी आनन्दसेन का सार्वजनिक रूप से अपने आपको प्रकट करने का समय नही आया है । इसी कारण उन्होंने उसे मल्लयुद्ध प्रतियोगिता मे भाग न लेने की सलाह दी थी किन्तु आनन्दसेन जी तरुणाई की हठ को देखते हुए उन्होने अनुमति अवश्य दे दी, पर उसके भविष्य के सम्बन्ध मे वे पूर्ण सतर्क भी हो गये थे । उन्हे आशका थी कि महोत्सव समाप्त होने के बाद दोनो भाई–वहिनो के लिये कोई खतरा पैदा हो सकता है । उन्हे तथ्य भी ज्ञात हो गया था कि जन समूह को आनन्दसेन का किसी प्रकार का अन्य परिचय तो हुआ नही था, केवल यही पता चला था कि वह बावा ब्रह्मानन्द के आश्रम से आया है । अत: कोई खतरा आया तो उन्होने सोच लिया था कि वह उनके आश्रम के ही माध्यम से आयगा । इस दृष्टि से किसी प्रकार का खतरा आने के पहिले ही उन्होने दोनो भाई–वहिनों की जीवन रक्षा की योजना बना ली तथा यथा समय उसे कार्यान्वित भी कर दी । यह उनके पूर्व ज्ञान तथा दूरदर्शिता के कारण ही सम्भव हो सका था ।

अर्ध रात्रि के बाद पहले प्रहर मे अपने पालक पिता वावा ब्रह्मानन्द की आज्ञा पाकर आनन्दसेन और चम्पकमाला तीव्रगामी अश्व पर आरोहण करके पूर्व दिशा की ओर प्रस्थान कर गये । रात्रि के शेष भाग मे वे वराबर आगे बढ़ते रहे और सूर्योदय के समय तक उन्होने महाराजा चन्द्रसेन के राज्य की सीमा को पार कर ली । तव वे अन्य राज्य की सीमा में प्रविष्ठ हो गये । प्राचीन काल मे एक राज्य की सीमा समाप्त होने पर सीमा सूचक पत्थर लगाये जाते थे, जिन्हे देखकर ही आनन्दसेन निश्चय कर सका कि अव वे दूसरे राज्य की सीमा में है और अव चम्पानगरी के राज्य का कोई भी संकट उनका वाल भी वांका नही कर सकता है ।

आनन्दसेन ने अपनी वहिन चम्पकमाला को ढाढस वंधाया— वहिन, तुम किसी प्रकार से कोई चिन्ता अथवा भय को अपने मन मे स्थान मत देना । मैं तुम्हारे साथ में हूं और अपने गुरु ने जो मंत्र

हमें दिया है उसे हम बराबर जपते रहें क्योकि वह मंत्र इतना प्रभाव-
शाली है कि हर ठिकाने वह हमारी रक्षा करेगा । बाबा ने उन्हें
साधना का अमृत पिलाना शुरू कर दिया था, अतः वे दोनो घोड़ों
पर से उतरे और एक स्वच्छ स्थान देखकर दोनो ने साधना स्वरूप
ध्यान किया तथा वे महामंत्र को निष्ठापूर्वक जपते रहे । आत्मा को
उसकी खुराक देने से आत्मबल बढता है और आत्मबल ही वस्तुतः
जीवन का प्रधान सम्बल होता है ।

जैसे शरीर को भूख लगती है तो सब काम छोडकर पहले
उसको उसकी खुराक देनी पड़ती है और जो समझता है, वह महसूस
करता है कि आत्मा की भूख उससे भी अधिक प्रबल होती है । एक
साधक नियमित समय पर अथवा जब भी आत्मा को भूख लगती है
सब काम और विचार छोड़कर आत्म-भाव मे तल्लीन बन जाता है
आनन्दसेन और चम्पकमाला भी ध्यानस्थ होकर तथा महामंत्र का
जाप करते हुए आत्म भाव में तल्लीन हो गये ।

साधना से सानन्द निवृत्त होकर वे दोनों नित्यकर्म से निवृत्त
हुए तथा शरीर की भूख मिटाने के साधन की इधर-उधर खोज
करने लगे । पास मे उन्हे फलों के वृक्ष तथा शुद्ध जल का झरना
मिल गया । आनन्दसेन ने आवश्यक फल तोडे, दोनो भाई बहिनों ने
खाये, झरने का शीतल जल पिया और तृप्त हो गये । बाबा ने
उन्हें सिखाया था कि भोजन से पहले भावना भानी चाहिये तथा
प्रतीक्षा करनी चाहिये कि किसी महात्मा को अपने हाथ से भिक्षा
दें । तदनुसार उन्होने उस वन प्रान्तर मे भी फल खाने से पहले
भावना भाई और प्रतीक्षा की किन्तु वहां कौन महात्मा आते ?

वहां कुछ समय तक विश्राम कर लेने पर दोनो भाई बहिन
आगे बढ़ने के लिये तैयार हो गये । घोड़े पर चढकर वे आगे बढ़ने
लगे । उन्होंने विचार किया कि जिस नये राज्य की सीमा में वे
प्रविष्ठ हो गये है, उसी राज्य की राजधानी की ओर उन्हें चलना
चाहिये । वे आगे से आगे बढते रहे । तब उन्हें दूर से भव्य भवनों
की पंक्तियां दिखाई देने लगीं, जिससे उन्होंने अनुमान लगाया कि वे
राजधानी तक शीघ्र ही पहुंचने वाले है । किन्तु उन्हे इस बात का
आश्चर्य होने लगा कि मार्ग पर आने जाने वाला एक भी व्यक्ति उन्हें
नहीं मिला । आगे बढे तो नगर का परकोटा दिखाई दिया । मुख्य

द्वार तक पहुंचे तो उन्हें अधिक आश्चर्य हुआ कि मुख्य द्वार पर भी कोई पहरेदार नही था । नगर मे प्रविष्ठ हो गये तो वाजार और दुकाने दिखाई दे रही थी लेकिन मनुष्य का नामोनिशान तक कहीं नही था । तव उन्होने अनुमान लगाया कि यह राजधानी वीरान हो गई लगती है । लेकिन ऐसी सुन्दर राजधानी वीरान कैसे हो गई— इस रहस्य का तो पता लगाना ही चाहिये—उन्होने सोचा । इस रहस्य को विदित किये बिना सहसा आगे नही वढ़ जाना चाहिये ।

आनन्दसेन ने कहा—हो सकता है यही वाजार वीरान हो गया हो इसलिये नगर के अन्य हिस्सों में भी घूम कर स्थिति का ज्ञान करले । सम्भव है दूसरे हिस्सों मे मनुष्य मिल जाय । यह कहकर वे आगे बढने लगे तो चम्पकमाला ने सावधानी दिखाई— भैया, यह आश्चर्यजनक है कि यह राजधानी मनुष्य विहीन कैसे वन गई ? कोई न कोई गम्भीर रहस्य अवश्य होना चाहिये । हम पूरी तरह से सावधान होकर चले । तव दोनों विशेष रूप से सावधान हो गये तथा चौकन्ने होकर आगे वढने लगे । आगे की स्थिति को देखते हुए चम्पकमाला ने फिर याद दिलाई कि अव आगे सोच समझ कर ही वढ़ना चाहिये क्योकि उनके पास किसी प्रकार का कोई शस्त्र भी नही है । आनन्दसेन ने उसे आश्वस्त करते हुए कहा—बहिन, तुम व्यर्थ ही भयभीत हो रही हो । मेरे पास शस्त्र नहीं है तो क्या हुआ ? मेरे पास अपूर्व आत्म-वल एव शरीर-वल जो है । मैने अच्छे-अच्छे पहलवानो को अभी कल ही तो पछाडा है। क्या तुम भूल गई हो ?

तव वे दोनों भाई वहिन छोटी-छोटी गलियों और सकडे मार्गो पर होते हुए बहुत दूर तक निकल गये फिर भी उन्हे कही भी कोई पुरुष, स्त्री या वच्चा नही मिला । उसके वाद वे दोनो यह सोचकर राजभवन की तरफ वढे कि वहां पर तो कोई न कोई अवश्य मिलेगा । किन्तु वहां पर भी न उन्हें कोई रक्षक मिला, न कोई सिपाही या दास दासी । समाधान पाने की जिज्ञासा से वे राजभवन के भीतरी प्रवेश द्वार की तरफ आगे वढने लगे । उनके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा जव उन्हे उस प्रवेश द्वार पर एक विकराल स्वरूप वाला व्यक्ति वैठा हुआ दिखाई पडा । उसे देखकर चम्पकमाला ने आनन्दसेन को रोका और कहा—भैया, सभल कर

आगे बढ़ो । ऐसा लगता है कि यह नगर किन्हीं विकट परिस्थितियों में से होकर गुजरा है इसीलिये कहीं भी कोई व्यक्ति नही बचा है। इस सर्वविनाश की जड़ कहीं यह विकराल व्यक्ति ही न हो। आनन्दसेन बोला—अरे कोई खास बात नही है । इसकी विकरालता असली नहीं, नकली मालूम होती है । फिर भी हम विशेष रूप से सावधान हो जाते हैं ।

आसन्दसेन यह कहकर घोड़े से नीचे उतर पड़ा और उसने सावधानी से चम्पकमाला को भी नीचे उतार ली । फिर घोड़े को वहीं पर बांध कर वे दोनों पैदल-पैदल हो आगे बढे । बढने से पहले चम्पकमाला ने अपने भाई को रोका और कहा कि थोड़ी देर के लिये महामन्त्र का जाप करलो ताकि हमें हमारे इस कार्य में सफलता प्राप्त हो । दोनों भाई बहिनों ने तब पहले णवकार मन्त्र का पाठ किया ।

मानसिक एवं शारीरिक शक्ति से सम्पन्न आनन्दसेन सुन्दर तरुण था । पूर्व जन्म के पुण्य कार्यों का उदय भी साथ में हुआ सो वह जन्म से माता के स्तनपान और लाड़ प्यार से वञ्चित रहा । यह तो नही हुआ सो नही सही, लेकिन उन दोनों का लालन पालन भी राजकीय सुख-सुविधा के अनुसार नहीं हो सका । जितनी सुविधा से वे बाबा ब्रह्मानन्द के आश्रम में रह रहे थे, वह सुविधा भी आकस्मिक रीति से छूट गई । अब भी पाप कर्मों का उदय ही प्रमुख चल रहा था कि वे इस नये संकट से घिर गये थे । किन्तु उनकी पुण्यशालिता यह थी कि मृत्यु मुख में जाकर भी वे बच गये और उन्हे धर्म का सुखद बोध मिला । वह पुण्यशालिता ही उनकी संरक्षक बनी हुई थी जो जब भी वे कष्टो से घिर जाते, उनकी रक्षा करती थी ।

चलते हुये चम्पकमाला ने अपने भाई को रोका कि वह आगे नहीं बढ़े क्योंकि विकरालता लिये हुए वह व्यक्ति सामान्य मनुष्य नही बल्कि राक्षस जैसा दिखाई दे रहा है जो अतिक्रूर हो सकता है । आनन्दसेन विशेष रूप से निर्भय था । उसने निश्चिन्त होकर कहा—बहिन, तुम चिन्ता न करो । बाबा ने मेरे मन में से भय को पूरी तरह से निकाल दिया है तथा हाथी पहलवान ने मुझे अपूर्व

शरीर-शक्ति से सम्पन्न बना दिया है। इससे ऊपर महामन्त्र सर्वत्र सफल होता है। फिर आनन्दसेन ने चम्पकमाला को वही रोक दिया और वह अकेला ही आगे बढ़ने लगा।

आनन्दसेन तो निर्भीक तरुण था। वह चलकर उस विकराल आकृति के सामने पहुंचा और बोला—भाई, तुम कौन हो और यहां किस प्रयोजन से बैठे हुए हो? यह पूछकर वह सोच रहा था कि उसे कुछ न कुछ उत्तर मिलेगा। किन्तु उस राक्षस ने आनन्दसेन पर आकस्मिक रीति से प्रहार कर दिया। प्रहार प्रबल था अत: वह यकायक मूर्छित हो गया। चम्पकमाला ने सोचा कि आवेश में आकर भैया भान भूल गया है तो मै लगातार महामन्त्र का जाप करती रहू। इस महामन्त्र के प्रभाव से हम सकट से अवश्य ही शीघ्र निकल जायेगे। बाबा का नाम स्मरण भी करने लगी। जाप की ही मुद्रा में चम्पकमाला ने आगे बढ़कर अपने भाई के मस्तक पर हाथ फिराया और आश्चर्य के साथ देखा कि आनन्दसेन सजग होकर खड़ा हो गया है। महामन्त्र के जाप से और बाबा के नाम स्मरण का प्रभाव प्रमाणित हो गया था। दोनों प्रसन्न हुए और तब दोनों साथ-साथ महामन्त्र का जाप और बाबा का नाम स्मरण जोर-जोर से करने लगे।

आनन्दसेन पूर्ण सचेतन हो गया। महामन्त्र के जाप और बाबा के नाम स्मरण से उसमें नया ही जोश जाग गया। उसे बाबा का यह कथन भी याद आया कि क्रूर व्यक्ति के वचन या व्यवहार पर किसी विवेकशील पुरुष को क्रोध नही करना चाहिये। कारण, क्रोध के आवेश मे उसका विवेक निष्क्रिय हो जाता है। हमेशा क्रोधी पर क्षमाशील की ही विजय होती है। उसने उस राक्षस पर कोई क्रोध नही किया बल्कि भोलापन जताते हुए कहा—अरे मामा तुमने यह क्या कर दिया? 'मामा' शब्द सुनकर वह कुछ शान्त हुआ। धीरे-धीरे उस सम्बोधन ने ऐसा जादू किया कि वह प्रसन्न हो उठा। जब वह प्रसन्न होकर प्रेम जताने लगा तो आनन्दसेन ने कहा—हम तो आपको मामाजी समझ रहे है और आपने भाणेज के साथ ऐसा बर्ताव किया। आनन्दसेन की उस मिष्ट वाणी ने न जाने क्या जादू किया कि वह राक्षस पानी-पानी हो गया और

अपने किये पर पछताने लगा। जैसे उसकी राक्षसी वृत्ति छूट गई और वह मानवता के धरातल पर खड़ा हो गया। वह कहने लगा—यह नगर मेरे कारण ही खाली हो गया है। मैं जब राक्षसी उपद्रव करता तो सभी लोग गुस्सा करते थे, मुझे गालियां निकालते थे और ऐसी ही ओछी हरकतें करते थे। तब मेरा क्रोध बढ जाता था और में भान भूलकर अधिक हिंसक उपद्रव करने लगता था। आखिर वे सब परेशान हो गये और यहां से भाग छूटे। तब से इस नगर में मैं ही अकेला हूं। अगर यहां के निवासी भी तुम्हारी तरह मेरे पर गुस्सा न करते और जरा सा भी स्नेह जताते तो मै उनका गुलाम हो जाता। तुमने प्रेम से मुझे मामा क्या कहा कि मेरा दिल भर आया। समझलो कि मैं तुम्हारा मामा ही हूं और तुम्हारे लिये मैं कुछ भी कर सकता हूं। मैं तो सिर्फ प्रेम का भूखा हूं आज तुमने मुझे आनन्द से भर दिया है।

ऐसे विचित्र परिवर्तन से आनन्दसेन और चम्पकमाला आनन्द विभोर हो गये। उनकी आन्तरिक निष्ठा सुदृढ हो गई कि णवकार महामंत्र एवं बाबा के नाम का अमित प्रभाव है। आनन्दसेन ने हर्षित होते हुए राक्षस से कहा—आपने मुझे जब भाणेज मान ही लिया है तो मै आशा करूं कि आप हम दोनों के साथ पूर्ण स्नेहयुक्त व्यवहार ही करेंगे। राक्षस प्रसन्नता से लोटपोट होते और आनन्दसेन को गले लगाते हुए बोला—मेरे व्यवहार की क्या बात करते हो? देखो, यह पूरा नगर, राज्य और राजभवन मैंने तुम्हें इसी समय बक्शीस कर दिया है और तुम इसके स्वामी हो। आनन्दसेन बोला—मामाजी, इस वीरान नगरी में मैं क्या करूंगा? हंसी का ठहाका लगाते हुए राक्षस मामा ने कहा—तुम किसी बात की फिक्र मत करो। मैं तुमको इस नगरी का राजा बना देता हूं और सारे नगर को फिर से बसा दूंगा।

वाणी वाणी में कितना अन्तर होता है? एक वाणी ऐसी होती है जो दिलों के टुकड़े-टुकड़े कर देती है और एक वाणी ऐसी होती है जो टूटे हुए दिलों को फिर से जोड़ देती है। नगरवासियों की कटु वाणी से राक्षस कुपित हो गया और उन्हे वहां से भाग जाने के लिये मजबूर किया। दूसरी ओर आनन्दसेन की मीठी वाणी ने

राक्षस का हृदय भी पिघल गया और उस पर अपना सम्पूर्ण स्नेह न्यौछावर करने के लिये वह तत्पर हो गया। एक प्रेम भरे शब्द ने सारे उल्टे वातावरण को सुल्टा बना दिया। आनन्दसेन भी अगर कटु वाणी का प्रयोग करता तो सोचिये कि उस वीरान नगर मे उन दोनो की वह राक्षस कैसी दुर्गति बना देता। ईंट का जवाब पत्थर से न देकर शीतलता के साथ दिया जाय तो दोनो तरफ सद्भावना का प्रसार हो जाता है।

बाद मे तो उस राक्षस मामा ने जैसा कहा, वैसा ही करके भी दिखला दिया। वह कोई राजनेता नही था जो आश्वासन तो लम्बा-चौडा देता और करने के नाम पर महत्त्वहीन सा करता। वह राक्षस भले ही था लेकिन दिल का बहुत सीधा सादा था। जो वायदा किया, उसे पूरा करने मे उसने कोई कसर उठा नही रखी। वह राक्षस होते हुए भी देवपुरुष जैसा बन गया।

उस नगर के निवासी वहां से भागकर जहा जहा जाकर बस गये थे, वहा वहां वह राक्षस गया और उन्हे समझाने लगा कि वे फिर से अपने छोडे हुए उस नगर मे आकर बस जाय, क्योकि वहां एक ऐसा दिव्य पुरुष आया है जिसने अपने सद्व्यवहार से मेरा पूरा जीवन ही बदल दिया है। अब मैं न तो उपद्रव करूगा और न ही ऐसी कोई हलचल जिससे आप लोगो को किसी तरह की परेशानी हो। इसके विपरीत मैंने तो सोच लिया है कि जितनी मेरे से आप लोगो की सेवा बन पडेगी, मैं करने के लिये तत्पर रहूंगा। उसने सबको एक खुशी की बात और सुनाई कि मेरे जीवन का रूपान्तरण करने वाले उस दिव्य पुरुष ने आपके नगर और राज्य की व्यवस्था सम्हाल लेने का मुझे वचन दे दिया है जिससे आप लोगो का जीवन सुखी और समृद्ध बन जायगा।

यह उन सभी नगर निवासियो के लिये बड़ा ही सुखद समाचार था कि स्वयं उत्पात मचाने वाला राक्षस ही बदल गया है और उन से वापिस चलने का अनुरोध कर रहा है। उन्हे अपनी जन्मभूमि से बडा प्यार था, अत: वे फिर से अपनी जन्मभूमि में जाकर बस सकेंगे—इससे उनके हृदयों में हर्ष की लहर दौड़ गई। उन्हे इस बात को जानने की भी उत्कट अभिलाषा हुई कि वह दिव्य पुरुष कैसा है

जिसने ऐसे क्रूर राक्षस का हृदय-परिवर्तन कर दिया ? फिर वह दिव्य पुरुष ही उनका राजा बनेगा तो हकीकत मे उसकी राज व्यवस्था भी सुचारू रहेगी । उसके बाद सभी नगर निवासी उस वीरान में पहुंचकर अपने-अपने घर–दुकानो मे बस गये । अब उनके मन मानस में नया उत्साह जागा था, अतः एक ओर तो उन्होंने नगर की नई साज-सज्जा की और दूसरी ओर सबने अपने काम धन्धे मेहनत करके बढ़ा लिये । इस कारण उस नगर की नई रौनक देखते ही बनती थी । उस नगर के शासक के रूप में आनन्दसेन के सिंहासनारोहण का उत्सव बहुत धूमधाम से मनाया गया ।

आनन्दसेन विचार करने लगा - इस संसार की और कर्मों की कैसी विचित्र दशा होती है ? मैं जन्मा तब तो मुझे जीने के भी लाले पड़े हुए थे । मां के वक्ष:स्थल के दूध की एक बूंद तक पीने को नहीं मिली । पूर्व जन्म में जो धर्म कर्म किया था, सत् संगत साधी थी और जो पुण्यवानी कमाई थी उसके फलस्वरूप जीवन की रक्षा हो गई । बाबा ने संरक्षण देकर जीवन का निर्माण किया । और आज यह समय आया है कि मै एक नगर व राज्य का महाराजा भी बन गया हूं जिसके नाते समग्र जनता का माता पिता हो गया हूं। अल्पायु में भी मेरे ऊपर जो उत्तरदायित्व आ गये है, उन्हे मुझे कर्त्तव्य-बोध के साथ निभाने होगे । इस कारण मेरा फर्ज नही है कि मैं मौज मजे करूं या गुलछर्रे उड़ाऊं । मुझे तो अपने जीवन को साधना के बल पर सन्तुलित बनाना है तथा अहिंसा धर्म की पद्धति पर सारे नागरिक जीवन को ढालना है । इसके लिये मुझे कठिन परिश्रम करना होगा ।

इस चिन्तन के साथ उसने राज्य की सुव्यवस्था की रूपरेखा बताई और तदनुसार सारे प्रशासन का ढांचा जमाया । अहिंसा को प्रमुखता देने की दृष्टि में राजाज्ञा के द्वारा सारे राज्य मे शिकार पर उसने प्रतिबन्ध लगा दिया । किसी शिकारी को राज्य मे रहने की भी मनाही करा दी । लोगों से हिंसक कार्य प्रेमपूर्वक छुड़ाये गये तो आपसी भाईचारा बढ़ाने के लिये आपसी विवादो के भी सन्तोषजनक निर्णय किये गये । न्याय का कार्य आनन्दसेन ने अपने ही हाथ में रखा ताकि पारस्परिक वैर-वैमनस्य नागरिको के बीच

न रहे । इन सारे प्रबन्धो का श्रेष्ठ परिणाम निकला । यथा राजा तथा प्रजा की उक्ति सार्थक होने लगी । नागरिकों में भी वैसी ही सद्भावना, सहयोग तथा सौजन्य की झलक दिखाई देने लगी । आनन्दसेन एक अतीव लोकप्रिय शासक हो गया ।

उत्तम भावना भवनाशिनी होती है, क्योंकि वह पाप का नाश करती है । अच्छी भावना के साथ सारा जीवन संवरता और सजता है । आनन्दसेन का आदर्श तो मनुष्यों के प्रति सद्भावना से ऊपर उठकर पशुओं का हितकारी भी हो गया था । इसी कारण तो उसने शिकार पर कठोर प्रतिबन्ध लगा दिया था । किन्तु वह केवल प्रतिबन्ध की आज्ञा प्रसारित करके ही शान्त नही बैठ गया बल्कि उसने राज्य की सीमाओ पर सिपाहियो की ऐसी मजबूत व्यवस्था भी कर दी ताकि उसके राज्य का कोई भी निवासी शिकार नही कर सके और बाहर का कोई शिकार भी उसकी राज्य सीमा मे प्रविष्ट होकर शिकार न कर सके । यह पशुओं के प्रति भी उसकी सहृदयता का प्रमाण था । उसकी अच्छी भावना की सीमा न सिर्फ मनुष्य जाति बल्कि समस्त प्राणियो तक फैल गई थी । उसने सिपाहियों को यह आदेश भी दे रखा था कि अगर कोई शिकारी अपनी राज्य सीमा मे घुस आवे तो उसको पकड़कर सीधे मेरे सामने प्रस्तुत किया जाय । आनन्दसेन की भावना यह थी कि बजाय दण्ड देने के उस शिकारी का अहिंसा-पालन की दृष्टि से हृदय परिवर्तित हो जाय तो वैसा प्रयास उसे स्वयं को करना चाहिये । इस प्रकार की उत्तम भावना उस राज्य में राजा से लेकर प्रजा तक प्रसारित हो रही थी ।

महाराजा चन्द्रसेन भी चम्पानगरी का राज्य चला रहे थे लेकिन विश्वसुन्दरी के उस प्रसव के बाद खिन्नता उनके मन से मिटी ही नहीं । वे सोचते रहते थे कि उन्होंने अपने मन में प्रकाश के कैसे-कैसे दीपक जलाये थे और कितनी उत्कट आशा रखी थी कि विश्वसुन्दरी की कौख से अद्वितीय गुण सम्पन्न राजकुमार जन्म लेगा जो उसके राज्य का उत्तराधिकारी बन कर जनता की निष्ठापूर्वक सेवा करेगा और उसका यश बढ़ायेगा ? क्या सोचा था और हो क्या गया ? क्या विश्वसुन्दरी जैसी भव्य महिला की कौख से

कुतिया के पिल्लों को ही जन्म लेना था ? यह मेरी कैसी कर्मदशा प्रकट हुई ? मन में रह-रह कर यही विचार उठता कि उन्होंने पूर्व जन्म में कुछ क्रूर कर्म किये होंगे जिनके परिणाम स्वरूप यह सब घटित हो रहा है । इसलिये अब प्राणीरक्षा और जीवदया के कुछ ऐसे कार्य करें ताकि आगामी जन्म में इन कार्यो के पुण्य काम आवे । इसलिये उन्होंने अपने राज्य में क्रूर हिंसक कार्यों को रोकने तथा शिकार न करने के आदेश प्रसारित करवा दिये । महाराजा स्वयं शिकारी वेश में राज्य सीमाओं पर अपने इक्के दुक्के साथियों के साथ घूमते ताकि अवैध शिकार करने वालों को खुद पकड़ सकें। इतनी कठोरता के साथ वे शिकार बन्दी का पालन करवाने लगे।

एक बार उन्हें सन्देश मिला कि सीमा पर कोई शिकारी चोरी छिपे शिकार कर रहे हैं तथा एक दस्यु दल राज्य की गायों का टोला लेकर भाग गया है । इस मामले में महाराजा जागरूक थे अतः हमेशा की तरह एक-दो साथियों को लेकर उनका पीछा करने के लिये अश्वारोही लेकर सीमा की तरफ चले गये । वहां पीछा करते-करते वे अपने साथियों से अलग हो गये और अकेले ही बहुत दूर निकल गये । वे अपने राज्य की सीमा से बाहर आनन्दसेन के राज्य की सीमा में पहुंच गये थे ।

शिकारी की पोशाक में महाराजा चन्द्रसेन एकाकी होकर आनन्दनगर की सीमा में पहुंच गये । शिकारी की पोशाक होने के कारण आनन्दनगर के सिपाहियों ने तुरन्त उन्हें धर पकड़ा और जैसी कि उन्हें आज्ञा दी हुई थी, वे महाराजा चन्द्रसेन को पकड़ कर अपने महाराजा आनन्दसेन के समक्ष प्रस्तुत करने के लिये ले चले।

किसी भी व्यक्ति के वर्तमान जीवन में जब घटना चक्र विविध प्रकार के मोड़ लेता है और सम-विषम परिस्थितियां झेलनी पड़ती हैं, तब उन्ही दृश्यों में पूर्वार्जित कर्मों की झलकें दिखाई देती हैं। महाराजा चन्द्रसेन के जीवन का घटनाक्रम भी ऐसी ही विचित्रता के साथ चल रहा था । पुत्र नहीं जन्मा तो एक के बाद एक विवाह किये, तरह-तरह की कामनाएं की और उन्होंने पटरानी से सामायिक साधना की प्रेरणा ली । जन भावना से पसीज कर देवता ने

आह्वान किया—जैसा उसने बताया, यथाविधि वे सब कार्य उन्होंने पूरे किये। मणि भी मिली तो विश्वसुन्दरी से विवाह भी हो गया और हकीकत में उनकी चाहना–कल्पना से भी अधिक दिव्य सन्तानें उन्हें मिली, किन्तु वे अपने आपको निःसन्तान ही मानकर खिन्न होते रहे। हकीकत पर भी पर्दा डाल देता है यह कर्मों का पुंज और जब समय आता है, यही पर्दा उठा भी देता है।

❀ ❀ ❀

कर्मों की ही विडम्बना देखिये कि पिता–पुत्र आमने सामने खड़े थे, किन्तु कोई भी अपने सम्बन्ध को नही जान रहा था। पुत्र शासक और न्यायकर्त्ता के रूप में सिंहासन पर बैठा हुआ था तो पिता शासक होते हुए भी उस समय पुत्र के दरबार में एक अपराधी की हैसियत से खड़े हुए थे। तब भी चन्द्रसेन के दिल में यह दुःख पल रहा था कि सब कुछ करने के उपरान्त भी वे अभागे ही रहे, जो पुत्र और अपने राज्य का अपने जैसा उत्तराधिकारी प्राप्त नहीं कर सके। आनन्दसेन के दिल के भी किसी कोने में यह व्यथा समाई हुई थी कि वह भले ही महाराजा हैं किन्तु अपने माता-पिता के प्यार से वह वंचित रहा है। दोनों के दिलों को अपना–अपना दुःख साल रहा था जब कि दोनों के दिलों के दुःखों के सुखद समाधान रूप दोनों आमने सामने थे। वास्तविकता सामने थी किन्तु दोनों वास्तविकता से अनभिज्ञ थे। इसे ही कहते हैं कर्मों की विडम्बना।

आनन्दनगर के महाराजा आनन्दसेन ने प्रेम एवं सम्मानभरी दृष्टि से अपने सामने खडे अपराधी को देखा तो उसने अनुभव किया कि इतना सदाशयी दिखाई देने वाला व्यक्ति न तो शिकारी हो सकता है और न ही अपराधी। इसमें कुछ न कुछ रहस्य अवश्य है। सामने दिखाई दे रहे प्रभावशाली व्यक्ति को वह अपराधी कैसे मान लेता? यह भी वह नही सोच सका कि उन्हें वह कोई उपदेशात्मक बात कहे, क्योंकि उसे वह गुरु गम्भीर एवं साधक व्यक्तित्व दिखाई दे रहा था। उसके हृदय में तो उन्हें देखकर एक नये ही चमत्कार ने जन्म लिया। अनायास ही वह सामने खड़े व्यक्ति के प्रति विनयावनत हो उठा। उसे ऐसी आनन्दानुभूति होने लगी कि जैसे वह वहां से उठकर उनके चरणों में गिर पड़े। उसके मन में उग्र अभिलाषा जगी कि वे उसे अपनी छाती से लगा लें और सम्पूर्ण हृदय से उसे प्यार करें। उसका अन्तःकरण इतना आह्लादित होने लगा कि वह सिंहासन पर वैठा-वैठा भी वुरी तरह से अस्थिर हो उठा। उसे समझ में नहीं आ रहा था कि ऐसा क्यों हो रहा है और वह इस समय में क्या करे?

हृदय से हृदय का सम्बन्ध होता है तो हृदय से हृदय मिल जाता है और हृदयधारी स्वयं को कुछ भी समझ में नहीं आता। पुत्र के हृदय में जिस प्रकार आनन्द हिलोरें लेने लगा, पिता के हृदय में उन हिलोरे का वेग और भी ज्यादा तीव्र था। चन्द्रसेन मुग्ध भाव से सिंहासन पर बैठे हुए व्यक्ति को देख रहे थे और सम्पूर्ण मन से भाव विभोर हो रहे थे। उसे देखते-देखते उनकी दृष्टि इतनी केन्द्रीभूत हो गई कि उन्हें आनन्दसेन की भव्य आकृति के सिवाय कुछ भी दिखाई नही दे रहा था। उनका दिल फड़कने लगा कि वे सब कुछ भूलकर उसे अपनी छाती से चिपका ले, गले लगाले और अपने प्यार भरे आंसुओ से उसे नहला दे। प्रेम नदी की बाढ की तरह उमड़ रहा था, किन्तु वे समझ नहीं पा रहे थे कि इस तरुण को देखते ही उनके मन में ऐसा क्यों हो रहा है ?

पिता-पुत्र के हृदय परस्पर मिल लिये किन्तु उनके शरीर स्तब्ध बने अपने-अपने स्थान पर ही थे। आखिर आनन्दसेन शासक था, शान्ति भंग उसने ही की और कहा—आपके भव्य व्यक्तित्व को देखकर मैं यह नही समझ पा रहा हूं कि आप अपराधी हो सकते है। शिकारी भी आप नहीं हो सकते क्योकि आपकी आकृति पर असीम दया झलक रही है। मेरी उलझन यही है कि आप शिकारी के वेश में कैसे हैं ? और उसने मन ही मन सोचा कि सबसे बडी उलझन तो यह है कि इनके प्रति मेरा समग्र प्रेम क्यों आकर्षित हो रहा है ? उसे ध्यान आया कि यह तो वही व्यक्तित्व दिखाई दे रहा है जिनके हाथो वह मल्लयुद्ध में विजय प्राप्त करने के बाद सम्मान पा चुका है। अचानक उसकी चेतना लौटी कि तब तो ये चम्पानगरी के महाराजा ही है। वह अपने स्थान से उठ खड़ा हुआ और उसने अनुरोध किया कि वे उसके पास लगे समकक्ष आसन पर विराजें।

चन्द्रसेन बोले—आप शासक है और मैं एक अपराधी के रूप में आपके सामने हूं, इसलिये एक बार मेरा स्पष्टीकरण तो सुन लीजिये। आपने ठीक ही अनुमान लगाया है कि मैं शिकारी नहीं हूं। अपराध है तो यही कि मैं अपने साथियों से अलग होकर भटक गया। और अनजाने में आपके राज्य की सीमा में चला आया। इसका दण्ड दिया जा सकता है।

चन्द्रसेन तो समता के साधक थे अतः अपने अपराध को स्वीकार कर लेने में उन्हें कोई हिचक नहीं हुई। उन्होंने कहा—मैं शिकारी के वेश में भी एक कारण से हूं। मेरे राज्य में मैंने शिकार पर प्रतिबन्ध लगा रखा है इसलिए अवैध रूप से शिकार करने वालों को पकड़ने के लिये मैं स्वयं शिकारी के वेश में घूमता हूं ताकि उनका अपराध मेरे सामने स्पष्ट हो जाय और मैं उसके हृदय को बदल परिवर्तित करके सच्चा अहिंसक बना सकूं। वे बोल ही रहे थे तब तक तो आनन्दसेन ने वहां पहुंचकर उनका स्वागत किया और निवेदन किया—आप तो चम्पानगरी के महाराजा दिखाई देते हैं। आप प्रौढ़ हैं और मेरे पूज्य हैं। आप पधारकर सिंहासन पर बिराजिये। आनन्दसेन उन्हें सम्मानपूर्वक तब वहां तक ले गया। स्वयं मैंने भी अपने राज्य में शिकार पर प्रतिबन्ध लगा रखा है तथा शिकारी वेश में मिलने वालों को पकड़ कर मेरे सामने प्रस्तुत करने के आदेश के पीछे आप जैसी ही मेरी भावना है।

आनन्दसेन के ऐसे शालीन व्यवहार से चन्द्रसेन हर्ष विभोर हो गये कि इतनी सी आयु में भी यह तरुण कितना विवेकपूर्ण और अहिंसक शासक है। वे सोचने लगे कि यह तो हर बात में मेरे ही समान लग रहा है—आकृति से भी, व्यवहार से भी और ज्ञान-विवेक से भी। इसके पास बैठकर जैसे मेरे तन-मन में शीतलता और शान्ति व्याप्त हो गई है। इस तरुण के जीवन में सद्गुणों का विकास जिस परिपक्व रूप में दिखाई दे रहा है, उससे तो यहीं सद्गुणी जन जीवन अपने माता-पिता के खून से भी मिला है। तभी तो जीवन का इतना सुन्दर स्वरूप दिखाई दे रहा है। सोच-सोच कर उनका हृदय अपूर्व रूप से प्रमुदित होने लगा। प्रमोद भाव से ही वे बोले—ठीक है, मैं चम्पानगरी का शासक हूं तो आप भी आनन्द नगर के शासक हैं और इतनी अल्पायु में इतने सद्गुणी और सुयोग्य शासक है—यह निश्चय ही आपके पूर्वार्जित कर्मों के पुण्य का उदय है। एक मैं हूं, शासक भी हूं किन्तु आप नहीं जानते कि मैं कितनी बड़ी मानसिक पीड़ा को झेलकर चल रहा हूं, किन्तु उसे भी मैं अपने पूर्वार्जित कर्मों का ही फल मानता हूं। अन्तर यही है कि आपके शुभ फल का उदय है और मेरे अशुभ फल का।

चन्द्रसेन कह रहे थे अपने मन की व्यथा की बात, किन्तु ानन्दसेन समझ नहीं पाया कि चम्पानगरी के इस प्रभावशाली ाहाराजा को भला ऐसी क्या मानसिक पीड़ा हो सकती है ? सभी ारह से सुखी राज्य है और वे एक सुखी महाराजा ही होने चाहिये। ाकिन सुख दुःख की तरंगें इस तरह चलती हैं जो महसूस की जा ाकती है लेकिन उन्हें जान पाना कई बार कठिन सा दिखाई देता ा। आनन्दसेन का हृदय सुख की तरंग से तरंगित हो रहा था ाकिन कारण ज्ञात नही था। हर्षावेग से उसने अपनी बहिन ाम्पकमाला को वहां बुलाया और बताया—आप चम्पानगरी के ाहाराजा हैं। भाई के बाद बहिन को देखकर तो चन्द्रसेन का हृदय ाानन्दाभिभूत हो उठा। उन्हें लगने लगा—ऐसे सुन्दर और तेजस्वी ारुण और तरुणी भला उनके पुत्र और पुत्री क्यो न हुए ?

आनन्दसेन और चम्पकमाला ने महाराजा चन्द्रसेन का ऐसा ाावभरा स्वागत किया कि स्नेहपूर्ण नया ही वातावरण बन गया।

ाहते हुए कितने दिन बीत गये। जब भी चन्द्रसेन जाने का निश्चय ारते, उनका मन उन्हे रोक देता और वे रुक जाते। इस तरह वहां ाहते-रहते छः माह व्यतीत हो गये।

एक दिन चन्द्रसेन ने आनन्दसेन से पूछा—यह कौनसा ाहीना चल रहा है। आनन्दसेन ने महीना बताया तो उन्होने ाुंसते हुए कहा—अरे, मुझे तो यहां रहते-रहते छः माह व्यतीत हो ाये हैं और पता ही नही चला। अब तो मुझे प्रस्थान कर देना ााहिये। यहा अकेला ही मैं इतना रह गया हू—पता नही राज्य के ाया हालचाल चल रहे होगे।

इधर महाराजा चन्द्रसेन आनन्दनगर मे इतने लम्बे अर्से तक रुक गये और उधर चम्पानगरी में तहलका मचा हुआ था कि वीहड़ वन में महाराजा अकेले पड़ गये थे और अब तक भी नहीं लौटे सो न जाने उनके साथ क्या घटित हुआ होगा ? राज परिवार, दीवान, अधिकारी और नागरिक—सभी चिन्तातुर बने हुए थे। वहां किस को यह समाचार मिल सकता था कि महाराजा आनन्दपुर में रूके हुए हैं। चम्पानगरी की ऐसी ही परिस्थिति का विचार

करते हुए अन्ततोगत्वा महाराजा ने अपने दिल को कड़ा को
आनन्दनगर से प्रस्थान करने का निश्चय किया।

उनके इस निश्चय को सुनकर दोनों भाई बहिन भाव-विह्व
हो उठे और मनुहार करने लगे कि वे कुछ दिन तो और बिराजें,
उनका मन मान ही नहीं रहा था कि महाराजा उनसे कभी भी
विलग हों। उनके अन्त.करण की सच्ची अभिलाषा तो यह बन रही
थी कि महाराजा सदा-सदा के लिये दोनो भाई-बहिन के साथ ही
रहें। सम्बन्ध का बाह्यरूप भले ही प्रकट न हुआ हो किन्तु आन्तरि
स्वरूप तो दोनों के मन—मानस पर सम्पूर्णतया छा ही गया था।
उन्होंने बहुत-बहुत अनुरोध किया किन्तु यह समझने को विवश हु
कि राज्य व्यवस्था की दृष्टि से महाराजा को जाना ही पड़ेगा
तब उन्होने दु:खित मन से चन्द्रसेन को विदाई दी।

महाराजा चन्द्रसेन को आनन्दसागर से न सिर्फ महारा
आनन्दसेन और उसकी बहिन चम्पकमाला ने, बल्कि समग्र जनता
भाव एवं सम्मानपूर्ण विदाई दी। विवशतावश चन्द्रसेन आगे
रहे थे लेकिन बड़े शिथिल चरणों से—जैसे कि उनका दिल
उनसे छूट कर आनन्दसागर मे ही रह गया हो। वे विचारने लगे कि
मुर्दा होकर चल रहा हूं। मेरी आत्मा और मेरे प्राण तो आनन्द
और चम्पकमाला से ही जुड़े हुए रह गये है। वियोग की पीड़ा
झेलते-झेलते वे चम्पानगरी पहुंचे।

महाराजा चन्द्रसेन अपनी राजधानी मे पहुंचे और कि
नागरिकों ने उनके दर्शन किये तो उनके आगमन का शुभ समाचा
सारी नगरी में तुरन्त ही फैल गया। फिर तो सारा नगर उन
स्वागत करने के लिये उमड़ पड़ा। सबके हर्ष का पार नहीं था
उनके प्यारे शासक सकुशल लौट आये है। सभी महाराजा के
गिर्द इकट्ठे हो गये और पूछने लगे कि इतने दिनों तक कहां
विराजना हो गया? क्या किन्हीं संकटों ने तो महाराजा को
घेर लिया था? तब महाराजा ने जनसमूह को सम्बोधित क
हुए बताया—मैं शिकारियों और दस्युओं का पीछा करते हुए बा
पड़ गया तथा निकट के राज्य आनन्दनगर की राजधानी में

। वहां के महाराजा इतने सौम्य, सुयोग्य और शिष्टाचारी हैं
क्या कहूं ? उनका नाम आनन्दसेन और उनकी वहिन का नाम
कमाला है। दोनों ने मुझे इतना स्नेह और सम्मान दिया कि
काल से खिन्न बना मेरा मन अतीव सन्तुष्ट और तृप्त हो गया।
होने मेरी इतनी सेवा की कि मानो वे मेरे पुत्र और पुत्री ही हो।
के उस स्निग्ध वातावरण में इतने समय के बीत जाने का मुझे
खयाल ही नही हुआ। मेरा मन तो नही चाहता था किन्तु आप
ो की चिन्ता करते हुए मुझे उनसे अब तो विदाई लेनी ही
। ....मेरे जीवन में जिस तरह से घटनाएं घटित होती रही
उनको देखकर और उनके माध्यम से अपने कर्मों के चक्र को
झ कर इस संसार से मेरी आसक्ति हटती जा रही है। अब मैं
ने विचार और आचार मे आध्यात्मिकता का अधिक से अधिक
ास करना चाहता हू। आनन्दसेन और चम्पकमाला की दिव्यता
स्नेहशीलता मेरे अन्तःकरण में बस गई है।

महाराजा के वक्तव्य को सुनकर नागरिकों के मन में हलचल
गई कि कही ऐसा न हो कि महाराजा विरक्त होकर उनको
क्षण देना छोड़ दें। वे प्रसन्न थे कि उनके शासक कितने महान् है। ये
रनिवास में भी पहुंची। पटरानी की महाराजा में अटूट आस्था
वह परम प्रसन्न हुईं। लेकिन बाकी की ग्यारह रानिया तो
त्व भाव मे डुबी हुई थीं, अपने शरीर स्वार्थों के कारण उन्हें
राजा के विरक्ति-भाव से बडी निराशा महसूस हुई। असल
राशा तो इस तथ्य के प्रकटीकरण से हुई कि वे आनन्दनगर के
राजा आनन्दसेन के यहां ठहरे हुए थे। वे सोचने लगी कि यह
नन्दसेन क्या यही आनन्दसेन तो नही है जिसका जीवन समाप्त
देने के उनके पहले षड्यन्त्र के असफल हो जाने के बाद रचे गये
रे षड्यन्त्र को वे सफल मान रही थी—वही आनन्दसेन जो नई
रानी विश्वसुन्दरी का पुत्र था और उनकी राह का सबसे बड़ा
टा था ? उन रानियों का प्रतिशोध भाव फिर से भड़क उठा।
होने निश्चय किया कि इस तथ्य का पूरी तरह से पता लगाया
ना चाहिये। मन्त्रणा करने के लिये उन्होने सलखू नाइन को भी
वा लिया।

सभी बैठकर आपस में सोचने लगीं कि महाराजा ने अपने वक्तव्य में जिस आनन्दसेन का उल्लेख किया है, वह क्या वही आनन्दसेन पहलवान और विश्वसुन्दरी का ही पुत्र तो नहीं है? एक रानी ने कहा—हमने जज आनन्दसेन पहलवान द्वारा रनिवास पर आक्रमण का नाटक रचकर महाराजा से शिकायत की थी तब महाराजा नें बाबा ब्रह्मानन्द के आश्रम पर सैनिको से धावा डलवाया था, लेकिन वहां आनन्दसेन के न मिलने पर महाराजा ने आश्वासन दिया था कि खोज करवा कर इस अपराध के लिये उसको मृत्युदण्ड दे दिया जायगा । हम सब तो यही सोच रही थी कि उसका काम तमाम हो गया होगा । लेकिन लगता है कि उस समय आनन्दसेन बच गया और वह किसी तरह आनन्दनगर का महाराजा बन गया । यदि ऐसा है तो खतरा फिर से हमारे ऊपर मण्डराने लगा है—ऐसा हमको समझना चाहिये । सलखू ने भी हां में हां भरी और कहा—मुझे भी ऐसा ही लगता है । यदि उस समय आनन्दसेन को मृत्युदण्ड दे दिया गया होता तो उसका कहीं न कहीं अन्तिम संस्कार तो किया जाता । हमने तो ऐसी कोई खबर सुनी नहीं । वे सभी आपस में सोच विचार कर रही थी, तभी उन्हें सूचना मिली कि महाराजा उन्हीं की तरफ आ रहे है ।

महाराजा वहां आये तो सभी के चेहरे कृत्रिम भावों से रंगे हुए थे । उन्होंने वियोग के दुःख का ऐसा जवरदस्त नाटक रचा कि वे महाराजा के पधार जाने के बाद से अपनी भूख प्यास सब कुछ भूली हुई है और निरन्तर उन्ही की चिन्ता करती रही है । महाराजा तो भद्रिक स्वभाव के थे । उन्होंने सब की बाते सुनी और अपना सारा विवरण बताया । रानियों ने विवरण सुनकर पूछा—राजन् उन महाराजा आनन्दसेन की आयु कितनी होगी ? महाराजा ने वताया कि वह बीस वर्ष करीब का तरुण होगा । रानियों को तो उसके जन्म के दिन और घण्टे तक मालूम थे । उन्हें निश्चय हो गया कि आयु, सुन्दरता और दूसरे सारे वर्णन से वही आनन्दसेन पहलवान ही होना चाहिये । महाराजा तो अपनी वात करके चले गये लेकिन वे रानियां नया षड्यंत्र रचने में संलग्न हो गईं ।

महाराजा चन्द्रसेन जिन्होंने वीतराग देव के कुछ दिन

का रसास्वादन किया था, अपने जीवन को पवित्र बनाते हुए सांसारिकता के प्रति अपने आसक्ति भाव को घटा रहे थे। सन्तान नही होने की खिन्नता को भी वे कम करने लगे और आत्मिक ज्ञान को पुष्ट बनाकर अपने जीवन को सार्थक बनाने की शुभ प्रवृत्ति में तल्लीन होने लगे। फिर भी रह रहकर आनन्दनगर की स्मृतियां उनके विचारों को घेर लेती थी कि आनन्दसेन और चम्पकमाला ने बिना किसी स्वार्थ भाव के उनको कितना तरल स्नेह और सम्मान दिया था ? कितना विचक्षण और दिव्य था उन दोनों का स्वरूप ? कितने सरल और सहृदय लगते थे वे दोनों ? वे दोनों उनके मन को कितना भा गये थे कि जैसे वे उन्हीं की प्रतिकृतियां ही हों ? उन्होंने उनकी कितनी हार्दिकता से सेवा की थी ? उनके एक-एक व्यवहार और एक-एक कार्य में आत्मीयता भरी हुई थी। उन्हें देखकर ही सदा हृदय भर आता था और वे गद्‌गद् हो जाते थे। यही नही। आनन्दसेन इतनी छोटी आयु में ही शासक बनकर भी मानवता की रक्षा एवं अहिंसा की पालना के प्रति कितना निष्ठावान था ? उस छोटे से जीवन में मैंने सद्‌गुणों का कितना विशाल संचय देखा कि मैं अपने आपको भूल गया। उन्हें इस बात का सन्तोष हुआ कि जब उन्होंने अपने वक्तव्य में सारा विवरण सुनाते हुए आनन्दसेन के प्रति आभार व्यक्त किया तो उसका समग्र जनता ने समर्थन किया। यही नहीं, उनकी रानियों ने भी उसका समर्थन किया। वे इन सुखद स्मृतियों के बीच साधना और धर्माराधना में जुट गये।

उन ग्यारह रानियों का जीवन तो भौतिकता प्रधान था। उनके मन में ईर्ष्या और प्रतिहिंसा की अग्नि फिर से जलने लगी। ईर्ष्या के पीछे जो आसक्ति होती है, वह मनुष्य को काली धार डुबोने वाली होती है। जिनके मन में ईर्ष्या को कोई स्थान नही होता है, वे यही सोचते है कि कोई कितना ही आगे बढ़े उससे उन्हे क्या मतलब ? वे तो यह भावना रखते हैं कि हम ऐसा कार्य करे जिससे हमारे जीवन की शोभा में चार चांद लग जाय। लेकिन इन महा-रानियों का ढंग अलग था। महाराजा जब से विश्वसुन्दरी को विवाहित करके लाये तब से ईर्ष्या की आग लगी तो उसको गर्भवती जानकर वह आग और बढ गई। दो बार षड्यन्त्रों की जो उन्होंने

रचना की, वह इसी ईर्ष्या का फल था। अब पुनः यह जानकर कि विश्वसुन्दरी के पुत्र-पुत्री जीवित है तथा आनन्दसेन शासक के पद पर प्रतिष्ठित है उनकी यह आग फिर से प्रज्ज्वलित हो उठी। महाराजा ने दोनों भाई बहिन की प्रशंसा में जो शब्द कहे, वे उनकी इस आग में घी बन गये। वे फिर बेचैन हो गई कि अब क्या किया जाय ? उन्हें कुछ भी सूझ नही पड़ रहा था इसलिये मदद के लिये उन्होंने फिर से सलखू नाइन को बुलवा भेजा।

उन रानियों ने अपनी विश्वस्त दासी को रात्रिकाल में सलखू नाइन को बुलाने के लिये भेजा। दासी को देखकर सलखू एकदम चौंक गई कि यह फिर से बुलावा क्यों ? उसने पूछा - ऐसी क्या बात हो गई सो इतनी रात गये मुझे बुलाने के लिये आई हो ? दासी ने इतना ही कहा कि बुलाया है। इतना सोना ले रखा है तो उनकी सेवा करनी ही पड़ेगी—यह सोचकर सलखू उसके साथ चल दी। करीब अर्धरात्रि के समय वह रनिवास में पहुंची। पहुंचते ही पहले तो रानियों ने उस पर रोष जताया कि जन्मते ही नवजात शिशुओं को अपने हाथो से ही न मारकर उसने सारी समस्या को अब अति जटिल बना दिया है। मुखिया रानी ने कड़वा उलाहना दिया-अरी सलखू, हम नहीं जानती थी कि इतनी धनराशि देने पर भी तू हमारे साथ विश्वासघात करेगी। हमने जब मारने की ही योजना बनाई थी तो उसे यथावत् पूरी नहीं करके तुमने विश्वासघात ही तो किया। उसका नतीजा यह हुआ कि आनन्दसेन पहलवान हो गया और अब आनन्दनगर का महाराजा बन गया है। महाराजा दोनों पुत्र पुत्रियों के प्रति पूर्णतः आकृष्ट हो गये हैं तो हमारी समस्या तो ज्यों की त्यों ही खड़ी रही न ? सलखू दबती हुई बोली—महारानी जी, जो मैं कर सकती थी, वह मैने अपनी पूरी हिम्मत से किया। आप बताइये कि अब क्या किया जाय ? रानियां कहने लगीं—सलखू, महाराजा की प्रसन्नता को देखते हुए तो यह कहा जा सकता है कि वे अब उस आनन्दसेन को चम्पानगरी का भी उत्तराधिकारी बना देंगे। फिर सोच, हमारी क्या दुर्दशा हो सकती है ? सलखू ने तब समझाई की—ये तो सब पुण्यवानी के खेल होते हैं। आदमी अपनी कोशिश करता है लेकिन वह कामयाब हो ही जाय—क्या यह जरूरी है ?

आनन्दनगर का महाराजा कोई दूसरा ही आनन्द भी तो हो सकता है ।

महारानियों ने उसे आगे बोलने से रोक दिया और कहा—महाराजा की प्रशंसा का साफ मतलब है कि उनके बीच में प्रबल आकर्षण पैदा हुआ है और ऐसा आकर्षण पिता-पुत्र का ही हो सकता है । हमारा विचार तो यही है कि यह आनन्दसेन वही आनन्दसेन है । अब बता कि तेरा क्या सहयोग हो सकता है ? वह बोली—मैंने आपसे इतनी धनराशि प्राप्त की है तो मैं कृतघ्न नही बनूंगी । अब भी मैं कोई ऐसा प्रयत्न कर सकती हूं कि वह आनन्दसेन मृत्यु के मुख में पहुंच जाय ।

नीतिकारों ने नायिन जाति को बड़ी चालाक बताया है सो उस सलखू नाइन ने चालाकी का वर्ताव करने की ही सोची—आप फिक्र न करे । मैं अब पूरी तरह से आपके साथ हूं । यद्यपि अब मुझे बहुत ज्यादा परिश्रम करना पडेगा, अतः उसके लिये काफी धन राशि की जरूरत होगी । इसकी आप व्यवस्था करदे । मैं पूरी वफादारी से आपका काम पूरा करूंगी । इतने बडे शासक को मारने के लिये अब कई तरह की योजनाएं बनानी पडेगी । रानियों की मुखिया ने कहा—तू धनराशि की बिलकुल चिन्ता मत कर । वह जो चाहेगी, मिल जायेगा, लेकिन यह सोचले कि इस बार हर कीमत पर सफलता मिलनी चाहिये । लोभ के वश कोई अपना कितना अध.पतन कर सकता है तथा राक्षसी वृत्ति अपना सकता है । सलखू उन्हे पूरा आश्वासन देकर तथा धन राशि लेकर अपने घर चली गई ।

आत्मा के इस प्रकार के अधःपतन पर सभी को गहराई से चिन्तन करना चाहिये । क्या इस तरह लोभ और स्वार्थ आज के मानवो को दानवता की दिशा मे नहीं धकेल देते है ? जब कोई आत्मा निकृष्ट विचारो के साथ दानवी वृत्ति तक नीचे गिर जाती है तो वह उसका घोर पतन ही होता है । इस पतनावस्था में उसको इस बात का कोई भान नहीं रहता है कि क्या करणीय है और क्या अकरणीय ? आनन्दसेन तो दयालु प्रकृति का अति सौम्य तरुण था, किन्तु इन एक दर्जन आत्माओं की प्रवत्ति किस घोर अधःपतन की

ओर बढ़ रही थी ? इस दृष्टि से वीतराग वाणी की मूल बात याद रखनी चाहिये कि यह आत्मा जो तीन लोक की स्वामिनी कहलाती है, उसे इस तरह स्वार्थ एवं दुर्भावना के कीचड़ में डूबोकर कलंकित कर दी जाय—यह कितनी निकृष्ट स्थिति है ? किसी का दुष्ट प्रयत्न सफल बने या नहीं, किन्तु ऐसा प्रयत्न करने वाली आत्मा तो निकाचित कर्मों का बंध कर ही लेती है ।

❀ ❀ ❀

: १६ :

मात्र भौतिक दृष्टिकोण वाली आत्माएं धन के लिये कैसा भी पाप कार्य करने के लिये उद्यत हो जाती है। वर्तमान समय में तो इस दृष्टिकोण की बहुलता दिखाई देगी। किन्तु जो बखान तो आध्यात्मिकता का करते हैं, और भीतर ही भीतर भौतिकता का अनुसरण करते है, आज के युग में ऐसे लोग भी मिल जाते हैं। ऐसे व्यक्तियो का दुहरा चरित्र अधिक घातक बनता है। ये लोग धन की लिप्सा में ऐसे फंसे हुए होते हैं कि धनार्जन को ही प्रधानता देकर अपने व्यक्तिगत चारित्र्य अथवा सामाजिक नैतिकता को भूल जाते हैं। गलत रास्तों से धन कमाने के पीछे अपने मन, वचन एवं कर्म को कितना विकृत बना लिया जाता है—उसका कोई हिसाब नही। फिर जो आध्यात्मिकता की दिशा में एक कदम भी आगे नहीं बढे है, उनकी धन लिप्सा तो हद बाहर होती है। पूर्व काल मे भी ऐसे धन लिप्सु कोई–कोई मिल जाते थे जिनके उदाहरण के रूप में सलखू नाइन थी जो ग्यारह रानियों से धन प्राप्त करके आनन्दनगर के महाराजा आनन्दसेन की कुटिलतापूर्वक हत्या कर देने के लिये तैयार हो गई।

तीसरी बार रचे गये षड्यन्त्र को सफल बनाने की जिम्मेदारी लेकर सलखू नाइन राजभवन से अपने घर पर पहुची और आनन्द-नगर जाने के लिये आवश्यक साधन जुटाने लगी। दूर देश जाने के लिये रक्षा हेतु किन्ही रक्षकों को भाड़े पर लिया तो अन्य आवश्यक सामग्री भी साथ में ले ली और आनन्दनगर के लिये रवाना हो गई।

जब वह आनन्दनगर के मुख्य द्वार पर पहुंची तब करीब अर्ध रात्रि का समय हो रहा था। नगर के बाहर ही उसने भाड़े के रक्षको को छोड़ दिया और स्वयं नगर में प्रविष्ठ हो गई। तब वह राजभवन पहुंची और द्वारपाल से बोली—मुझे भीतर जाने दो। द्वारपाल ने पूछा—तुम कौन हो ? सलखू ने हाथ मटका कर कहा—मुझे पूछते हो कि मैं कौन हूं ? मैं जगतप्रसिद्ध बाबा ब्रह्मानन्द की

बहिन हूं । तुम्हारे महाराजा इन्हीं बाबा के शिष्य है । मैं उनसे मिलने के लिये आई हूं । तुम मुझे तुरन्त भीतर जाने दो । द्वारपाल ने कहा—तुम अगर महाराजा से मिलने आई हो तो रात्रिकाल में क्यों आई हो ? दिन में आना चाहिये । हम तुम्हें पहिचानते नही और बिना पहिचानने भीतर नहीं जाने देंगे । तुम न जाने कौन हो और महाराजा के लिये कोई खतरा पैदा कर दो तो यह हमारी जिम्मेदारी होती है । हम गलत काम नहीं कर सकते है । सलखू द्वारपाल से लड़ने लगी, डांटने लगी, उसे बुरा भला कहने लगी । द्वारपाल ने उसे द्वार पर ही रोक दिया सो रोक ही दिया । उसे भीतर जाने की अनुमति नहीं दी ।

जब सलखू की कुछ न चली तो उसने अपना नाइन चरित्तर शुरू कर दिया । वह जोर–जोर से रोने लगी । उसने रोने की आवाज चारों ओर फैलने लगी । निद्रा भी कई तरह की ही होती है। किन्हीं लोगों की नींद ऐसी होती है कि उनके पास जाकर ढोल पीटा जाय तब भी उनकी नींद नही खुलती है । दूसरे चमक निद्रा वाले होते है जो जरा से खटके पर ही जाग जाते है । पवित्र हृदय वालों की निद्रा अधिकतर चमक निद्रा होती है । उस रुदन से आनन्दसेन की निद्रा तुरन्त खुल गई और वह सोचने लगा कि अर्धरात्रि के समय यह कौन महिला है जो राजभवन के बाहर इस तरह रो रही है ? कही किसी ने उस पर कोई अत्याचार तो नही किया ? उसने रक्षक को बुलाया और पूछा—यह कौन स्त्री है जो रो रही है और किस कारण से रो रही है ? रक्षक भागा हुआ बाहर गया और द्वारपाल से विवरण पूछ कर वापिस आ गया । उसने महाराजा को उत्तर दिया—स्वामी, कोई एक स्त्री बाहर खड़ी रो रही है कि द्वारपाल उसको भीतर प्रवेश नहीं करने दे रहा है । वह अपने आप को बाबा ब्रह्मानन्द की बहिन बता रही है । द्वारपाल या अन्य कोई व्यक्ति उसे पहिचानता नहीं, इस कारण उसे बाहर ही रोक रखा है । रात्रिकाल में किसी अजनबी को आप तक पहुंचने देना उचित नहीं है । कारण, कोई धोखा भी हो सकता है ।

आनन्दसेन भी विचार में पड़ गया कि उसे बाबा की किसी बहिन का खयाल नहीं है । फिर समझलें कि बाबा की कोई बहिन

आई ही है तो उसका सही पता लगाना आवश्यक है। मैं ठीक से एक नारी की पहिचान नही कर पाऊंगा इसलिये वहिन चम्पकमाला को जगा दू ताकि नारी नारी को ठीक से पहचान सकेगी। यह सोचकर उसने चम्पकमाला को जगाया और कहा—नीचे कोई स्त्री आई है जो अपने आप को बाबा ब्रह्मानन्द की वहिन रही है तो तुम पक्का पता लगाओ कि वह बाबा ब्रह्मानन्द की वहिन ही है। क्योंकि अगर वावा की बहिन है तो हमारा कर्त्तव्य बन जाता है कि हम उसका यथोचित रीति से स्वागत करे। वावा ब्रह्मानन्द तो हमारे लिये सव कुछ है। हमें मां का दूध और पिता का सरक्षण नही मिला, लेकिन वावा ने माता और पिता दोनो बनकर हमारा पालन पोपण किया है। अतः बावा की बहिन हो तो उसे कोई कष्ट नही होना चाहिये।

वर्तमान युग में देखे तो गृहस्थाश्रम मे रहते हुए अधिकाश व्यक्ति अपने माता-पिता की समुचित सेवा तो नही करते सो न सही किन्तु उनसे रात दिन लड़ाई झगड़ा करते रहते है और उनको असह्य कष्ट पहुंचाते रहते है—यह कितनी निकृष्टता की वस्तुस्थिति है? वे लोग सद्‌गुणी नही कहला सकते। जो सद्‌गुणी होते है, वे इस जन्म के माता-पिता की तो सेवा करते ही है लेकिन अनन्त जन्मो में रहे हुए माता-पिताओं को कष्ट नही पहुचाने की शुभ भावना से प्राणी मात्र पर भी दया भाव रखते है। इसी भावना के साथ आनन्दसेन ने चम्पकमाला को नीचे खड़ी स्त्री के रहस्य के बारे मे पता लगाने की बात कही।

आनन्दसेन अपनी बहिन चम्पकमाला को साथ मे लेकर नीचे पहुचा और सलखू को कहा—आप कौन है, क्यो रो रही हैं? बताइये कि आप को क्या दुःख है? तव सलखू का क्या कहना? उसने अपने नाइन चरित्तर तेज कर दिया। वह और अधिक जोर से रोने लगी और तूफान मचाने लगी। आनन्दसेन ने वहुत कहा कि जो भी कष्ट होगा, दूर किया जायगा लेकिन रोना वन्द करो। किन्तु सलखू का नकली रोना चलता ही रहा। तव आनन्दसेन ने चम्पकमाला से कहा कि तुम इन्हे चुप कराओ। चम्पकमाला ने उसके चेहरे पर हाथ फिराते हुए कहा—आप रोना बन्द करो। स्वयं महाराजा आपके सामने खड़े हैं। जो भी आपका

दु:ख हो, इन्हें बताओ। ये अवश्य उस दु:ख को दूर करेंगे। तब सिसकियां भरते हुए सलखू बोली - मै बाबा ब्रह्मानन्द की बहिन हूं। यहां इसलिये आई हूं कि मेरा दु:ख दूर होवे। मैंने सुना कि बाबा का शिष्य आनन्दसेन यहां का महाराजा है और बहुत दयालु व परोपकारी है। ब्रह्मानन्द तो साधु बना हुआ है सो स्त्रियो को अपने आश्रम में स्थान नहीं देता है। अत: मै यहां आश्रय पाने के लिये आई हूं। जब राजभवन में जाने से द्वारपाल ने मुझे रोक दिया तो मुझे अपनी दुर्दशा पर रोना आ गया। आनन्दसेन ने कहा— यदि आप बाबा की बहिन हैं तो हमारी माता के समान है। आप हमारे साथ रहो। हम आपकी हर तरह से सेवा करेंगे। फिर क्या था—सलखू महाराजा, आनन्दसेन और चम्पकमाला के साथ सम्मान और आनन्द से रहने लगी।

सलखू तो अपने षड्यन्त्र के प्रसंग से चल रही थी। आनन्दसेन भद्रिक स्वभावी था अत: बाबा की बहिन के प्रति अपना कर्त्तव्य समझ कर उसको आश्रय दिये हुए था। सलखू ने अपने चेहरे के दो रूप बना रखे थे। बाहर से वह स्नेह के दिखाऊ हाव भाव किया करती और भीतर से ऐसे अवसर की टोह मे रहती जब वह अपने षड्यन्त्र को सफल बना ले। दोगले चरित्र वाले व्यक्ति बड़े खतरनाक होते है। कुटिलतापूर्वक वे अपने भीतर के जहर को तनिक भी बाहर प्रकट नहीं होने देते है। और सलखू के ऊपर के व्यवहार को देखकर ही दोनों भाई बहिन ने उस पर पूरा विश्वास कर लिया। सलखू रक्षक के रूप मे भक्षक बन कर राजभवन में रहने लगी।

जो व्यक्ति वास्तविक रूप से सेवा लेने नही आया है, वह अनूठी सेवा से भी प्रभावित कैसे हो सकता है? सलखू तो रात दिन भाई–बहिन के खून की प्यासी होकर अपने काम को पूरा करने की घात में लगी हुई थी। मन ही मन इस दुष्ट उद्देश्य के लिये उसने एक योजना गढ़ी और उसे पूरी कर लेने के प्रयास मे जुट गई।

एक दिन वह अच्छे गादी तकियों पर सोई हुई थी। सेवा में दासियां हाजिर थी। चम्पकमाला भी उसको वार–वार संभालती रहती थी। उस समय सलखू अपनी योजना को कामयाब करने के लिए अचानक इतनी जोर से रोने लगी कि जैसे सारा राजभवन

गूंजने लगा । रोते–रोते वह कभी इधर गिरती तो कभी उधर पडती और इस तरह जोरदार नाटक करने लगी । उसके इस तरह के क्रन्दन–रुदन को सुनकर चम्पकमाला भी तुरन्त दौड़ी हुई आई तो आनन्दसेन भी भगा हुआ चला आया ।

भाई आनन्दसेन और वहिन चम्पकमाला दोनो ने घवरा कर पूछा—माता, आप इस तरह क्रन्दन क्यों कर रही है ? अचानक आपको क्या कष्ट हो गया है ? काफी देर तक दोनो पूछ-ताछ करते रहे और सलखू लगातार रोती रही । अव उसे अपने नाटक का अन्तिम अध्याय समाप्त करना था अत: नाटकीय हावभाव से ही वह आखिर बोली—तुम्हारे राज्य मे न कोई मुझे कष्ट देने वाला है और न ही कोई मेरी अवहेलना करने वाला है । सेवा भी मेरी इतनी अच्छी हो रही है कि मानों मैं स्वर्ग मे पहुंच गई होऊं । मेरे रोने का कारण यही है कि अचानक मेरी आंखो मे प्राणान्तक शूल पैदा हो गया है और यह मेरे वेदनीय कर्म का ही उदय है ।

आनन्दसेन कहने लगा—यदि आपकी आंखो मे ऐसा शूल पैदा हो गया है तो अभी राजवैद्य जी को बुलवाता हू और वे आपकी श्रेष्ठ चिकित्सा कर देगे । आप रोओ मत और फिक्र न करो । ऐसी कौनसी कष्ट की वात है जिसका निवारण मेरे राज्य मे सभव नहीं है ? तव सलखू बोली—एक वार ऐसा ही शूल मेरी आंखो मे पहले भी पैदा हुआ था तब एक पहुचे हुए पुरुप ने एक चिकित्सा वताई थी जिसके अनुसार कार्य करने से उस समय शूल शान्त हो गया था । तुम दोनो भाई-वहिन मेरी जो सेवा कर रहे हो उससे मैं पूरी तरह से सन्तुष्ट हूं लेकिन आंखों की इस वेदना को दूर करने के लिये अव मैं अपने घर पर ही जाना चाहूंगी । आनन्दसेन ने इस पर अनुरोध किया—मां जी, घर पर तो आप बताती है कि आपका पुत्र आपकी आज्ञा नही मानता है तो फिर आपकी समुचित चिकित्सा कौन करायेगा ? आप तो यही रहिये । जिस तरह की भी चिकित्सा आप चाहेंगी, उसे मैं कराऊगा । आपकी हर तरह से मै सेवा करने को तैयार हू, किन्तु मै आप को यहा से जाने नही दूंगा ।

पूरी मान मनुहार कराने के वाद सलखू ने अपना तीर फेंका—

अब तुम इतना आग्रह करते हो तो मैं यहीं रूक जाऊंगी, लेकिन मेरी औषधि से तुम संकट में पड़ जाओगे, इसलिये अभी भी यही कहती हूं कि तुम घर पर ही जाने दो। आनन्दसेन ने कहा—आप किसी तरह का संकोच मत करो और वह उपाय बताओ जिसकी मदद से आप को आंखों का शूल शान्त हो जाय। मामले को पूरी ऊंचाई तक ले जाकर सलख बोली—मेरी आंखों के शूल को मिटाने के लिये जो चीज चाहिये, मैं नही समझ पा रही हूं कि तुम कैसे ला पाओगे ? मुझे मेरी आंखों के लिये शेरनी का दूध चाहिये। तुम दयालु राजा हो और तुमने अपने राज्य भर में शिकार पर प्रतिबन्ध भी लगा रखा है, फिर तुम स्वय शेरनी का शिकार करके दूध कैसे प्राप्त कर सकते हो ? शेंरनी को मार दोगे तो दूध नहीं मिलेगा और जिन्दा शेरनी का दूध लेने जाओगे तो वह तुम्हें मार देगी। इस कारण समस्या टेढ़ी ही है। मेरा कहना तो यही है कि तुम मुझे यहां रुकने के लिए हठ मत करो।

आनन्दसेन ने भाव भक्तिपूर्वक ही उत्तर दिया—मां जी, आप चिन्ता न करें। मै स्वयं शेरनी का दूध लाने के लिये जाता हूं। यह कहकर आनन्दसेन वहां से चल दिया। उसने जानकारों को पूछा कि शेर–शेरनी किस दिशा में मिल सकेंगे ? जानकारों ने जब यह सुना कि शेरनी के दूध की आंख का शूल ठीक करने के लिए मांग की गई है तो यह सरासर धोखा है और यह आपके दुश्मन की चाल है क्योकि शेरनी का दूध विना अपनी जिन्दगी को जोखिम में डाले भला कैसे मिल सकता है ? इसलिये अगर आपको जाना ही हो तो पूरा बन्दोवस्त साथ में लेकर पधारें। आनन्दसेन ने उनकी सलाह सुनी और कुछ सैनिकों को साथ मे लेकर जंगल की तरफ आगे बढ़ गया। लेकिन योग ऐसा बना कि सैनिक तो पीछे ही रह गये और आनन्दसेन घने जंगल में पहुंच गया।

उस घने जंगल मे सिंह की गर्जनाएं सुनाई दे रही थी। आनन्दसेन ने सोचा कि वाकई खतरा वहुत बड़ा है और वह एकाकी ही रह गया है। अतः क्या किया जाय ? सबसे पहले एक स्वच्छ स्थान पर वह ध्यानस्थ होकर णवकार मन्त्र का तन्मयपूर्वक जाप करने लगा। जाप करते-करते जब उसके मन में से भय पूरी तरह

निकल गया तो वह सावधानीपूर्वक आगे वढने लगा। थोडी दूर चलने के वाद उसने झाड़ियो के झुरमुट में दहाड़ती हुई एक सिंहनी को देखा। उसे महसूस हुआ कि जैसे वह किसी पीडा से कराह रही हो। उसके मन मे निर्भीकता तो थी ही और तव करुणा-भाव भी जागृत हो गया। वह नि:शंक होकर आगे वढ़ चला और सिंहनी के पास तक पहुंच गया। तब उसे दिखाई दिया कि शेरनी के पांव में एक वड़ा सा कांटा चुभा हुआ है जिसके दर्द से वह वुरी तरह बेचैन हो रही थी। आनन्दसेन प्रसन्न मुख कहने लगा – अरे आप सिंहनी क्या हो—मेरी मामीजी हो। मै आपकी पीड़ा को समझ गया हूं और आपका कांटा निकालने के लिये ही आया हूं।

शेर शेरनी पचेन्द्रिय प्राणी होते हैं और वहुत कुछ समझ लेते है। एक अजनवी व्यक्ति सामने था फिर भी उसकी आकृति पर उभरे दयापूर्ण भावो से जैसे वह शेरनी प्रभावित हो गई और उसने आनन्दसेन के सामने अपना कांटा चुभा पांव आगे फैला दिया। प्रेम और परवाह से जब आनन्दसेन ने काटे को निकाल दिया और शेरनी को तुरन्त राहत मिल गई तो वह अपना आभार प्रकट करने लगी। शेर शेरनी और अन्य जंगली जन्तु भी अपने ऊपर उपकार करने वाले के प्रति किसी भी सकेत से अपना आभार प्रकट करते हैं। वे उपकार करने वाले को अपनी ओर से कष्ट नही देते वल्कि जो हो सकता है उस प्रकार की सहायता भी समझ लेने के वाद करने से नही हिचकते।

आनन्दसेन अतीव हर्षित हुआ कि इस महामन्त्र का कैसा अपूर्व प्रभाव है। उस दृढ़ आस्था के साथ ही उसने सकेतपूर्वक शेरनी को यह समझाया कि उसको थोड़े दूध की जरूरत है। वच्चे दूध धा ही रहे थे कि वह शेरनी उठ खडी हुई कि वह जाहे जितना दूध ले ले। आनन्दसेन ने तुरन्त अपने साथ लाये सोने के पात्र मे शेरनी का दूध झेल लिया और झुककर शेरनी के आभार को मानते हुए वह वापिस लौट चला।

णवकार मन्त्र का जाप करते हुए जव वह आगे वढने लगा तभी एक चमत्कार हुआ। शेरनी का एक वच्चा आनन्दसेन के घोड़े के साथ–साथ भागने लगा। आनन्दसेन ने सोचा कि कहीं उसके

द्वारा दूध लाने के कारण यह वच्चा असन्तुष्ट तो नहीं हो गया है? फिर कहीं शेरनी भी कुपित नहीं हो जाय ? वह घोड़े से उतर कर वच्चे को वापिस शेरनी के पास ले जाने की चेष्टा करने लगा, लेकिन वच्चा तो एक इन्च भी पीछे नहीं खिसका। तव उसने शेरनी की तरफ देखा -उसे लगा कि वह उसे वच्चे को साथ ले जाने का संकेत दे रही थी। उसने वच्चे को अपनी गोद में उठा लिया और घोड़े पर चढ़कर अपनी राजधानी की तरफ आगे वढ़ गया।

जव आनन्दसेन राजधानी में पहुंचा तो सभी आश्चर्य चकित रह गये कि यह तरुण महाराजा कितना साहसी और शक्तिशाली है जो शेरनी का दूध लाने के साथ-साथ शेर के वच्चे को भी साथ ले आया है ? इस चमत्कार से सभी विस्मित हो गये और महाराजा की जय-जयकार करने लगे।

उधर सलखू नाइन की आंखों में असल में तो कोई पीड़ा थी नहीं - उसे तो इस वहाने आनन्दसेन के जीवन को समाप्त करवाना था अतः जव कोई देखता होता तो वेदना का नाटक कर लेती वरना मौज मस्ती से सोई रहती। जव स्वयं आनन्दसेन शेरनी का दूध लेकर उसके सामने पहुंचा तो वह हतप्रभ हो गई। यह क्या हो गया ? आनन्दसेन जीवित वच गया और तिस पर शेरनी का दूध भी ले आया। अव वह चम्पानगरी में जाकर ग्यारह रानियों को अपना मुंह कैसे दिखा सकेगी ? उसकी आंखों के आगे तव निराशा का असली अंधेरा छा गया कि यह तो उसका तीसरा षड्यन्त्र भी विफल हो गया है। ऐसे भयंकर स्थान से भी वचकर आ गया है तो अव इसके जीवन को किसी प्रकार की क्षति पहुंचाना सम्भव ही नही है। हताशा से उसका सम्पूर्ण तन–मन सन्न रह गया।

आनन्दसेन ने शेरनी के थोड़े दूध को एक सोने की कटोरी में लिवा कर सलखू के सामने प्रस्तुत किया कि वह उसे अपनी आंखों में आंज ले। सलखू आखिर चालाकी में बड़ी आगे वढ़ी हुई थी। इतने से समय में उसने एक दूसरा ही उपाय सोच लिया। नकली घबराहट दिखाते हुए वह हड़वड़ा कर वोली—गजव हो गया। शूल के कष्ट के कारण मै तुम्हें इस दूध के साथ उपयोग में ली जाने वाली एक दूसरी चीज तो कहना ही भूल गई। अब एक चीज तो आ गई

लेकिन दूसरी चीज बाकी रह गई है। चम्पकमाला ने कहा—कोई बात नही, जो चीज बाकी रह गई है उसको अब बता दो। मेरे भैया हर तरह की चीज लाने में पूर्णतया समर्थ हैं। वह ढोंगी नाइन बोली—इस दूध में मिलाने के लिये असली गरूड़ पक्षी की बीट भी चाहिये, लेकिन मै अब तुम्हारे भैया को फिर से खतरे की जगह पर जाने के लिये नहीं कहूंगी। तब आनन्दसेन ने आगे बढ कर कहा—मांजी, आप चिन्ता न करे। आपके आराम के लिये मैं कैसा भी खतरा झेल लूंगा। आपके लिये गरूड़ की बीट भी लाकर रहूगा।

तब पक्षियो की जानकारी रखने वाले लोगो को बुलाया गया और उनसे असली गरूड़ के निवास स्थान आदि की जानकारी ली गई। उन लोगो ने बताया कि असली गरूड़ बहुत ही घने जंगल में रहता है और वह इतना खूंखार होता है कि दूर तक भी किसी को फटकने नही देता। हमारा तो खयाल है कि उसके पास पहुचकर किसी का जीवित बचना और वापिस लौटकर आना सम्भव नही है। उन लोगो से आनन्दसेन ने यही कहा—आप लोगो की बात ठीक है किन्तु मुझे भी बीट लाना आवश्यक है अतः अपने जीवन को खतरे में डालकर भी वहाँ पर जाऊंगा। फिर आनन्दसेन उस जगल के बारे मे जानकार कई व्यक्तियों को साथ में लेकर बताये गये मार्ग से उस घने जंगल की तरफ चल दिया। चलते-चलते जगल की एक ऐसी हद आ गई जहां से आगे चलने में साथ वाले शिकारियो ने अपनी असमर्थता जाहिर कर दी। फिर भी आनन्दसेन ने परवाह नही की और उन्हें वही छोड़कर वह अकेला ही आगे बढ गया।

आनन्दसेन की महामंत्र के प्रति अटूट आस्था थी अतः सबसे पहले उसने उसका अति अन्तरंगता से जाप किया और नवकार मन्त्र का शरण लिया। फिर वह निर्भीकता पूर्वक आगे बढने लगा। चलते-चलते जब सूर्यास्त होने लगा तो उसने रात एक वृक्ष की शाखा पर बैठ कर बिताई और सूर्योदय होने पर लक्ष्य की ओर प्रस्थान कर गया।

दुनिया मे सभी तरह के व्यक्ति होते है। वृक्ष की एक ही टहनी पर फूल भी होते है तो कांटे भी होते हैं। किन्तु फूल अपनी सुगन्ध फैला कर सबके मन को खुश करते हैं, वहां कांटे किसी के

गड़ गये तो उसको कठोर वेदना से रूला देते हैं। इसी रूप मे ससार का स्वरूप सबके सामने है। एक व्यक्ति प्रयास करे तो वह फूल के समान बनकर परोपकार के कार्य कर सकता है वरना कांटे की तरह अपने स्वार्थों के लिये दूसरों को पीड़ा पहुचाकर कष्टकर होना तो लज्जाजनक है ही। सभी को चिन्तन करना चाहिये कि उसे फूल बनना चाहिये या काटा। यदि फूल बनना है तो वर्तमान जीवन को त्याग एवं साधना के बल पर सम्भालना और संवारना होगा।

आनन्दसेन अपने आप मे आन्तरिक सम्पन्नता का अनुभव कर रहा था। वहां रिक्तता नहीं थी। उसके स्वभाव में जोश था, होश था और थी निर्भयता, क्योकि महामत्र के प्रति अटूट निष्ठा होने के कारण उसके अन्तःकरण में एक प्रकार की शक्ति उभरी हुई थी। वह शक्ति भावना रूप थी कि मैं मानव हूं तथा मानवता की भावना के साथ सब कुछ करने में सक्षम हूं। इसी भावना को लेकर गरूड की बींट लाने के लिये जगल की तरफ रवाना हो गया। जानकारो द्वारा बताये गये सकेतों के अनुसार वह आगे बढने लगा। दूर से उसको एक ऐसा वृक्ष दिखाई दिया जिस पर बहुत बड़ा घोसला पड़ा हुआ था। जानकारो ने बताया उसके अनुसार चिह्न उस घोसले पर दिखाई दे रहे थे। उसने सोचा कि यह घोंसला गरूड़ पक्षी का ही होना चाहिये।

अभय सूत्र को थामे हुए निर्भीकता के साथ वह धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगा। ज्यो ही वह उस वृक्ष के पास पहुंचा, उसने देखा कि एक काला सर्प वृक्ष के ऊपर चढ़ रहा था। उसका अनुमान पक्का हो गया कि सर्प ही गरूड़ के बच्चो को खाने के लिये चढता है अतः यह अवश्य ही गरूड़ पक्षी का ही घोंसला है। उसने घोडे को एक तरफ बांधा और सर्प को सिसकार कर वृक्ष से नीचे हटा दिया। नीचे गिरकर सर्प एक तरफ भाग गया। सर्प को हटा दिये जाने के कारण गरूड़ के बच्चों की रक्षा हो गई। वृक्ष की ऊपर की शाखा पर बैठा हुआ गरूड़ आनन्दसेन के इस कार्य को देख रहा था। वह मन ही मन उपकार मानने लगा कि इस व्यक्ति के प्रयास से उसके बच्चों की रक्षा हुई है।

गरूड पक्षियो का वह जोडा आनन्दसेन के उस रक्षा-कार्य से वहुत ही हर्षित हुआ । उस समय उसने ऐसी ध्वनि की जिससे ग्रानन्दसेन को यह लगा कि वे उसका आभार मान रहे है। उस जोड़े का सकेत यह भी था कि हम आपकी क्या सेवा कर सकते है ? आनन्दसेन ने उन पक्षियो के सकेत को समझ लिया और उचित अवसर देखकर बोला यह तो मेरा कर्त्तव्य था सो मैने किया । आपको यह कष्ट देना चाहता हू कि मै आपकी कुछ वीट ले लूं । प्रसन्न होकर उन पक्षियो ने ही अपने पैरो से वीट नीचे सरकानी शुरू कर दी तथा अपने एक वच्चे को भी भेट दिया कि यह वडा होकर काम आयगा ।

वह गरूड के बच्चे और बीट को लेकर घोडे पर सवार हुआ तथा तेजी से चलता हुआ अपनी राजधानी पहुच गया । जनता अपने महाराजा के इस दूसरे साहसिक कार्य को देखकर अतीव हर्षित हुई तथा जय-जयकार करने लगी । लेकिन अव सलखू नाइन अनजाने भय से बुरी तरह आतकित हो उठी ।

जो निकृष्टतम स्वभाव व्यक्ति होना है, वह अपने दुष्कृत्य पर भी लज्जा का अनुभव नही करता है, क्योकि उसकी आत्मानुभूति मृत प्राय हो जाती है । सलखू ने षड्यत्र रचा और मान्य मेहमान वनकर अपने मेजवान को मारने के दो-दो वार किये दुष्ट प्रयासो मे विफल हो गई, फिर भी उसका हृदय परिवर्तित नही हुआ । यह विचार नही उठा कि उसकी नीचता सारी सीमाए लाघकर असफल हो गई है तो अव अपने मेजवान से माफी माग लेनी चाहिये अथवा कम से कम मन मे तो प्रायश्चित की भावना लानी चाहिये । जब आनन्दसेन गरूड की वीट लेकर सलखू के सामने पहुचा तो वह भय से आतकित होकर भीतर ही भीतर बुरी तरह काप उठी, किन्तु जल्दी ही उसने अपने आप को सम्हाला और प्रकट रूप से आनन्दसेन के अपूर्व साहस की सराहना करने लगी । तव दिखाऊ रूप मे उसने शेरनी के दूध मे गरूड की बीट घिसनी शुरू कर दी ताकि आनन्दसेन उसकी माग को वास्तविकता ही माने ।

दुष्ट छोड़े दुष्टता, सज्जन तजे न प्रीत । उस समय सलखू की दुष्टता इसी तरह निर्लज्ज होकर कार्यरत थी ।

सलखू कुछ दिनो तक बिल्कुल चपचाप रही और दवा को आंखो मे डालने का बहाना करती रही । चम्पकमाला के समक्ष वह आनन्दसेन की खूब प्रशसा करती रहती कि यदि वह इतने साहसभरे कार्य करके दूध ओर बीट नही लाता तो उसकी आखे निश्चित ही खराब हो जाती । उन दिनो मे ऊपर से तो वह प्रशसा के गीत गाती रहती और भीतर ही भीतर कोई नया षड्यत्र सोचने लगी क्योकि वह असफल होकर चम्पानगरी लौटना नही चाहती थी । वहा ग्यारह रानियो से वह भरपूर धनराशि ले चुकी थी अत: खाली हाथ वहां जाना भी खतरे से खाली नही था । जुआरी जब लगातार भी हारता जाता है तब भी इस आशा के साथ वह जुआ खेलना नही छोड़ता कि अगली बार अवश्य ही उसकी जीत होगी । इस कारण वह बराबर दाव लगाता जाता है । जुआ खेलने की ऐसी खोटी लत है जिसमे गिरकर करोड़पतियो तक को बरबाद होते हुए देखा गया है । पाडवो व कौरवो का ऐतिहासिक उदाहरण हमारे सामने है ।

जब स्व० गुरुदेव का चातुर्मास दिल्ली मे था तब मै भी उनके साथ मे था । एक दिन सुबह दूध लेने गया तो गृह स्वामी ने थोडा सा हलवा भी ले लेने का आग्रह किया । मैने पूछा कि सुबह ही सुबह हलवा क्यो बनाया गया है तो उन्होने कहा कि मुझे शूगर की बीमारी है सो सुबह ही डॉक्टर इन्जेक्शन लगाता है तथा इन्जेक्शन के बाद हलवा खाने को कह रखा है, इसलिये मेरे वास्ते रोजाना हलवा बनता है । मैने उस समय कुछ नही कहा और चला आया । लेकिन बाद मे सेठसाहब के हालात सुने तो मालूम हुआ कि वे जुए की लत मे गिरकर करोड़ो रुपयो की अपनी सम्पत्ति बरबाद कर चुके है । आज भी कई लोग ऐसे मिल जायेगे जो जुआ या सट्टा खेलते है । इस व्यसन के आप लोगो को त्याग ले लेने चाहिये ।

बार-बार हारकर भी सलखू अपने दुष्ट विचार से पीछे नही हट रही थी । उसने फिर एक षड्यत्र रचा ।

एक दिन वह चम्पकमाला के पास बैठी हुई थी तथा इधर-उधर की बाते कर रही थी । पहले तो उसने राजभवन की शोभा की सराहना की, फिर कहा कि यहां रहते हुए वह कितनी अधिक आनन्दित हो रही है । इसी सन्दर्भ मे उसने आनन्दसेन तथा

चम्पकमाला की खूब प्रशंसा की कि दोनो भाई-वहिन उसकी वहुत अच्छी तरह सेवा कर रहे है । इस तरह मीठी-मीठी बाते वनाते हुए वह वोली—आप दोनो ने मेरे प्रति इतना प्रेम दिखाया है कि मैं फूली नही समाती हूं । लेकिन इतना होने पर भी मेरे मन में एक वात वहुत ज्यादा खटक रही है जो मै सोच रही हू कि तुम्हारे सामने उसे कहू या नहीं कहू । चम्पकमाला तो भद्रिक स्वभावी थी, कहने लगी—इसमे किसी तरह का संकोच मत करो—जो भी आपकी इच्छा हो खुलकर कह दो । तब सलकू बोली—इतने बड़े राजभवन मे तरह-तरह की बाल लीलाएं करते हुए बच्चे-बच्ची नही हो तो यह वड़ा अखरता है । यो कहना चाहिये कि राजभवन की शोभा इस तरह से अधूरी ही है । आनन्दसेन अब तरुणाई मे पहुच गया है लेकिन फिर भी विवाह नही कर रहा है—यह उचित नही है । वह विवाह करले तो राजभवन मे महारानी भी आवे और धीरे-धीरे वाल-वच्चो की किलकारिया भी गूंजे । चम्पकमाला ने कहा—मेरे भैया वहुत ही धार्मिक वृत्ति वाले है तथा उनका अंपने मन पर नियन्त्रण सधा हुआ है । वे अभी विवाह जैसी बात मे पडना नही चाहते है ताकि जनता की पूरी शक्ति से सेवा कर सके । फिर उनके योग्य कन्या भी अभी दृष्टि मे नही है ।

बस सलखू ने निशाना लगा दिया—आपने खोज पूरी नहीं की होगी । मेरी नजर मे आनन्दसेन के लायक सुयोग्य एक कन्या है । उसका नाम शीलावती है तथा जैसा उसका नाम है वैसी ही वह सर्व गुण सम्पन्ना भी है । बहुत से राजाओ ने उसके साथ विवाह करने के प्रयत्न किये लेकिन वह कन्या जो भी उसे वरने की इच्छा लेकर आता है उससे उसका जीवन-वृत्तान्त सुनती है । किसी के जीवन मे किसी प्रकार का दुर्गुण दिखाई दे या उसके होने की आशका भी हो जाय तो वह उस पात्र को अस्वीकार कर देती है । प्रयत्न अनेकानेक राजा लोग उसे प्राप्त करने के करते रहे है किन्तु अभी तक किसी को भी सफलता नही मिली है । मै सोचती हू कि वह कन्या आनन्दसेन के लिये सर्वथा उपयुक्त है तथा अपने साहस से वह उसे प्राप्त भी कर सकता है ।

चम्पकमाला की जिज्ञासा जाग उठी, उसने पूछा—वह कन्या

किस राजा की राजकुमारी है तथा कहा पर रहती है ? सलखू ने कहा – वह अद्वितीय कन्या वर्तमान मे यहा से सौ कोस दूर रहती है, जिस तक पहुचने के लिये एक वियावान जगल पार करना पडता है। आनन्दसेन जब इतना साहसी है तो उसे वहा तक पहुचने मे कोई खास कठिनाई नही आवेगी । मै सोचती हू कि वह कन्या अवश्य ही आनन्दसेन को वरण कर लेगी । जहां तक साहसिकता का प्रश्न था, चम्पकमाला को पूरा विश्वास था कि आनन्दसेन अवश्य ही सफल बनेगा । किन्तु सलखू ने सारा वर्णन इस चतुराई से किया कि चम्पकमाला के मस्तिष्क मे यह बात अच्छी तरह बैठ गई ।

ज्यों ही आनन्दसेन आया, चम्पकमाला ने यह प्रस्ताव उसके सामने रखा और कहा--भैया, यदि योग्य कन्या मिल रही है तो आपको भी विवाह के लिये तैयार हो जाना चाहिये । उसने उत्तर दिया—बहिन, तू वहुत ही भद्रिक है । राजाओ की यह परम्परा होती है कि उनका सबसे वडा पुत्र ही उस राज्य का उत्तराधिकारी वनता है, किन्तु मै इस राज-परम्परा को समाप्त कर देना चाहता हू। मेरे हृदय में यह भावना है कि राजतंत्र की समाप्ति होकर उसके स्थान पर मै जनतत्रीय पद्धति लाऊं । मै सोचता हूं कि नागरिको मे से ही जो सर्वाधिक सुयोग्य एव सद्‌गुणी दिखाई दे, उसका राज्य के उत्तराधिकारी के रूप मे चुनाव करा लिया जाय । इस कारण मैं विवाह करने का इच्छुक ही नहीं हूं ।

चम्पकमाला ने समझाया—भैया, यह सलखू भुवाजी कहती है कि वह ऐसी अद्वितीय कन्या है जो कई राजाओ को अस्वीकार कर चुकी है, उसके लिये तुम ही योग्य हो । जब तुम्हारा प्रभाव चारो ओर के राज्यो मे इतना फैला हुआ कि वहां के राजा लोग तुम्हारे से भय खाते है तो ऐसे राज्य के प्रभाव को यथावत् रखने का ही प्रयास किया जाना चाहिये । तुम यदि उस कन्या का वरण करने का साहसिक कार्य पूरा कर लोगे तो तुम्हारा प्रभाव और अधिक वट जायगा । आनन्दसेन ने समझाया—बहिन, इस प्रभाव का लाभ राजपरिवार को ही नही, समस्त जनता को मिलना चाहिये और ऐसा तभी हो सकता है जब राजा का बेटा ही राजा न वने वल्कि जनता में से ही कोई सुयोग्य नागरिक इस पद को सुशोभित करे।

चूंकि वह निर्वाचित होकर आयेगा, अत· वह अपना ध्यान जन सेवा की दिशा में ही प्रधान रूप से केन्द्रित करके रहेगा । सत्य तो यह है कि दृष्टि वदले तो सृष्टि वदल जाय । चाहे व्यक्तिगत जीवन हो अथवा सामूहिक जीवन—नई दृष्टि नया परिवर्तन लाती ही है । यह मेरी नई दृष्टि है कि राजतत्र के स्थान पर जनतत्र लाया जाय तो तुम निश्चय मानो कि इस दृष्टि को कार्यान्वित कर देने पर नई सृष्टि अवश्य ही उभर कर आयगी ।

चम्पकमाला ने पुन आग्रह किया - यह परिवर्तन की वात तुम जानो लेकिन इस कन्या का वरण करने मे अपनी शक्ति का परिचय देने की जो बात है, उसमें तुम्हे पीछे नही रहना चाहिये । आनन्दसेन ने उत्साहित होकर कहा - अगर शक्ति का परिचय देने की ही मुख्य वात है तो मैं तैयार हू ।

: १७ :

साहसी व्यक्ति दुर्लभ वस्तु को प्राप्त करने की कामना करते हैं। वे साहस की परीक्षा से प्रसन्न होते हैं और कठिनाइयो की कसौटी पर अपने साहस को चढाकर उसे सफल बना देते है। सलखू नाइन के मन में तो कठोर दुर्भावना बनी हुई थी कि किसी भी प्रकार से महाराजा आनन्दसेन के प्राणों का हरण हो जाय। उसी दुर्भावना से उसने चम्पकमाला को सुझाव दिया कि आप के भाई साहब के लिये शीलावती की जोड़ी ही श्रेष्ठ रहेगी जो अद्भुत सुन्दरी है। सारा विवरण सुनकर चम्पकमाला ने भी आनन्दसेन को आग्रह किया कि वह शीलावती को ही प्राप्त करके उसे अपनी महारानी बनावे। आनन्दसेन इस तथ्य से अधिक प्रभावित हुआ कि शीलावती दुर्लभ है इसलिए उसे प्राप्त करने में उसके साहस को कठिन परीक्षा से गुजरना पड़ेगा। फिर सर्वगुण सम्पन्न पत्नी की प्राप्ति भी स्वयमेव मे एक विशिष्ट उपलब्धि रहेगी।

शीलावती को प्राप्त करने का निश्चय करके महाराजा ने अपने जानकार मन्त्रियो आदि को बुलाया तथा उन्हे अपना उद्देश्य बताया। आनन्दसेन ने कहा—हमने यह निश्चय किया है कि हम शीलावती के साथ ही विवाह करेगे और उसके लिये कल ही प्रस्थान कर देना है। मार्ग को विकट परिस्थितियों को देखते हुए हमें साथ में सेना भी ले जानी होगी।

आनन्दसेन का निश्चय सुनकर मन्त्री आश्चर्य में डूब गये और कहने लगे—महाराज, जिस किसी ने आपको शीलावती से विवाह करने का सुझाव दिया, वह अवश्य ही आपके प्राणो का शत्रु है। क्योकि आज तक अनेक वीर उसे प्राप्त करने के लिये गये लेकिन कोई वापिस नही लौटा। वह बड़ी मन्त्रवादिनी है और अपने मन्त्र बल से सबको पराजित कर देती है। इस कारण हमारा निवेदन है कि आप शीलावती का खयाल छोड़ दीजिये। उस से भी अधिक सुन्दर कन्याए हमारे ध्यान में है और उनमें से जिसे भी आप पसन्द करे, उसके साथ आपके विवाह की व्यवस्था का जिम्मा हम लेते है।

आनन्दसेन ने उत्तर दिया—विवाह अवश्य महत्त्वपूर्ण होता है किन्तु उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह होती है कि जिसे सामान्य लोग प्राप्त नही कर सकते, उसे एक साहसी व्यक्ति अपने साहस के सम्बल पर प्राप्त करके दिखावे । इस रूप मे मै भी अपने साहस की परीक्षा करना चाहता हू और जो काम आज तक अनेकानेक वीर पुरुष नही कर सके, उसे मै अपने साहस को सफल बना करके पूरा कर दिखाना चाहता हूं । कठिन कार्य को सम्पन्न करले–इसी मे साहसी व्यक्ति की सफलता मानी जाती है । इसलिये सारे सकटो के बावजूद कल मै अवश्यमेव प्रस्थान करूगा और शीलावती के साथ विवाह करके बता दूगा कि मेरा साहस कही भी विफल होना नही जानता । अत. आप लोग प्रस्थान के लिये सारी तैयारिया जल्दी पूरी कर लीजिये ।

यह तो महाराजा का आदेश था अत· मन्त्रीगण विवश हो गये । तब मत्रियो ने महाराजा को बताया—राजन्, शीलावती का निवास स्थान यहा से बहुत ही दूर है । हमे पूर्व दिशा मे आगे से आगे बढते रहना होगा । मार्ग मे बहुत ही विकट अटवी पड़ती है, जिसमे भाति-भाति के खतरे सामने उपस्थित होगे । उसे पार कर लेने के बाद बडा ही रमणीय स्थान आवेगा—ऐसा रमणीय स्थान, जहा चारो ओर हरे-भरे वृक्ष, फूल वाली झाडिया और कल-कल करते हुए झरने दिखाई देगे । वहा के वातावरण मे फूलो की सुवास बिखरी हुई मिलेगी । सभी ऋतुओ मे प्राप्त होने वाले फल वहा सदैव उपलब्ध रहेगे । ऐसे रमणीय क्षेत्र के किनारे पर एक बहुत ही कलात्मक ढग से बनी हुई बावडी दिखाई देगी । उस बावडी पर ही खडे होकर शीलावती को आवाज लगानी होगी । अगर आवाज लगाने से वह बाहर आ जायगी, तब तो अपना काम बन जायगा लेकिन अगर तीन बार आवाजे लगाने के बाद भी वह बाहर नही आई तो बडी कठिन परिस्थिति का सामना करना पड़ेगा जिसका सामना करना शायद साहस से भी परे की बात हो ।

सारी जानकारी लेने के बावजूद आनन्दसेन की इच्छा शक्ति कही से भी कमजोर नही हुई और उसने तैयारिया शीघ्र पूरी कर लेने पर ही बल दिया । अन्ततः मन्त्रियो के सामने कोई चारा नही

रहा और उन्होने सुरक्षा आदि की दृष्टि से सभी प्रकार की तैयारियां यथासमय पूरी करली ।

दूसरे दिन दल-बल सहित आनन्दसेन अपने गन्तव्य की दिशा मे रवाना हुआ । आनन्दसेन के मन मे अपूर्व उत्साह था । उसके दो कारण थे । एक तो वह अपने अजेय साहस को आजमाना चाहता था और यह दिखा देना चाहता था कि उसका साहस सदा अजेय ही रहेगा । दूसरे, वह यह सोचता था कि विवाहोपरान्त पुत्र की उत्पत्ति के पश्चात् यथासमय वह अपनी राज्य व्यवस्था का भार उसे सम्हलाकर आत्म कल्याण के मार्ग पर आगे बढ सकता है । तब वह अपनी सम्पूर्ण शक्ति साधु धर्म की साधना में लगा सकेगा । वैसे उस समय वह युवक था किन्तु फिर भी वासना के अन्धड उसके यौवन को परास्त नहीं कर पाये थे । वह सम्पूर्ण निष्ठा एव श्रम से राज्य व्यवस्था मे लगा रहता था और जनता को सर्वत: सुखी बनाने के उद्देश्य से विविध प्रवृत्तिया सचालित करता था । मन में रहे हुए अपने दोनो लक्ष्यो के कारण ही पूर्व दिशा मे आगे से आगे वढते हुए महाराजा आनन्दसेन का हृदय आन्तरिक आनन्द सरोवर मे हिलोरे ले रहा था ।

शीलावती की गुणसम्पन्नता का जो विवरण आनन्दसेन ने सुना था उससे भी उसका हृदय आनन्दित था कि यदि ऐसी पत्नी प्राप्त होती है तो उसके साथ से समग्र जीवन का भी यथोचित विकास हो सकेगा । कठिनाई उसे प्राप्त करने की है जिसे यदि वह जीत लेता है तो उसके बाद सब तरह से आनन्द ही आनन्द वरतेगा ।

मार्ग मे आने वाली विविध विपदाओ को सहन करते हुए आनन्दसेन और उसका दल निरन्तर आगे वढता रहा । अटवी के खतरो को भी उसने झेला और रमणीय क्षेत्र मे प्रवेश कर गया । वहां चलते हुए कुछ ही समय बाद उनकी नजर उस बावड़ी पर पड़ी । आनन्दसेन, मन्त्री और सभी सैनिक बावड़ी तक पहुंचे । सलखू नाइन द्वारा दिये गये निर्देश के अनुसार आनन्दसेन ने अपने सैनिको से कहा आप सभी तैयार रहे, क्योकि कोई खतरा सामने आवे तो उसका मुकावला करना पडेगा । अब मैं

बावडी की पाज पर चढ़कर शीलावती को आवाज लगाता हूं । इतना कहकर आनन्दसेन उस बावडी की पाज पर चढ गया ।

आनन्दसेन ने तब तेज आवाज लगाई—ओ शीलावती, तुम तुरन्त बाहर आ जाओ । मै तुम से विवाह करने का निश्चय करके ही यहा पहुंचा हू ।

शीलावती की मन्त्रवादिता यह थी कि ज्यो ही कोई वीर विवाह का प्रस्ताव लेकर इस बावड़ी तक पहुचता और उसे बाहर निकल कर आने के लिये आवाज लगाता तो पहली आवाज के बाद ही वह और उसके सभी सगी साथी घुटनो तक पत्थर के हो जाते । और फिर जब दूसरी आवाज भी निष्फल चली जाती तब

के बाद भी शीलावती बाहर निकल कर नही आती तथा वे सभी आगत व्यक्ति कठ तक पत्थर के हो जाते, जिससे सास तक लेना उनके लिये कठिन हो जाता । किसी तरह से मुकाबिला करना तो उनके वश मे रहता ही नही । तब उन्हे अपनी भूल मालूम होती और वे पछताते कि उन्होने ऐसा दुस्साहस व्यर्थ ही किया ।

आनन्दसेन की पहली आवाज निष्फल हो गई और वह अपने सभी साथियो सहित घुटनो तक पत्थर का हो गया । फिर भी उसने साहस को नही छोड़ा—आखिर अपने अदम्य साहस के बल पर ही तो वह वहा तक पहुचा था । उसने कडक कर दूसरी बार आवाज लगाई जिसका फल यह हुआ कि वे सभी कमर तक पत्थर के बन गये । फिर भी आनन्दसेन भयभीत नही हुआ और उसने तीसरी बार भी गर्जना करते हुए आवाज लगा ही दी । तब तो सभी कंठ तक पत्थर के हो गये । सास तक रूकने लगी, तब आनन्दसेन के मन मे पश्चाताप का विचार जगा कि उसने अपने मन्त्रियो की चेतावनी को क्यो नही मानी ? उसे यह भी अनुभव हुआ कि वास्तव मे सलखू नाइन ने उसे समाप्त करने का ही षड्यन्त्र रचा है । यहा तो अब साहस के प्रयोग का ही अवसर कहा बचा है ? अपनी प्रतिष्ठा तो धूल मे मिलेगी सो मिलेगी ही, लेकिन अब तो प्राणो के लाले पड गये है । घातक विपत्ति के उस दौर में आनन्दसेन ने अपने गुरु का नाम स्मरण भी भूल गया ।

उसी समय मे अपने आश्रम मे ब्रह्मानन्द योगी ने जो श्रेष्ठ

श्रावक का जीवन व्यतीत करते थे, ध्यान मुद्रा मे बैठे हुये थे। उनकी ध्यानमग्नता अचानक आनन्दसेन के उस कारूणिक दृश्य पर केन्द्रित हो गई। उन्होने अपनी ज्ञान दृष्टि मे जो कुछ देखा, वे स्तब्ध रह गये। उनका प्रिय शिष्ट संकट की घडिया गिन रहा है और निरूपाय खड़ा है। वे उस क्षण वैक्रिय लब्धि का प्रयोग कर आनन्द-सेन के पास पहुच गये लेकिन अदृश्य रहे। आनन्दसेन ने महसूस किया कि उसके गाल पर किसी ने जोरदार तमाचा लगाया है और फटकारती हुई आवाज आई कि नवकार मन्त्र का जाप कर तथा गुरु का नाम सुमर।

आनन्दसेन ने जब यह आवाज भी साफ-साफ सुनी कि पुकार शीलावती को यह कहकर कि गुरु का आदेश है, बाहर आजा, तब उसकी चेतना लौटी। गुरु की आवाज प्रत्यक्ष सुनकर उसका मन ग्लानि से भर उठा कि ऐसे सकट काल मे वह अपने श्रद्धेय गुरु ब्रह्मानन्द योगी को कैसे भूल गया? उसने उसके बाद एक पल भी बरबाद नही किया और नवकार मन्त्र तथा गुरु नाम का जाप करके जोर से आवाज दी—ओ शीलावती, गुरु का आदेश है कि बाहर आ जा।

इसी पहली आवाज के साथ भीतर बैठी शीलावती चौक उठी। अरे, यह भी इसी गुरु का शिष्य है जिसकी वह शिष्या है। उसका मन्त्र ढीला हो गया। तब पत्थरपने का असर आनन्दसेन सहित सभी लोगो के कठ से उतर कर कमर तक आ गया। ज्योही गुरु के आदेश की दूसरी आवाज आनन्दसेन ने लगाई कि कमर से घुटनो तक असर उतर आया और आनन्दसेन की तीसरी पुकार ने तो पत्थरपने के प्रभाव से सबको पूर्ण मुक्त कर दिया किन्तु दूसरी ओर शीलावती को भयाक्रान्त बना दिया कि उसका सारा मन्त्र-प्रभाव यो कैसे लुप्त हो गया है? आनन्दसेन के आनन्द का पार नही था कि उसकी डूबती हुई किश्ती को गुरु ने बचा ली है।

कभी हार न मानने वाली शीलावती के सामने जब हार इस रूप में आकर खड़ी हो गई तो वह क्षुब्ध होकर अपने मन्त्र बल से ब्रह्मानन्द योगी के पास पहुच गई है और बोली—गुरुदेव, मैंने आपसे ही मन्त्र विद्या सीखी है और यह कौन युवक है जो मुझे इरादे से डिगाने की सफल कोशिश कर रहा है वह भी आपके ही

नाम पर ? मै महल से बाहर उस युवक के सामने नहीं जाना चाहती हू । आपके नाम प्रभाव से ही मेरा मन्त्र बल प्रभावहीन हो गया है, वरना मै उस युवक को भी पहले आये वीरो की ही पक्ति मे खडा कर रही थी । अब आप ही बताइये कि मै क्या करू ?

ब्रह्मानन्द योगी ने समझाने के स्वर मे कहा—शीलावती, मैंने तुझे मन्त्र विद्या इसलिये सिखाई थी कि तुम दुनिया मे लोगों की भलाई करती, किन्तु तुमने तो उल्टा काम कर लिया । उसी मन्त्र विद्या से तुम अभिमान की चोटी पर चढ गई और आने वाले वीर पुरुषो को पत्थर की मूर्ति बनाने लग गई । तुम भी मेरी शिष्या हो और अभी आया हुआ युवक आनन्दसेन भी मेरा शिष्य है । उसकी जीवन रक्षा मेरा कर्त्तव्य था तो तुम्हे अभिमान की बुराई से हटाना भी मेरा कर्त्तव्य है । तुम अपने स्थान को लौट जाओ और अपनी रीति नीति मे सुधार करलो । उस अभिमानिनी को उस समय गुरु को श्रेष्ठ उपदेश भी भाया नही और वह निराश सी अपने महल मे लौट आई । महल मे उसे ऐसा अनुभव हुआ कि बाहर खडे युवक आनन्दसेन की उसको पुकारने की आवाज इस तरह गूज रही है कि उसका वहा ठहर पाना सभव नही रहा ।

क्रोध मे पैर पटकती हुई शीलावती तब बाहर निकल आई और आनन्दसेन के सामने आकर खडी हो गई । उसने तीखी नजर से आनन्दसेन को देखा और बोली—बाहर निकल आने के लिये मुझे क्यो पुकार रहे हो ? मेरे से क्या कार्य है तुम्हारा ? समझते नही हो कि मेरे पास कितनी शक्ति है ? शक्ति का एक बार चमत्कार देखकर भी अपने जीवन के खतरे को क्या समझा नही पाये हो ? यह तुम्हारा व्यवहार न तो तुम्हारे जीवन हित मे रहेगा, न ही सुखकारी । इसलिये अब भी चेत जाओ और वापिस लौट जाओ ।

आनन्दसेन तो तब आनन्दित भाव मे विचर रहा था, मुस्कुराते हुए कहने लगा—ओ, शीलावती, क्या अब भी तुम्हारा अभिमान समाप्त नही हुआ है ? मैंने तुम्हे पुकारा है तो मेरे गुरु ब्रह्मानन्द योगी की आज्ञा से और वे गुरु मेरे परम रक्षक हैं । उन्होने ही मेरी प्रारम्भ मे भी जीवन रक्षा की थी, मेरा पालन

पोषण किया और उनकी ही आज्ञा से मैं महाराजा बना हूं। क्या तुम मेरे गुरु की तेजस्विता को जानती नही हो ? वे चाहे, तो पल भर में तुम्हे ठिकाने लगा सकते हैं। किन्तु वे परम दयावान है। उनके नाम पर तुम्हें अपना जीवन सुधार लेना चाहिये। मै भी तुम्हारा शत्रु नही हू। तुम अपने अभिमान को छोडो और तब देखो कि तुम्हारा जीवन कितना सरल और सुखी बन सकता है ? यही अभिमान तुम्हारे जीवन को पूर्णतया नष्ट किये बिना छोड़ेगा नहीं, अतः इसी में तुम्हारा हित रहा हुआ है कि तुम्ही इस दुष्ट अभिमान को छोड़ दो।

मन्त्र विद्या की शक्तियों से तनी हुई शीलावती जब गुरु के उपदेश को भी तुरन्त पकड नही सकी तो भला वह आनन्दसेन की इन बातो को सहज भाव से कैसे ग्रहण कर लेती ? उसने कडकती हुई आवाज मे कहा—ओ युवक बढ-बढ कर बाते करने की जरूरत नही। मेरी मन्त्र शक्ति का अभी तक तो तुमने एक ही चमत्कार देखा है लेकिन अब तुम्हे ऐसे चमत्कार दिखलाऊंगी तुम अपना यह सब उपदेश भूल जाओगे। लो, तो अब सावधान हो जाओ और मेरे से टकराने का फल भुगतो।

हंसते हुए आनन्दसेन ने इतना ही कहा शीलावती, अभी तुम्हारा अभिमान मरा नहीं है और न तुम उसे मारने की कोशिश करना चाहती हो लेकिन तुम मेरा कुछ भी नही बिगाड सकोगी। गुरु का नाम ही तुम्हें सबक सिखायेगा और तुम्हारे अभिमान को मारेगा। जो कुछ मन में हो, कर डालो और तुम्ही गुरु के प्रभाव का अच्छी तरह अनुभव कर लो।

शीलावती पर इस कथन का भी कोई असर नही हुआ और वह एक के बाद दूसरे मन्त्र का प्रयोग आनन्दसेन पर करने लगी। आनन्दसेन तो मात्र गुरु के नाम का एकचित्त स्मरण करता रहा। शीलावती अपने सारे मन्त्रो का प्रयोग करते-करते थक गई लेकिन किसी भी मन्त्र का कोई प्रभाव प्रकट नही हो रहा था। जब वह थक गई तो उसने अपनी हार मान ली। उसने हार मान ली याने कि उसके अभिमान ने हार मान ली। अभिमान टूटा तो उसकी भावना जुड गई एक ओर गुरु के प्रति उसकी आस्था बलवती बन

गई तो दूसरी ओर उस आगत युवक के प्रति वह समर्पित सी हो गई जो गुरु प्रभाव से उस मन्त्रवादिनी के समक्ष अपराजेय बना खड़ा था।

आनन्दसेन ने अपने पैरों पर झुकी आई शीलावती को थाम लिया। शीलावती की आंखो से पश्चात्ताप के आसू झर रहे थे और वह कहती जा रही थी—गुरु नाम सबसे बडा होता है। मत्र बल के अभिमान मे मैं उन गुरु को ही भूल गई जिन्होने मुझे यह विद्या दी और उनकी ही मैं अवज्ञा कर बैठी। मै आपको अपना उपकारी मानती हूं कि आपने गुरु नाम स्मरण करके मेरे कुत्सित अभिमान पर चोट की और उसे तोड़ डाला। इस तरह आपने मेरा उद्धार करके मुझे नया जीवन दिया है। इस नये जीवन का स्वामी अब आपके सिवाय अन्य कौन हो सकता है? किन्तु सबसे पहले आप मुझे क्षमा प्रदान कीजिये। मै लज्जित हूं।

शीलावती को आश्वस्त करके आनन्दसेन बोला—शीलावती, आखिर तुमने अपने अभिमान को मार दिया तो तुम जी उठी हो—इसकी मुझे बहुत खुशी है। तुम्हे मैं क्षमा करूं - ऐसी कोई बात नही है। सच्ची क्षमा तो तुम्हे अपने दोनो के गुरुदेव ही प्रदान करेंगे। तत्काल तो मै तुम्हे एक ही निवेदन करना चाहता हू कि चारो ओर ये जो पत्थर की मूर्तियां खडी है, इनमे पुन: जीवन भर दो क्योकि ये सब तुम्हारे मिथ्या अभिमान के नाम पर कलंक रूप है। शीलावती ने तुरन्त अपने मंत्र बल से उन सभी पत्थर की मूर्तियो को यथारूप जीवित बना दिया वहा देखते-देखते हजारो की सख्या मे वीर पुरुष और सैनिक चलने फिरने लगे। एक मेला सा मच गया और उस वीरान जंगल मे आनन्दसेन के साहसिक प्रयोग से मगल का वातावरण छा गया। चारो ओर जय-जयकार की आवाजे गूजने लगी।

तब शीलावती को लगने लगा कि उसके मत्रो का चमत्कार तो कुछ नही था, आनन्दसेन के व्यक्तित्व का चमत्कार तो अनुपम है। उसे समझ मे आने लगा कि चमत्कार वह नही होता जो मनुष्यो को कष्टो मे धकेल दे बल्कि सही चमत्कार वह होता है जो मनुष्यो को उनके कष्टो से उबार दे। चमत्कार वह नही था कि उसने जीते-जागते इन्सानो को पत्थर बना दिये। वास्तव मे चमत्कार यह है कि

पत्थर की मूर्तियां पुनः हंसती खेलती सजीव प्रतिमाएं बन गई हैं। गुरुदेव ने ठीक ही कहा था कि मत्र विद्या का सत्प्रयोग मनुष्यो के हित में ही होना चाहिये । एक तरह से उसने अपनी मंत्र विद्या का दुरुपयोग किया, जिसके लिये उसने अपने आपको लज्जित और ग्लानिग्रस्त अनुभव किया । लज्जा और ग्लानि के इसी अंधकार में उसे आनन्दसेन का व्यक्तित्त्व एक चमकता हुआ प्रकाश स्तम्भ दिखाई दिया । इस दृष्टि ने उस समय उसके मन में एक आकाक्षा को जन्म दिया कि काश, यह प्रकाश स्तम्भ सदा सदा के लिये उसके जीवन को आलोकित करता रहे---उसे आत्म विकास का मार्ग दिखाता रहे ।

शीलावती के माता--पिता को जब ज्ञात हुआ कि शीलावती और आनन्दसेन परस्पर विवाह सूत्र मे बधने को इच्छुक है तो उन्होने अतीव हर्ष के साथ अपनी अनुमति दे दी । वे तो हर्ष और गौरव से अभिभूत हो गये कि उनकी हठी बेटी सुधर गई है और उन्हें आनन्दपुर के महाराजा आनन्दसेन जैसा वीर पुरुष जमाता के रूप में प्राप्त हो रहा है । तभी शुभ मुहूर्त मे दोनो का विवाह सस्कार सम्पन्न करा दिया गया । पत्थर की मूर्तियों से पुनः जीवन पाये हजारों व्यक्ति इस विवाह सस्कार में सच्ची खुशी के साथ सम्मिलित हुए ।

उधर आनन्दपुर मे जब यह उडती हुई खबर पहुंची कि आनन्दसेन और शीलावती का विवाह सम्पन्न हो गया है तो सलखू नाइन के पैरो तले की जमीन खिसक गई । उसका दुष्ट इरादा तो पूरा नही हुआ किन्तु अब तो उसकी जीवन रक्षा की सम्भावना ही नही रही थी । वह यह सोचकर ही काप उठी । दूसरो का अहित करने मे दुष्टो की हिम्मत बहुत होती है लेकिन अपने अहित की जब आशंका खड़ी हो जाती है तब उनकी हिम्मत पूरी तरह से छूट जाती है । सलखू को तब यही चिन्ता लग गई कि वह अपनी जिन्दगी किस तरह बचावे ? आखिर उसने आनन्दपुर से चुपचाप भाग जाने का ही तय किया । वह रातों-रात वहा से भाग कर चम्पानगरी पहुंच गई ।

इधर नव दम्पत्ति हजारो लोगो की जय- जयकार के साथ आनन्दपुर पहुंचे । आनन्दपुर के सभी नर नारी हार्दिक प्रसन्नता से

परिपूरित हो गये कि अब उनको अपने वीर महाराजा के साथ सर्व-गुणसम्पन्ना महारानी भी प्राप्त हो गई है । सम्पूर्ण नगर मे मनाये जाने वाले उत्सवो का अवलोकन करते हुए जब महाराजा आनन्दसेन और महारानी शीलावती राजमहल मे पहुचे तो आनन्दसेन ने सबसे पहले अपनी पत्नी से अपनी बहिन चम्पकमाला का परिचय कराया और उसकी विशेषताओ का उल्लेख किया । शीलावती भी प्रेमपूर्वक चम्पकमाला से गले मिली और उसके आशीर्वाद की कामना की ।

आनन्दसेन को तब सलखू का ध्यान आया और उसने अनुचरो से पूछा कि उसके गुरुदेव की बहिन सलखू नही दिखाई दे रही है। गुरुदेव की बहिन का उल्लेख सुनकर शीलावती चौकी, क्योकि वह जानती थी कि योगी ब्रह्मानन्द के कोई बहिन नही थी । तब शीलावती ने कहा—स्वामी, अपने गुरुदेव के तो कोई बहिन नही है। यह सलखू का आप जो उल्लेख कर रहे हैं, वह वास्तव मे कोई शत्रु नारी होनी चाहिये जो आपके जीवन के विरुद्ध षड्यत्र करने के दुष्ट निश्चय से यहा आई होगी, उससे अब आप सावधान ही रहे । तभी अनुचर पता लगा कर आये और बोले—राजन्, सलखू तो अपने स्थान पर नही मिली है । सैनिको का अनुमान है कि वह रातोरात शायद यहा से भाग निकली है । यह सुनकर सबने राहत की सास ली ।

शीलावती ने उस समय अपने पतिदेव से निवेदन किया—स्वामी, आपकी जीवन रक्षा की बात सर्वोपरि है । मेरी मत्र शक्ति उसके लिये सदा तत्पर रहेगी । कृपा करके आप मुझे बिना बताये न तो कही भी भोजन ग्रहण करे तथा न किसी अपरिचित स्थान पर पधारे । इतनी गम्भीर बात सुनकर भी आनन्दसेन हस पडा और विनोदी स्वर मे बोला—शीलावती, मै तुम्हारा पति हू । क्या मैं तुम्हारा अनुचर बनकर रहूगा ? तुम निश्चिन्त रहो, मुझे अपने साहस पर पूरा-पूरा भरोसा है । मंत्र विफल हो सकता है, साहस नही । मेरी जीवन रक्षा की क्या, तुम अपनी जीवन रक्षा की चिन्ता भी मुझ पर ही छोड दो । गुरुदेव ने मुझे भी आत्म विकास की कई विद्याए सिखाई है और उनके बल पर मै अपने कर्त्तव्यो का शुभ भावो के साथ पूर्णतया निर्वाह करने मे सक्षम हू । तब शीलावती

अपने पति के समक्ष नत मस्तक हो गई ।

इस प्रकार आनन्दपुर के राज परिवार मे एक नये युग का सूत्रपात हुआ । शीलावती ने अपने सद्गुणमय व्यवहार से न सिर्फ पति के मन को ही जीत लिया, बल्कि चम्पकमाला भी पूरी तरह से अपनी भाभी पर रीझ गई । यही नही, सारे नगर तथा राज्य मे भी गुणसम्पन्न राजपरिवार की प्रशसा होने लगी । आनन्दसेन पहले की तरह ही राज्य व्यवस्था तथा जनहित के कार्यो मे डूबा रहता था, लेकिन शीलावती भी उसे कभी उसके कर्त्तव्यो से विलग नही करती थी बल्कि उसे अधिक प्रोत्साहन देती थी । उनका विवाह जनहित मे किसी प्रकार से बाधक नही बना, फिर भी दोनो अपने वैवाहिक जीवन को अतीव आनन्द के साथ व्यतीत करने लगे ।

❀ ❀ ❀

: १८ :

दो बाते एक साथ घटी। इधर तो सलखू नाइन आनन्दपुर से भागकर चम्पानगरी पहुच गई तो उधर महाराजा चन्द्रसेन को जब आनन्दसेन की याद बहुत सताने लगी तब वे उससे मिलने चम्पानगरी से आनन्दपुर की तरफ चल पडे ।

सलखू नाइन ने चम्पानगरी पहुचकर सबसे पहले रानियो से मुलाकात की और उन्हे आनन्दसेन के अजेय साहस का परिचय दिया। वह कहने लगी—मैने आनन्दसेम की जीवन लीला समाप्त करने के अनेक उपाय किये । उसे सिह के मु ह मे धकेला और भयानक गरूड के घोसले पर भेज दिया लेकिन वह अपने अपूर्व साहस से सकुशल लौट ही नही आया बल्कि मेरे द्वारा मागी गई वस्तुए भी ले आया। मैने अन्तिम उपाय उसके मन मे शीलावती से विवाह करने की इच्छा जगा कर किया और सोचा कि अब उसका जीवानान्त होकर ही रहेगा क्योकि कोई भी वीर अब तक वहा से जीवित नही लौटा है। किन्तु मेरे आश्चर्य का ठिकाना नही रहा जब मैंने सुना कि उसने शीलावती को भी जीतकर उसके साथ विवाह कर लिया है। तब तो मै एक पल के लिये भी वहा नहीं ठहर सकी क्योकि तब मेरा जीवनान्त निश्चित था। अब मै वहा से भागकर यहा आ गई हू और आप सभी से निवेदन करना चाहती हू कि अब आप ही जो चाहे करे—यह काम किसी भी तरह मेरे वश का नही है। यह कहकर सलखू जब अपने घर चली गई तो रानियो ने सोचा कि अब आनन्दसेन को समाप्त करने के लिये उन्हे ही कुछ उपाय .. पडेगा। उन्होने परस्पर राय मिलाई कि अभी महाराजा कही बाहर पधारे है सो वहा से जब लौट आवे तो उन्हे दिखाकर आनन्दसेन को चम्पानगरी बुलाने का आग्रह . फिर उसके यहा आने पर कुछ कारगर उपाय काम मे ले

से मिले । शीलावती ने महाराजा चन्द्रसेन को देखा तो उसने उन्हे झुक कर नमस्कार किया । इस पर चन्द्रसेन ने भी उसे खुले दिल से आशीर्वाद दिया और उसके सुखद व दीर्घ जीवन की कामना की।

महारानी शीलावती बडी विचक्षण थी । उसने पहली दृष्टि में ही अनुमान लगा लिया कि ये महानुभाव जिन्हे चम्पानगरी का महाराजा बताया जा रहा है, निश्चित रूप से आनन्दसेन के पिता श्री है । यह निष्कर्ष उसने दोनो की आकृतियो तथा गुणों का मन ही मन सूक्ष्म मिलान करके निकाला था । इस विचार से उसने महाराजा चन्द्रसेन की बहुत ही भक्तिभाव से सेवा की । शीलावती के ऐसे सद्‌व्यवहार ने चन्द्रसेन के मन मे आनन्दसेन तथा चम्पकमाला से भी ऊंचा स्थान दे दिया । वे मन ही मन आनन्दसेन को सौभाग्यशाली समझने लगे जो ऐसी सुरूपा गुणसम्पन्ना पत्नी प्राप्त करके भी अपने जनहित सम्बन्धी कर्त्तव्यो पर पूरी निष्ठा एवं सजगता से डटा हुआ है ।

महाराजा चन्द्रसेन को आनन्दपुर मे रहते हुए ऐसा प्रतीत होता था कि जैसे वे अपने ही परिवार मे रह रहे हो और उनके स्नेह से इस तरह भीजे हुए हो कि उनसे विलग होना ही नहीं चाहते । क्योंकि उस समय तक की उनकी जानकारी तो यही थी कि आनन्दसेन उनके पड़ोसी राज्य का युवा शासक है और उनके प्रति उनका ही नही, उसकी बहिन तथा अब उसकी पत्नी का पूर्ण आदर भाव है । उनका वश चलता तो वे सदा के लिये आनन्दपुर ही रह जाते किन्तु बहुत दिन रह जाने के बाद जब चम्पानगरी के राज्य कर्त्तव्यो का उन्हें स्मरण हो आता तो उन्हे वहां से प्रस्थान करने का निश्चय करना ही पड़ता । इस बार आनन्दपुर छोडना उनके हृदय के लिये बड़ा कठिन हो रहा था फिर भी एक दिन वे भारी मन से वहां से प्रस्थान कर ही गये ।

किन्तु चम्पानगरी पहुंच कर महाराजा चन्द्रसेन के मन को उस समय बड़ा सुख मिला जब ग्यारह रानियो ने मिल कर महाराजा से यह आग्रह भरा अनुरोध किया कि वे आनन्दपुर के महाराजा आनन्दसेन को सपरिवार चम्पानगरी मे बुलावे और हमें उनके दर्शन पाने का अवसर प्रदान करे । जब आप हमेशा उनके

व्यवहार की सराहना करते रहते है तो हम भी उनके स्नेह से आभारी होना चाहती है । अव तक आप ही वहा पधारते रहे हैं, किन्तु जव उन्हे भी यहा आमन्त्रित करेंगे तो यह स्नेह की धारा अधिक प्रगाढ वन सकेगी । उन रानियो के इस अनुरोध से चन्द्रसेन को वडी प्रसन्नता हुई । उन्होने उत्तर दिया—मैं स्वय महाराजा आनन्दसेन को सपरिवार अपनी राजधानी मे आमन्त्रित करने की इच्छा कर रहा था किन्तु अव तुम्हारे अनुरोध से तो शीघ्र ही इस इच्छा की मैं पूर्ति करना चाहूगा । किन्तु एक वात जरूर कह देना चाहता हूं कि आनन्दसेन का सम्मान यहा पर सुरक्षित रहना चाहिये । कोई ऐसी अप्रिय घटना न घटने पाए कि जिससे मेरी प्रतिष्ठा को धक्का लगे । इस पर तो उन रानियो के मन मे कपट और वाहर हर्ष दिखा कर एक स्वर से कह दिया कि वे निश्चिन्त रहें—उनकी ओर से महाराजा आनन्दसेन का भव्य स्वागत किया जायगा । तव महाराजा ने आश्वासन दिया कि वे शीघ्र ही महाराजा आनन्दसेन को सपरिवार अपने यहा आमन्त्रित करेंगे ।

राज-काज से समय निकाल कर महाराजा चन्द्रसेन यथासाध्य शीघ्र इस हेतु आनन्दपुर पहुचे । उन्होंने आनन्दसेन को सपरिवार चम्पानगरी आने का निमन्त्रण दिया और आग्रह किया कि सवकी इच्छा को मान देते हुए वह अपने भ्रमण का कार्यक्रम वनावे । निमन्त्रण स्वीकार करने से पहले आनन्दसेन ने इस कार्यक्रम के लिये चम्पकमाला और शीलावती से भी विचार विमर्श किया जिन्होने गम्भीर दृष्टि से सोच कर उस समय चम्पानगरी नही जाने की सलाह दी क्योकि उनका अनुमान था कि वहा किन्ही दुष्ट व्यक्तियो द्वारा उसके प्राणो के विरुद्ध कोई षड्यन्त्र हो सकता है । किन्तु आनन्दसेन का उत्तर यह था कि मैने महाराजा को वचन दे दिया है अत जाना अनिवार्य है । इस पर शीलावती ने सुझाव दिया कि फिर आनन्दसेन अकेले ही जाना स्वीकार करें, सवको साथ न ले जाये क्योकि यही कार्यक्रम हितकारी रहेगा । इस पर आनन्दसेन ने अपने चलने की वात कह कर महाराजा चन्द्रसेन से निवेदन किया कि चम्पकमाला एव शीलावती स्वय ही आपके दर्शन करने के लिये यही आ रही है । तभी चम्पकमाला और शीलावती ने कक्ष मे प्रवेश किया तथा महाराजा को प्रणाम कर उनका सत्कार

किया । चन्द्रसेन ने भी आशीर्वाद देकर उनकी कुशल क्षेम पूछी। फिर चम्पानगरी के निमन्त्रण की बात चली तो दोनो ने नम्रता-पूर्वक कहा—आप तो हमारे लिये पिता तुल्य है। आपके वहा चल कर हमे बहुत ही प्रसन्नता होती किन्तु इस समय हम यहा चलने की स्थिति मैं नही है अतः आप हमे क्षमा करे। महाराजा ने उनकी असमर्थता पर खेद व्यक्त किया।

महाराजा चन्द्रसेन के साथ तब केवल आनन्दसेन के ही जाने का कार्यक्रम बना। प्रस्थान से पूर्व शीलावती ने आनन्दसेन से कहा कि आप यहां से जब भी रवाना हो मुझे निश्चित समय वता दीजियेगा तथा चम्पानगरी पहुचने के अनुमानित समय का भी संकेत दे दीजियेगा। आप कब और कैसा भोजन करेगे इसकी जानकारी भी मुझे चाहियेगी ओर आप वहा एक दिन से अधिक न रूके। आनन्दसेन ने यह बात सुनी, लेकिन उस पर खास ध्यान नही दिया। जब आनन्दपुरी से रवाना हुआ तो वह समय भी शीलावती को सूचित करवाना भूल गया। उसने तो गरूड और शेर बच्चे को साथ मे लिया तथा महाराजा चन्द्रसेन के साथ हो लिया।

चम्पानगरी पहुचने पर वहां के नागरिको ने महाराजा आनन्दसेन का हार्दिक स्वागत किया। सारे नगर मे आनन्द छा गया और स्थान-स्थान पर उत्सव आयोजित किये जाने लगे। इसी बीच आनन्दसेन को याद आया कि उसने शीलावती के निर्देश का कोई पालन नही किया है। इससे उसे चिन्ता हो आई कि उसके निर्देशो का कुछ न कुछ महत्त्व अवश्य रहा होगा। तव उसने द्रुतगामी गरूड पक्षी के गले मे सन्देश लगाकर उसे शीलावती के पास भेजा। वह तेजी से उडता हुआ कुछ ही समय मे शीलावती के पास पहुच गया। शीलावती ने उस सदेश को सावधानी से पढा और अपनी सूचना लिखकर गरूड पक्षी को वापिस चम्पानगरी रवाना कर दिया।

आनन्दसेन के स्वागत मे भोज की तैयारी होने लगी। दोनो महाराजा अपने सगी साथियो के साथ भोजन करने के लिये बैठे। भोजन रनिवास मे उन ग्यारह रानियो की देख-रेख मे वनाया गया

था तथा वही से भोजन प्रत्येक व्यक्ति के लिये थालो मे परोस कर वाहर भेजा जाने लगा । प्रत्येक थाल मे चार–चार लड्डू रखे हुए थे । लड्ड दीखने मे भी इतने आकर्षक थे कि सबकी नजरे उन लड्डुओ पर टिक गई थी ।

जैसे ही सव भोजन करने को तत्पर हुए ठीक उसी समय एक आश्चर्यजनक घटना घटी । आकाश मार्ग से वहुत ही तेज गति से उड़ता हुआ एक पक्षी (चील) वहा आया और सबके देखते-देखते वह आनन्दसेन के थाल के चारो लड्डू उठा कर वापिस उड गया । देखने वाले दातो तले अगुली दवा कर देखते रहे कि कैसे यह पक्षी राजमहल के भीतरी कक्ष मे आ पहुचा और किस कारण केवल आनन्दसेन के थाल के ही लड्डू उठा कर तुरन्त वापिस उड गया ? सामान्य दर्शक तो इस घटना पर आश्चर्य ही करते रहे, किन्तु ग्यारह रानियो ने घोर निराशा से अपने सिर पीट लिये । क्योकि आनन्दसेन की जीवन लीला समाप्त करने का जो घातक उपाय उन्होने आजमाया था, वह यो निष्फल हो गया ।

आनन्दसेन भी इस घटना को नही समझ पाया । शीलावती ने सलामण दी थी कि वह चम्पानगरी मे एक दिन से अधिक नही रुके, अत वह लौटने के लिये तैयार हो गया । तव महाराजा चन्द्रसेन वहुत ही भाव विह्वल हो गये और वे भी आनन्दसेन को पहुचाने के वहाने पुन साथ-साथ आनन्दपुर पहुच गये । वहा पहुचने पर चम्पकमाला तथा शीलावती ने दोनो का स्वागत किया एव चम्पानगरी का वृत्तान्त पूछा । आनन्दसेन ने अपनी यात्रा का विवरण सुनाया किन्तु पक्षी द्वारा उसके थाल के चारो मोदक ले जाने वाली घटना के रहस्य से उसने अपनी ना जानकारी जाहिर की । यही वात महाराजा चन्द्रसेन ने भी वताई । किन्तु जव वे ही चारो लड्डू शीलावती लेकर उनके सामने आई तो उनके आश्चर्य की सीमा नही रही । वे देखते ही रह गये कि वे ही लड्डू यहां कैसे पहुच गये और इनमे क्या रहस्य छिपा हुआ है ? वे शीलावती से उन लड्डुओ का रहस्य जानने के लिये आतुर हो उठे ।

महाराजा चन्द्रसेन एव आनन्दसेन की आतुरता पर शीलावती

को मन ही मन हंसी भी आ रही थी । और चन्द्रसेन की दशा पर दु:ख भी हो रहा था । पर उसने अपने मन को दृढ करके महाराज चन्द्रसेन से निवेदन किया । अभी आप विश्राम करे । समय आते पर सारा रहस्य आपको ज्ञात हो सकेगा ।

महाराजा चन्द्रसेन विश्राम करने विशेष अतिथि गृह जो कि राजमहल के अन्तर्गत ही था, चले जाते है । आत्मीय भावना एव शिष्टता के तौर पर आनन्दसेन भी उनको पहुंचाने वहां तक साथ-साथ जाता है । वहां उन्हें पहुंचाकर आनन्दसेन शीघ्र शीलावती के पास पहुंचा । और कहने लगा तुम भी कैसी औरत हो कि हमारे को नये-नये आश्चर्य में डालती रहती हो । तुम लड्डुओ का रहस्य बताने के लिये महाराजा चन्द्रसेन को टाल सकती हो । पर मुझको नहीं—मै तो तुम्हारे से वह रहस्य आज जानकर ही रहूंगा ।

शीलावती ने स्तिमित मुस्कान के साथ कहा - स्वामी ! आपसे मैं कोई बात छिपाना नही चाहती । मै आपको पूरा रहस्य बताऊंगी पर अभी नहीं क्योकि अभी समय का परिपक्व नही हुआ है । अभी तो आप इतना ही पर्याप्त समझे कि जिन बाबा ब्रह्मानन्द के आप शिष्य है मैं भी उन्ही की शिष्या हू । यह सब उन्ही की कृपा का सुफल है ।

शीलावती ने आगे कहा पतिदेव, मेरी एक अभिलाषा है इतना कहकर शीलावती चुप हो, आनन्दसेन की तरफ देखने लगी । आनन्दसेन ने शीलावती को चुप देखकर कहा—प्रिय ! तुम चुप क्यो रह गयी । क्या तुझे मुझ पर विश्वास नहो हो रहा है । जो तुम अपनी अभिलाषा व्यक्त करने में संकोच कर रही हो । तुम निश्चिन्त होकर अपनी भावना व्यक्त करो । मै तुम्हारी इच्छा को पूर्ण करने का हर सम्भव प्रयास करूंगा ।

आनन्दसेन से इस प्रकार उत्तर पाकर शीलावती पुलकित हो उठी । वह कहने लगी नाथ, मै धन्या हूं, कृत्य पुण्या हू जो आपको पति रूप मे प्राप्त कर सकी हूं । आप पर मुझे किंचित् मात्र भी अविश्वास नही है । पर मैने सोचा कही आप मेरी इच्छा को विनोद की संज्ञा न दे दे । इसलिए मै अपनी अभिलाषा व्यक्त करते-करते

रुक गयी । पर जब आपने मुझे आश्वस्त किया है, तो मै निर्भयता पूर्वक आपसे निवेदन करती हू कि चम्पानगरी की समस्त प्रजा आवाल गोपाल सहित महाराज चन्द्रसेन को एक भोज दिया जाय । यही मेरी चाहना है ।

शीलावती की अचिन्त्य माग को सुनकर आनन्दसेन आवाक् हो उसको निहारने लगा। सहसा उसके मु ह से कोई शव्द ही नही निकले । तव शीलावती ने ही पुनः बोलना प्रारम्भ किया और कहा – नाथ ! आप विचार मग्न क्यो हो गये । क्या मेरी यह माग आपको उचित नही लगी ? आनन्दसेन ने मौन भग करते हुए कहा - प्रिय ! रजाई जितनी लम्वी हो उतने ही पैर पसारने चाहिये । तुम्हारी भावना का समादर करता हू । पर सम्पूर्ण चम्पा नगरी के नागरिको सहित महाराजा चन्द्रसेन को भोज देना कोई मामूली वात नही है । उसके लिये पर्याप्त समय एव साधन सामग्री की आवश्यकता होगी । आनन्दपुर अभी उतना सुविशाल राज्य कहा है, जो वह इस प्रकार का आयोजन कर सके ? शीलावती ने व्यवस्था सम्वन्धी सम्पूर्ण उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेते हुए कहा – व्यवस्था सम्वन्धी आप किसी प्रकार का विचार नही करे । वह सारी जवावदारी मै अपने ऊपर लेती हू । साथ ही आपको यह विश्वास भी दिलाती हू कि आपके यश मे कही भी न्यूनता नही आने दू गी । आप से तो मेरा मात्र इतना ही निवेदन है कि आप इसके लिये महाराज चन्द्रसेन को तैयार कर दीजिये । आप उनसे आग्रह पूर्वक कहेगे तो मुझे पूर्ण विश्वास है कि वे आपके आग्रह को कभी नही टालेगे ।

आनन्दसेन शीलावती के मुंह से निकलने वाले एक-एक शव्द की गहराई को मापता हुआ सुन रहा था । साथ ही उसने शीलावती की आखो मे झाककर देखा तो वहा पूर्ण आत्म विश्वास की झलक दृष्टिगत हुई अत. शीलावती की भावनानुसार महाराज चन्द्रसेन को भोज देने मे आनन्दसेन भी सहमत हो गया ।

आनन्दसेन वहा से उठकर जाने को तैयार हुआ ही था कि इतने मे चम्पकमाला भी वहा पहुंच गयी । वह कहने लगी क्या चले है भैया ? क्या मेरा आना उचित नही रहा, जो आप जाने लगे । आनन्दसेन ने चुटकी लेते हुए कहा कि जाऊं नही तो क्या करू ।

नीतिकारो ने तिरिया हठ को जबरदस्त बताया है। पहले तुम एक थी। पर अब शीलावती के आ जाने से दो हो गयी हो। पहले भी तुम्हारी हठ के कारण मुझे इससे विवाह करना पडा और अब…।

इतना कहकर आनन्दसेन तीक्ष्ण दृष्टि से शीलावती की ओर देखने लगा तब शीलावती ने अवशेष वाक्य पूर्ण करते हुए कहा अब मेरे आग्रह से इनको महाराजा चन्द्रसेन को भोज देना पडेगा।

चम्पकमाला कब चुप रहने वाली थी ? वह भी चहक कर बोली, नही ! मै इससे सहमत नही हू। बार-बार चन्द्रसेन महाराज को ही केवल भोज देना कहा तक उचित है। यदि महाराज चन्द्रसेन को भोज ही देना हो तो उनको राज परिवार सहित आमत्रित कीजिये। अन्यथा भोज देने मे कोई मजा नही आयेगा।

आनन्दसेन जो अब तक ननद-भाभी की बात को सुन रहा था बोला—अरे केवल महाराज चन्द्रसेन को ही भोज देने की बात होती अथवा उनके परिवार तक की माग होती, तब तो कोई बात ही नही थी पर तुम्हारी भाभी की माग तो यह है कि चम्पानगरी के समस्त नागरिक आबाल गोपाल सहित महाराज चन्द्रसेन को भोज दिया जाय ? आनन्दसेन की बात पूर्ण होते ही चम्पकमाला ने जोर देते हुए कहा—भाभी ने यह माग आपके सामने पहली बार की है। आपका यह कर्त्तव्य हो जाता है कि भाभी की माग को आप तत्काल स्वीकार करे। मै भी भाभी की माग से सहमत हू।

स्वीकार करने के अलावा और चारा ही क्या है ? कहते हुए आनन्दसेन ने कहा इसलिए ही तो मै कह रहा था कि अब तुम दो हो गयी हो। इतना कहकर महाराज आनन्दसेन विशेष अतिथि गृह की ओर प्रस्थान कर गये। वहा चन्द्रसेन उनकी बडी बेताबी मे इन्तजार कर रहा था।

आनन्दसेन ने विशेष अतिथि मे गृह प्रवेश करते ही महाराज के कुशल मगल की पृच्छा की और राज्य व्यवस्था एव राजनीति सम्बन्धी बातो मे मशगूल हो गये।

दूसरे दिन महाराज चन्द्रसेन आनन्दसेन आदि भोजन कर रहे थे। बीच-बीच मे बातचीत का दौर भी चल रहा था। बात ही

वात मे आनन्दसेन ने महाराज चन्द्रसेन को सम्बोधन कर कहा—राजन् ! शीलावती एवं चम्पकमाला की हार्दिक अभिलाषा है कि वे आपको चम्पानगरी के समस्त नागरिको आबाल गोपाल सहित सस्नेह भोज दे । उसमे आपकी स्वीकृति चाहती है । अत आप उनको इसकी स्वीकृति देकर अनुगृहीत करे । महाराज चन्द्रसेन ने गम्भीर होते हुए कहना प्रारम्भ किया, निश्चय ही शीलावती एवं चम्पकमाला की भावना स्तुत्य है । पर आप स्वय अनुभव करे । यह कार्य अव्यवहार्य एव असम्भव सा है । क्योकि राज्य को एक दम सूना करना सुरक्षा की दृष्टि से कैसे उपयुक्त रह सकता है । तथा राज्य के सारे नागरिक पहुच भी कैसे सकते है ? मुझे भोज देने की इनकी भावना तो समय-समय पर फलित होती ही रहती है । मै एक बार नही कई बार यहा आ चुका हू । अत चम्पानगरी के समस्त नागरिको सहित भोज का आमत्रण स्वीकार करना गम्य नही लगता ।

"नगर की सुरक्षा की आप तनिक भी चिन्ता न करे उसका उत्तरदायित्व मै लेता हूं ।" आनन्दसेन ने जैसे यह कहा शीलावती ने कहा, "चम्पा नगरी के व्यक्तियो को यहा तक लाने की सुविधा आप मेरे पर छोड दे ।"

महाराज विचार मग्न हो गये । अव आनन्दसेन ने कहा - आप किसी तरह का विचार न करे । आपके यश गौरव मे कही भी आंच नही आवेगी । चम्पानगरी के एक-एक बच्चे की सुविधा का पूरा ध्यान रखा जायेगा ।

महाराज ने कहा, यह कार्य वड़ा दुरूह है । अत इस विषय में मै अपने मत्रियो से परामर्श करके ही आपको कुछ जवाव दे सकता हू । यद्यपि आप मेरे परम हितैषी है । फिर भी राज्य मर्यादानुसार इस विषय में मुझे मत्रियो से परामर्श करना योग्य रहता है ।

"आपका कथन न्याय सगत है । अत: हम आपको यह आग्रह नही करेगे कि आप यही स्वीकृति दे दे । पर हां आप जव भी यहां से प्रस्थान करेगे तव हमारा प्रतिनिधि आपके साथ रहेगा । वहां पहुंचकर उस प्रतिनिधि के माध्यम से आप स्वीकृति एवं अनुकूल तिथि का संकेत भेजने का अवश्य ही अनुग्रह करे । यह हमारा

वार-बार आग्रह है । क्यो सही है न शीलावती" कहकर आनन्दसेन चुप हुआ । तो शीलावती ने कहना प्रारम्भ किया, "आपका कथन अक्षरश. सत्य है हम तो इन्हे पूज्य पिताजी के रूप मे मानते हैं। इसलिए हमारी छोटी सी मांग इनको स्वीकार करनी ही है । मै तो इनकी तरफ से आज ही स्वीकृति मान रही हूं । राजनीति के अनुसार औपचारिकता की पूर्ति भले बाद मे हो ।"

शीलावती के इस कथन से महाराज चन्द्रसेन कहने लगे, यह तो पुत्रवधू से भी अधिक अधिकार जमाने लग गयी है ।

चम्पकमाला जो अब तक चुप थी महाराज के चुप होने पर कहने लगी । आपने हमको मुह जो लगा रखा है । इस पर सभी के चेहरे पर मधुर मुस्कान बिखर गयी । भोजनोपरान्त विश्राम करके महाराज चन्द्रसेन चम्पानगरी जाने की तैयारी करने लगे । महीप आनन्दसेन ने अपना विशेष प्रतिनिधि भी उनके साथ कर दिया ।

भूधर चन्द्रसेन ने चम्पानगरी पहुचकर विशिष्ट व्यक्तियो की एक गुप्त मीटिग बुलायी । उसमे आनन्दसेन द्वारा दिये गये आमन्त्रण पर विचार विमर्श चलने लगा ।

एक सभासद ने शकित हृदय से अपने विचार प्रकट करते हुए कहा—राजन् ! राजनीति के दायरे मे यदि चितन करे तो पड़ौसी राजा आनन्दसेन द्वारा दिये गये आमन्त्रण के सन्दर्भ में कई प्रश्न उपस्थित हो जाते है । जैसे कि—महाराज आनन्दसेन द्वारा भोज देने का उद्देश्य क्या है ? चम्पा के समस्त नागरिको को भोजन क्यो देना चाह रहे है । क्या इसके पीछे कही कूटनीति तो काम नही कर रही है । चम्पानगरी के नागरिक भोजन के निमित्त आनन्दपुर पहुचे तो आनन्दपुर के राजा को चम्पा पर अधिकार जमाने का अच्छा मौका मिल जाय ? आदि

सभासद द्वारा उपस्थित प्रश्नो पर सभी गहराई से चितन करने लगे । कई उनका समर्थन भी करने लगे तो कई यो भी कहने लगे—धराधीश ! महाराजा आनन्दसेन कही आपकी हसी करवाना तो नही चाहते ? क्योकि आनन्दपुर अभी नया-नया बसा है । उसमे इतने साधन नही है कि वे चम्पा के समस्त नागरिको के भोजन की

व्यवस्था कर सके । अत इसमे गम्भीर चितन की आवश्यकता है । महीधर चन्द्रसेन सबकी बात को बडे ध्यान से सुन रहे थे । एव प्रत्येक व्यक्ति के चेहरे पर आने वाले उतार चढाव का निरीक्षण भी कर रहे थे । इसके साथ-साथ वे आनन्दसेन की भावना एव राजनीति का तुलनात्मक समीक्षण भी कर रहे थे ।

अवनिपति ने प्रधान आमात्य की ओर निहारा तो पाया वे गम्भीरता के साथ अपने आसन पर जमे हुए है । महाराज ने उनको सम्बोधन कर कहा - महामात्य आप चुपचाप क्यो बैठे हैं । आप भी अपने विचारो से सभा को लाभान्वित कीजिये ।

महामत्री ने कर युगल को शिर पर लगाते हुए विनम्र शब्दो मे निवेदन करना प्रारम्भ किया । नरनाथ ! अनेक महानुभाव अपने विशिष्ट भावो को सभा मे प्रस्तुत कर ही रहे है । मै भी उन भावो को श्रवण कर ही रहा था । श्रवण के साथ-साथ चिन्तन भी तीव्र गति से चल रहा था । एक तरफ इन सभी महानुभावो की भावोक्ति से इनका राष्ट्र प्रेम राष्ट्र भक्ति पर गौरव हो रहा था तो दूसरी ओर महाराज आनन्दसेन द्वारा दिये गये आमन्त्रण पर चितन चल रहा था । यद्यपि राजनीति के धरातल पर चिन्तन किया जाय तो उनके द्वारा दिया गया आमन्त्रण कई शकायें पैदा कर देता है । तथापि व्यक्तिगत जीवन के आधार पर जब मैं चिन्तन करता हू तो मुझे कुछ ओर ही सूझता है ।

महाराज ! आप स्वय एक बार नही वरन् कई बार उनके मेहमान बन चुके हैं । उनकी पुण्य प्रभा से भी आप भलीभाति परिचित है । वे विस्तारवादी नीति के राजा नही हैं । बल्कि जहा तक उनके विषय मे सुना-समझा है वे बडे मिलनसार व्यक्ति हैं । एवं प्रभु महावीर का उद्घोष जीओ और जीने दो को जीवन मे लेकर चलते है । ऐसे व्यक्ति एकाएक आक्रमक नही हो सकते । हा, आक्राता का प्रतिकार कर सकते हैं । किन्तु अपनी तरफ से हिंसक प्रवृत्ति को बढावा ऐसा नही दे लगता ।

यदि उनको चम्पानगरी के प्रति ही लगाव होता तो वे यदि चम्पा को हडपना ही चाहते तो वे कभी के इसमे सफलता प्राप्त कर

सकते थे । आपको याद होगा । जब आप शिकारी की पोशाक मे आनन्दपुर के आरक्षक दल द्वारा पकड़े गये थे तो उस समय वे आपको बन्दी बना सकते थे और चम्पा को भी हथिया सकते थे । लेकिन उन्होंने वैसा नहीं किया । बल्कि आपके प्रति बड़े उदार दिल से पेश आये थे । इतना ही नहीं वे आपको अपना पूज्य मानकर चल रहे थे । अतः मेरा जहा तक निजी विचार है । मैं यह मानता हू कि उनके द्वारा दिया गया निमन्त्रण अवश्य ही कुछ शुभ सन्देश के रूप में साबित हो सकता है ।

आनन्दपुर में इतने व्यक्तियो की व्यवस्था के विषय में जो आशंका की जा रही है उसे भी वहां के सीमित साधनो के आधार पर नकारा नही जा सकता है । पर दूसरी तरफ जब उनके द्वारा घटित अनहोनी घटनाओ को सुनते है तो वह आशका भी निर्मूल हो जाती है । अतः इस दृष्टि से उनके आमत्रण को स्वीकारने मे मुझे कोई अनौचित्य प्रतीत नही होता ।

इतना कहकर महामात्य अपने आसनारूढ हो गये । सबकी निगाह अब महाराज की ओर लगी हुई थीं । महीप ने गम्भीर स्वर मे अपना वक्तव्य प्रारम्भ किया । सभासदों, मै आप सभी महानुभावो के भावो को श्रवण कर रहा था । आप सबकी निष्ठा देश के लिये ही हितकर है । प्रत्येक विषय में तुलनात्मक दृष्टिकोण से चिन्तन करना चाहिये । कई प्रसंग ऐसे होते हैं । जिन पर केवल राजनीति से चिन्तन करना कभी-कभी नुकसानदेह साबित हो जाता है । इसलिए ऐसे प्रसंगों पर सर्वांगीण चिन्तन अपेक्षित रहता है ।

अभी आप सब ने महामात्य के विचारो को भी सुना है । उन्होंने अपने चिन्तन मे राजनीति एवं व्यावहारिक दृष्टि का समन्वय किया है । उन्होने महाराजा आनन्दसेन के विषय मे जो कुछ भी कहा है वह अतिश्योक्ति पूर्ण नही, यथार्थ है । मैंने स्वयं उनको निकट से परखा हैं । यद्यपि बाह्य बन्धन से उन्होने मेरे को बन्दी नही बनवाया तथापि मैं यह मानता हूं कि भावात्मक दृष्टि से मैं उनके बन्धन में हूं । उनमें सरलता, सौम्यता, सद्-व्यवहारिकता आदि ऐसे गुण हैं कि उससे मै अत्यन्त प्रभावित हूं । मुझे आज तक उनमे विस्तारवादी नीति की 'बू' नजर नही आयी । अत उनके

द्वारा दिया गया सस्नेह आमन्त्रण ठुकराना उचित प्रतीत नही होता ।

समागत आनन्दपुर के प्रतिनिधि को आमन्त्रण की स्वीकृति के साथ अनुकूल तिथि का संकेत भी दे दिया गया । प्रतिनिधि ने जय विजय करते हुए महाराजा चन्द्रसेन का आभार व्यक्त किया ।

जय हो, विजय हो, महाराजा आनन्दसेन की जय हो, विजय हो कि ध्वनि के साथ चम्पानगरी से लौटा प्रतिनिधि राजसभा मे प्रवेश करता है । महाराजा आनन्दसेन उसके प्रफुल्लित वदन को देख कर ही समझ गये कि वह कार्य मे सफलता प्राप्त करके आया है । क्योकि वे जानते थे । व्यक्ति जब साधारण कार्य मे भी सफलता पा लेता है तो वह हर्षित हो जाता है । वही यदि दुरुह कार्य मे सफलता प्राप्त कर ले तो उसकी खुशी का कहना ही क्या ?

प्रतिनिधि ने महाराजा का अभिवादन कर चन्द्रसेन राजा का संदेश सुनाया । यह सदेश सुनकर सभा स्थित सभासद अवाक रह गये । क्योकि उन्हे इस आमन्त्रण की जानकारी नही थी । तब महीप आनन्दसेन ने सभासदो को कहा कि हमने ही यहा से महाराजा को आमन्त्रित किया था । पर महाराजा यहा हा या ना कहने की स्थिति मे नही थे, अत. अपना प्रतिनिधि उनके साथ भेजा गया था ताकि वह वहा का सदेश शीघ्र यहां ला सके ।

सभासदो मे से एक ने कहा, कृपानाथ ! सदेश मे चम्पानगरी के नरेश ने जो तिथि का सकेत दिया है वह तो बहुत नजदीक है । इतने कम समय मे इतने व्यक्तियो के भोजन की व्यवस्था कैसे बन सकेगी ?

आपका कथन उचित है पर इस विषयक व्यवस्था का सारा भार महारानी शीलावती ने अपने ऊपर ले रखा है । अतः अपने को विशेष चिन्ता करने जैसी कोई बात नही रही । कहते हुए आनन्दसेन ने उस बात को वही समाप्त कर दी । शीलावती ने व्यवस्था का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया है । यह जानकर सभी सभासद आश्वस्त हुए क्योकि वे शीलावती की शक्ति से भली-भांति परिचित थे ।

महाराजा आपने जो आज्ञा दी तदनुसार मैं आनन्दपुर की हल-चल पर निगाह रखकर आया हूं। आपको दिये जाने वाले भोज की तिथि अत्यन्त समीप होते हुए भी वहां तद्विषयक अभी तक कोई तैयारिया दृष्टिगत नही हो पाई हैं।

महाराजा चन्द्रसेन द्वारा भेजे गये पत्र जासूस विभाग के व्यक्ति ने आकर उपर्युक्त रिपोर्ट दी। उसकी रिपोर्ट सुनकर महीधीश ने अपने प्रधान आमात्य को तत्काल बुलाया और आनन्दपुर की रिपोर्ट से अवगत कराया। वे दोनों परस्पर में चिन्तन कर ही रहे थे कि द्वार-रक्षक ने आकर सूचना दी कि आनन्दपुर से एक दूत आया है। वह नरनाथ की सेवा मे उपस्थित होना चाहता है।

उसे सादर यही लिवा लाओ नरेश ने आदेश दिया। दूत ने नरेश का अभिवादन कर आनन्दपुर नरेश का सन्देश सुनाया कि आपका वे बेताबी से इन्तजार कर रहे हैं। भोज का समय भी सन्निकट आ रहा है। अत आप अब यहां से शीघ्र ही प्रस्थान की तैयारियां करावे।

महाराजा चन्द्रसेन दूत के आगमन को सुनकर विचार कर रहे थे कि शायद भोज स्थगित करनें की सूचना लाया होगा। पर दूत द्वारा शीघ्र प्रस्थान की बात सुनकर वे कुछ विचार मे पड गये। उन्होने दूत से पूछा भाई तुम हमें शीघ्र प्रस्थान के लिये सदेश दे रहे हो पर कुछ विश्वस्त सूत्रो से ऐसा भी संदेश मिला है कि आनन्दपुर में भोज की कोई तैयारी नही है।

दूत ने कहा, धराशयी आपका फरमाना काफी अंश मे यथार्थ है। पर इस विषय में आपको किसी तरह की शका करनें की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि हमारे स्वामी विशिष्ट शक्तियो से सम्पन्न है। उन्हें व्यवस्था करने मे ज्यादा समय की आवश्यकता नही है। आप जब भी पधारेगे आपको पूर्णतया व्यवस्था मिलेगी।

सुनो! सुनो! सुनो! चम्पानगरी के निवासियो, महाराजा चन्द्रसेन के आदेश को सुनो! नरेश का आदेश है कि नगर के सारे निवासी अपने बाल बच्चों सहित तैयार हो जाये। कल सवेरे महाराजा चन्द्रसेन के साथ उन्हे आनन्दपुर नरेश के यहां भोज मे सम्मिलित

होना है । छोटा बच्चा भी घर मे नही रहना चाहिये । चल अचल सम्पत्ति का पूरा वन्दो--वस्त रहेगा । अत नरेश की आज्ञा सबको ध्यान मे रखनी है । वडे ठाट वाट के साथ चतुर्गिणी सेना परिवृत एव नगर निवासियो वेस्टित महीधर चन्द्रसेन चम्पानगरी से प्रस्थान करते ही महाराजा को शुभ शकुन होने लगे । महाराजा एवं प्रधान आमात्य शुभ शकुनो को देख प्रमुदित होने लगे ।

चम्पानगरी के नरेश ने चम्पा से प्रस्थान कर दिया है, यह जानकर आनन्दसेन को वडी चिन्ता हुई । वह तत्काल शीलावती के पास पहुचा और शीलावती से कहने लगा, तुम अब भी निश्चित वैठी हो । उसने कहा महाराजा—आप कहना क्या चाह रहे है ? मै समझी नही । आनन्दसेन कुछ खीज सा गया और कहने लगा—अरे तुम समझी नही । तुम्हे याद है या नही कि तुमने महाराजा चन्द्रसेन को चम्पा के समग्र निवासियो के साथ भोज के लिये आमन्त्रित किया है ? तुमको यह भी ज्ञात होना चाहिये कि वे वहा से प्रस्थान भी कर चुके है । उनके आवास निवास एव भोजन व्यवस्था का उत्तरदायित्व तुमने अपने ऊपर लिया था । यह तुमको स्मृति मे होगा ही पर अभी तक तुमने कोई भी व्यवस्था नही की । यह चिन्ता का विषय नही तो और क्या है ?

शीलावती ने हस कर कहा ओ हो यह वात है क्या ? मेरे कारण आपको इतना मानसिक कष्ट हुआ इसके लिये क्षमा चाहती हू । अब आप निश्चित हो जाइये । कल सवेरे सारी व्यवस्था हो जायेगी । दूसरे दिन की सुवह वस्तुत सवके लिये आश्चर्यकारी था । क्योकि कल तक जहा खण्डर थे वहा आज अट्टालिकाए खडी है । सारे आनन्दपुर मे मधुर पकवानो की महक फैल रही है । रातो-रात यह कार्य किसने और कैसे किया ? यह सवके जिज्ञासा का कारण वना हुआ था ।

ठीक समय पर चम्पा नरेश चम्पा निवासियो के साथ आनन्दपुर पहुच गये । उन्होने वहा की आवास व्यवस्था देखी तो वे आश्चर्य चकित हुए विना नही रह सके ।

आनन्दसेन ने आनन्दपुरी की जनता को सदेश दिया।

करवाया कि आनन्दपुर के सारे निवासियों का भोजन आज चम्पा के निवासियों के साथ होगा। अतः ठीक समय वे वहां पहुंच जाय।

आनन्दपुर की जनता भी ठीक समय भोज मण्डल मे पहुंच गयी। शीलावती आदि भी महाराजा चन्द्रसेन के स्वागतार्थ उपस्थित हुई। उसने जब महाराजा के साथ बारह महारानियो को देखा तो उसने निवेदन किया कि पूज्यवर, क्या चम्पा के सारे निवासी आ चुके है। तब चन्द्रसेन ने कहा, हा। शोलावती तुम्हारी भावनानुसार चम्पा के सारे निवासी आ गये। आदरणीय आपके साथ मैं ग्यारह ही महारानियों के दर्शन कर पा रही हूं, पर मैने सुन रखा है कि आपके महारानियां बारह है। तो एक महारानी के दर्शनों से मुझ वंचित क्यो रहना पड़ रहा है। महाराज ने दुःख भरी निःश्वास छोड़ते हुए कहा, शीलावती, तुम उसका नाम भी मत लो। मै उस कलकिनी का मुंह देखना तो दूर, नाम भो सुनना नही चाहता। कहते-कहते महाराजा के आंखों से दो मोती लुढक पडे।

पूज्यवर, मै आपको कष्ट नहीं देना चाहती थी। पर मै अपनी जिज्ञासा को रोक नहीं पायी। इसलिये ही कह बैठी। आपको दुःख हो वैसा मैं नहीं करना चाहती। पर क्या आप ऐसा चाहेगें कि मेरे मन मे शल्य बना रहे। यदि एक महारानी जी के मै दर्शन नहीं कर पायी तो मेरे मन में सदा के लिए खटक रह जायेगी। मैनें चम्पानिवासियों को भी आपके साथ आमन्त्रित किया है। आप उन्हें महारानी की हैसियत से नही तो कम से कम चम्पा निवासी की हैसियत से तो बुला ही सकते हैं। आशा है, मेरी मनोव्यथा को आप समझकर उचित आदेश देगें।

यद्यपि महाराजा चन्द्रसेन विश्वसुन्दरी को बुलाना नही चाहते थे, पर शीलावती के तर्कपूर्ण आग्रह को वे टाल नही पा रहे थे। फिर भी उन्होने बात को टालने की दृष्टि से कहा, शीलावती! तुम्हारी भावना देख कर मै उसको बुला भी लेता पर अव इतना समय नहीं रहा कि वह चम्पा से यहां तक पहुच सके। अतः अब उसको बुलाने के लिए स्वीकृति देने न देने का कोई औचित्य नही रहा।

शीलावती जो मंत्र विद्या में निपूर्ण थी वह इस छोटी सी बात

मे कहा मानने वाली थी। उसने तपाक से उत्तर दिया कि राजन्! अवज्ञा के लिए क्षमा करे। यदि आप अनुमति दे तो मै इतने स्वल्प समय मे भी विश्वसुन्दरी को यहा बुलाने का प्रयास कर सकती हू। इतना कह कर शीलावती महाराजा चन्द्रसेन के अनुमति सूचक शब्दो को सुनने के लिए चुप हो गयी।

"यदि तुम्हारा इतना ही आग्रह है और तुम इस स्वल्प समय मे भी उसे यहा बुलाने का आग्रह कर रही हो तो तुम अपना प्रयास कर सकती हो।" विश्वास छोडते हुए चन्द्रसेन ने उत्तर दिया।

शीलावती ने तत्काल अपनी मन्त्र शक्ति के माध्यम से महारानी विश्वसुन्दरी को चम्पा से आनन्दपुर बुला लिया।

सहसा महारानी विश्वसुन्दरी का वहा पहुचना सब के लिए आश्चर्य था। पर ग्यारह महारानिया अन्दर ही अन्दर घबराने लगी। उस अवस्था से उनके मु ह से बोल ही नही निकल रहे थे। वे मन ही मन विचार करने लगी यहा कही हमारा भण्डाफोड़ नही हो जाय?

बन्धुओ कुकृत्य कर लेना सरल हो सकता है। पर कुकृत्य करने के पश्चात् अपने आपको सुस्थिर रख पाना बडा कठिन होता है। चोर का मन कच्चा होता है। यद्यपि वह साहस करके बडी–बडी चोरिया भी कर लेता है फिर भी उसके मन के किसी कोने मे भय छिपा रहता है। इसलिए चोर को पहचानने के लिए कहावत चरितार्थ है कि 'चोर की दाढी मे तिनका।' इसी तरह अन्यान्य कुकृत्य करने वालो के विषय मे भी समझना चाहिये। उन ग्यारह ही महारानियो का कुकृत्य आज उनके सामने भयावह रूप से चित्रपट की भाति उभर रहा था। फिर भी वे सभल कर चल रही थी कि कही उनका कुकृत्य प्रकट न हो जाय।

विश्वसुन्दरी भी स्वयं मे सकोच करती हुई एक कोने मे दुबककर बैठी थी।

शीलावती ने अपने विद्यागुरु बाबा ब्रह्मानन्द का स्मरण किया जिससे बाबा ब्रह्मानन्द भी दूर से आते हुए दृष्टिगोचर हुए। सबने उठकर बाबा का स्वागत किया। बाबा के आ जाने पर भोज प्रारम्भ

हुआ । चम्पा एव आनन्दपुर की जनता आनन्द के साथ विभिन्न तरह के व्यञ्जनों का आस्वादन करती हुई उन व्यञ्जनो की सराहना कर रही थी कि ऐसे व्यञ्जन तो हमने पूर्व मे कभी भी नही खाये। और तो क्या स्वयं महाराजा चन्द्रसेन भी आश्चर्यचकित थे । वे विचार कर रहे थे कि ऐसा सुस्वादु भोजन शीलावती ने कैसे क्या निष्पादित किया । आज तक ऐसा भोजन पूर्व मे कभी नही किया था । यद्यपि मै शीलावती के हाथ का भोजन पूर्व मे भी कर चुका हू । पर आज का भोजन तो उससे अलग ढंग का ही है । इस प्रकार विचार करते हुए राजा, राजमन्त्री आदि सभी मत्र मुग्ध से भोजन कर रहे थे ।

भोजन सम्पूर्ण हो जाने पर वह भवन सभा भवन के रूप मे परिवर्तित हो जाता है ।

"शीलावती ! आज अब तुमको उन लड्डुओ का रहस्य अवश्य बताना होगा । तुमने उस दिन कहा था कि समय आने पर आपको इनका रहस्य भी ज्ञात हो सकता है ।" चन्द्रसेन ने कहा ।

पूज्यवर, आपकी जिज्ञासा मै अवश्य पूर्ण करूगी । उसका संकेत मिलते ही दासिया उन चार मोदको को जो सुरक्षित रखे हुए थे ले आयी । उन मोदको को देखते ही ग्यारह रानियो के तो हौसले पस्त हो गये । वे एक दूसरी के सामने देखने लगी । एक दूसरी के सामने देखती नही तो और क्या करती । व्यक्ति यह जानता है कि मिर्च खाने से मुंह जलेगा फिर भी जिह्वा–लोलुपता के कारण मिर्च खा लेता है । जब वह मिर्च खा लेता है तो उसका नतीजा भी उसी का भुगतना ही पड़ेगा । व्यक्ति चाहे कि मै धूप मे खड़ा भी रहा हू और पसीना भी न बहे तो क्या यह शक्य है । नहीं । वैसे ही कोई व्यक्ति चाहे कि मै पाप कार्य तो करता ही रहूं पर उसका फल मुझे न मिले, ऐसा कभी सम्भव हो सकता है ? आप कहेंगे नही हो सकता । बन्धुओ विचार करिये आप और हम अथवा अन्य साधारण व्यक्तियो का तो कहना ही क्या ? पर जो सर्वज्ञ सर्वदर्शी हो जाते है उनको भी कर्मो का फल भोग तो करना ही पड़ता है । कर्म का फल भोगे विना उनको भी मुक्ति नही होती ।

दुरात्मा पाप करती हुई हर्षित होती है । कुछ समय तक मिर्चा

सफलता में फूली नही समाती, पर जब पाप का गड़ा फूटने लगता है तो उनके पैर जमीन मे धंसने लगते है । उनकी आखो के सामने अंधेरा छाने लगता है । उनकी बुद्धि उस समय इतनी कुण्ठित हो जाती है कि उनको अपने बचाव का कोई उपाय नही सूझता । यही दशा उन ग्यारह महारानियो की बन रही थी । इतने समय तक तो वे अपनी योजना बना-बनाकर मुग्ध हो रही थी । पर अब जब उनके पाप का पर्दा फास होने वाला था, तो उनकी दशा देखते ही बनती थी ।

मोदको के आजाने पर शीलावती ने वावा ब्रह्मानन्द को प्रणति पूर्वक निवेदन किया कि—"गुरुदेव इन मोदको पर आप ही कुछ प्रकाश डालने की कृपा करे ।" तब वावा ब्रह्मानन्द ने महाराजा चन्द्रसेन को सम्बोधित कर कहा कि महाराजा ! पत्नी का धर्म होता है कि वह पति की सुरक्षा का, पति के रहन सहन का पूरा-पूरा ध्यान रखे । शीलावती ने उसी कर्त्तव्य पालन की भावना से कुछ चिन्तन किया । जब आनन्दपुर के महाराजा के साथ उसका पाणि-ग्रहण हुआ तो उसके मन मे विचार आया कि "मेरे विषय मे इनको जानकारी कैसी मिली ?" उसे जब यह ज्ञात हुआ कि मेरे साथ विवाह करने की प्रेरणा वावा ब्रह्मानन्द की वहिन ने दी है, तो उसे इसमे कुछ दाल मे काला नजर आया । तब वह विचारने लगी कि मैं वावा ब्रह्मानन्द को अच्छी तरह से जानती हू । वे मेरे शिक्षा गुरु है । उनके कोई भी वहन न थी, और न है । फिर उनकी वहन यहां आनन्दपुर मे कैसे आयी ? क्या कुछ षड्यन्त्र है ? उसका मस्तिष्क उस षड्यन्त्र की खोज करने की कल्पना मे खो गया । उसने आनन्द-सेन से भी निवेदन कर दिया कि आप कही भी पधारे तो उसकी सूचना उसे अवश्य दे दे ताकि कोई अनहोनी घटना हो तो वहां कुछ उपाय कर सके । उसने इसके लिए कई अत्यन्त विश्वसनीय व्यक्तियों को भी इधर–उधर भेजा । उनसे कुछ अस्पष्ट सूत्र मिला कि [illegible]
वावा ब्रह्मानन्द की वहिन वताकर आनन्दपुर मे रहने [illegible]
चम्पानगर मे रहती है । इससे वह और भी सतर्क हो [illegible]

महाराज जब आपने आनन्दसेन के साथ उनको [illegible]
नगरी के लिए आमन्त्रित किया तो आपके सन्देह [illegible]
का भी यह एक मुख्य कारण था कि वे तीनो एक

जावें क्योंकि चम्पा में आनन्दसेन के प्रति षडयन्त्र करने वालों का कुछ सूत्र जो मिल चुका था।

जब आनन्दसेन को साथ लेकर आप चम्पा के लिए प्रस्थान कर गये और इसकी सूचना जब उसे मिली तो उसने वहां की रिपोर्ट जानने के लिए अपनी शक्ति का प्रयोग किया। उससे मिली जानकारी से वह बडी व्यग्र हो गयी। क्योकि चम्पा मे बड़ा भारी षडयन्त्र रचा गया था। उस षडयन्त्र से महाराज आनन्दसेन का जीवन खतरे से खाली नही था। अतः रूप परिवर्तनीय विद्या से रूप परिवर्तन कर वह आनन्दसेन की सुरक्षा के लिए तत्पर हुई। चम्पा मे भोजन के लिए थाल परोसे गये और जैसे ही भूपाल आनन्दसेन भोजन के लिए तत्परित हुए कि शीलावती जो चील के रूप मे थी उन मोदको को लेकर उड़ गयी। यह दृश्य आप सबने प्रत्यक्ष देखा ही था। उन्ही मोदको को आप अभी यहां देखकर इतना तो जान ही गये कि चील के रूप में शीलावती ही थी।

बाबाजी यहां तक तो ठीक है कि यह मोदक वही होने से यह समझा जा सकता है कि चील के रूप में शीलावती ही थी। पर शीलावती ने ऐसा किया क्यों ? महाराज चन्द्रसेन ने पूछा।

महाराज मुख्य रहस्य की बात तो यही है। आप जव जानना ही चाहते हैं तो वह रहस्य भी अब रहस्य नही रह पायेगा। कहकर बाबा ने पानी लाने का संकेत किया। दासिया तत्काल पानी के भरे दो बर्तन ले आयी। बाबा के आदेश से उन लड्डुओ में से एक लड्डु को पानी मे घोलने का आदेश दिया। पानी मे मोदक को घोलते ही वह पानी एकदम हरा हो गया। उस पानी को महाराज चन्द्रसेन को दिखाते हुए बाबा ने कहा—महाराज ! इसमे इतना तीव्र विष (जहर) मिलाया गया है कि जो व्यक्ति इन मोदको का एक नवाला भी खाले तो उसकी जीवन लीला तत्काल समाप्त हो जाय। इसी तरह इन चारों मोदकों में भयकर विप (Poison) मिलाया हुआ है।

मोदकों का रहस्य जानकर महाराजा चन्द्रसेन एकदम से कुपित हो गये। उस कोप मुद्रा मे उन्होंने ग्यारह महारानियो को

तरफ देखा । वे एकदम सहम गयी । इतने में पुनः बावा ने कहना प्रारम्भ किया । महाराज ! थोडी बात और सुनिये, उसके पश्चात् ही कुछ निर्णय लेना योग्य रहेगा ।

महाराज पुनः बावा की बात सुनने में तल्लीन हो गये । बावा ने कहा, महाराज आपको भी यह तो ज्ञात हो ही गया कि—आनन्दसेन के माता–पिता का अभी तक कोई पता नही लग पाया है । इस आनन्दसेन का बाल्यकाल मेरे पास बीता । इनका लालन-पालन भी करुणा के वशीभूत होकर मैने ही किया । पर इनको मारने का षड़यन्त्र जब राज परियार से सम्बन्ध रखता है । इसके पीछे कोई भारी राज होने का सकेत मिलता है । कुछ क्षण रुककर बाबा पुन· कहने लगे—राजन् ! ऐसे कई प्रबल प्रमाणो से यह भली भाति सिद्ध होता है कि यहा आनन्दसेन और चम्पकमाला चम्पा नरेश चन्द्रसेन की सन्तान एवं महारानी विश्वसुन्दरी के अग जात है ।

महाराजा चन्द्रसेन गम्भीर मुद्रा मे बोले—बाबाजी ! आप गृहत्यागी है, आपको झूठ सांच करने की आवश्यकता भी नही है । यह मैं जानता हू । आपकी शक्ति से अपरिचित नही हू । पर आप जो कह रहे है काश ! ऐसा ही होता ? मेरी कहा नसीब कि ऐसी सन्तानो का मैं पिता कहलाऊं ।

महाराज, अब जैसे-जैसे परते खुलती जायेगी, वैसे-वैसे बात भी स्पष्ट होती जायगी । सर्वप्रथम तो यह 'बाल' शिशु के रूप मे मुझे एक जीर्ण कूप मे रोते हुए मिले थे । यह जिस दिन मुझे मिले थे, वे कुछ घन्टो पूर्व ही जन्मे हुए थे । उसी दिन महारानी विश्वसुन्दरी द्वारा कुतिया के पिल्ले जन्म देने की बात सुनने को मिली थी । यद्यपि मुझे उसी समय यह विश्वास हो गया था कि यह आपके ही पुत्र एव पुत्री है । फिर भी समय की स्थिति को देखकर मैं उस समय मौन रहा । मेरे पास रहते हुए इन्हे सोलह वर्ष व्यतीत हो गये । एक बार चम्पा के वार्षिकोत्सव मे मल्ल युद्ध मे भाग लेने इनका मन म उठा । मैंने रोका भी सही पर इनकी बलवती भावना ने मुझे अ देनी पडी । उस समय भी ग्यारह महारानियो द्वारा इन पर आरोप लगाया गया । उसने मेरा विश्वास और पुष्ट हो गया ।

खांसकर गला साफ कर पुन· बात को आगे बढाते हुए

बोले—उसके पश्चात् का सारा घटना क्रम आपके ध्यान मे ही है। आप दोनो के पारस्परिक प्रीति सद्भाव-वात्सल्य आदि भी पिता-पुत्र होने में साधक प्रमाण है। इसके उपरान्त अभी जो इन मोदको का प्रत्यक्ष प्रमाण है। इससे यह भलीभांति सिद्ध है कि महारानी विश्व-सुन्दरी ने आनन्दसेन एवं चम्पकमाला को ही जन्म दिया था। पर भयंकर षड़यंत्र से इनको हर परिस्थिति मे मारने का प्रयास किया गया। यह तो उनका एवं चम्पा नगरी का अखण्ड सौभाग्य है कि ये उस षड़यन्त्र से बाल-बाल बचते रहे। अतः- इन दोनों के पिता होने का गौरव आपको ही है। इसमें कतई संशय का अवकाश नही।

महाराज जो अब तक बाबा ब्रह्मानन्द को सुन रहे थे, गम्भीरता के साथ कहा—बाबा जी आपका कथन सत्य के अत्यन्त निकट है। पर इसमें आपने यह नहीं बताया कि इस षडयन्त्र में किसका हाथ है ?

महाराज ! यह सामान्य बात है। महारानी विश्वसुन्दरी के प्रसव के समय आपने जिस नाइन को भार सौपा सारी जानकारी उससे ज्ञात हो सकती है।

महाराज ने तत्काल सलखू नाइन को पकड़ने का आदेश दिया। सलखू नाइन भागने की कोशिश कर रही थी पर शीलावती के संकेत से उसके अनुचरो ने उसे भाग निकलने में सफल नहीं होने दिया। महाराज चन्द्रसेन का आदेश पा उनके सैनिको ने तत्काल उसे बन्दी बनाकर महाराज के सम्मुख उपस्थित किया।

महाराज का चेहरा क्रोध से तमतमा रहा था। महाराज ने गरजते हुए ससखू नाइन से कहा, सलखू अभी तुमने बाबा का वक्तव्य सुना होगा ? तुम यदि सत्य-सत्य बात बतला दोगी तो तुझे अभयदान दिया जा सकता है अन्यथा मृत्यु दण्ड के अलावा और कोई चारा नहीं है।

सलखू महाराज के भय से थर-थर कांप रही थी। महाराज द्वारा सत्य बात बतलाने पर अभयदान की बात सुनकर थोड़ी आश्वस्त हुई उसने बड़ी कठिनाई से शक्ति बटोर कर हकीकत मे महाराज को अवगत कराया।

नाइन द्वारा हकीकत सुनकर महाराज ने तत्काल आदेश जारी किया कि ग्यारह ही महारानियो को वन्दी बनाकर उपस्थित किया जाय ।

महारानियां जो कभी पर्दे की आड़ मे रहती थी, अनेक दास-दासिया जिनकी सेवामे हाथ बाधे खड़े रहते थे आज इनको सहयोग देने वाला उस सभा मे कोई नही था । महाराजा के भय से उनके शरीर थर-थर धूज रहे थे । वे स्वयं मे असहाय महसूस कर रही थी ।

"सलखू नाइन ने जो बात कही क्या वह सत्य है । तुम सबको मंजूर है ?" महाराजा ने गर्जते हुए कहा ।

महारानियो के पास नामंजूर करने का कोई उपाय ही नही था । उन्होने सिर झुकाकर अपना दोष स्वीकार कर लिया । महाराजा ने दूध का दूध और पानी का पानी रूप न्याय करते हुए कहा ।

ग्यारह महारानियो एव सलखू नाइन इन बारहो का अपराध भयकर एव अक्षम्य है । किन्तु सलखू नाइन को हमने सत्य बात बताने के लिए अभयदान दे दिया था । अत. ग्यारह महारानियो को मृत्यु दण्ड एव सलखू नाइन को देश (निकाला) की सीमा को तत्काल छोडने का आदेश दिया जा रहा है ।

यह आदेश देकर महाराजा अपने सिहासन से उठे और ; तरफ बैठी विश्वसुन्दरी के पास पहुचकर कहने लगे—प्रिये, मे अपराध माफ करना । मेरे अविवेक से तुम्हे जो कष्ट हुआ उ मुझे भारी खेद है ।

स्वामी, आप यह क्या कह रहे है । आपका इसमे को नहीं, दोष एक मात्र मेरे कर्मो का ही है । अत. आपको क्षमा की कोई आवश्यकता ही नही है । कहते हुए विश्वसुन्दरी के पैर छूने नीची झुकी कि महाराजा ने उसे अपने हुए कहा—प्रिय ! पुत्र, पुत्र वधू एव पुत्री इन तीनो दो । तुम्हारी जैसी तपस्विनी सती सुन्दरी का आशीष अवश्य अखण्ड सौभाग्य कारक होगा ।

स्वामी ! यह क्या कह रहे है । मै तो श्री चरणो की दासी हूं । मेरे मे इतना सामर्थ्य कहां फिर भी आपकी पुण्य प्रभा से उनके सौभाग्य की शहनाई युगों-युगों तक बजती रहेगी ।

दोनो उठकर सभा के बीच पहुचे । आनन्दसेन एवं चम्पकमाला ने अपनी-जननी को आज पहली बार देखा था । उनका हृदय बासो उछलने लगा । वे अपने जनक एव जननी के निकट पहुच कर उनके चरण स्पर्श करने लगे कि माता–पिता ने उनको गले लगा लिया । शीलावती भी कहा पीछे रहने वाली थी वह भी चरण स्पर्श करने पहुची कि उसे भी विश्वसुन्दरी ने गले लगा लिया । यद्यपि महाराजा चन्द्रसेन पहले भी आनन्दसेन आदि से कई बार मिले थे पर आज के मिलने मे उनको जो आनन्द आ रहा था वैसा पहले कभी नहीं आया।

विश्वसुन्दरी के आनन्द का तो पारावार ही नही था। अन्धे को आखे मिलने से शायद उतनी खुशी नही होगी, जितनी अभी विश्वसुन्दरी को ही रही थी । उसका मातृ हृदय उनको अपने से अलग ही नही करना चाह रहा था । वह बार-बार उनके चेहरे को देखती, उनके माथे को सू गती । उसको इतना हर्ष हुआ कि उसकी चर्म चक्षुए उस हर्ष को सहन नही कर पा रही थी जिससे मोती बरसने शुरू हो गये ।

सबके सामान्य होने पर महाराजा चन्द्रसेन ने आनन्दसेन को अपने साथ अर्ध सिहासन पर बिठाया । पिता-पुत्र सूर्य, चन्द्र की भांति सुशोभित हो रहे थे । उपस्थित सारी जनता दोनो के जय-जयकार करने लगी ।

महाराजा के आदेश से ११ महारानियो एवं सलखू नाइन को यहां ले जाया जाने लगा । इतने मे विश्वसुन्दरी ने खडे होकर महाराजा से निवेदन किया, स्वामी ! हमारे लिए आनन्दसेन एव चम्पकमाला का जन्म आज ही हुआ है । इसलिए क्या यही अच्छा हो कि जन्मोत्सव की खुशियां आज भी हो ।

हां-हा तुम्हारा कहना बिल्कुल ठीक है । हम अभी आदेश देते है कि याचको को मु हमागा दान दिया जाय, बन्दियो को कैद से मुक्त कर दिया जाय आदि । महाराजा के मु ह मे ये शब्द निकलते ही

विश्वसुन्दरी वोली—पतिदेव ! आज मै धन्य-धन्य हो गयी । अव कृपा कर मेरी ग्यारह वहनो एवं सलखू नाइन को भी वन्धन मुक्ति का आदेश फरमावे । क्योकि आपने वन्दियो को मुक्त करने का आदेश फरमाया ही है । विश्वसुन्दरी जैसे ही चुप हुई कि आनन्दसेन कहने लगा - पिताश्री, माताजी की माग वस्तुत. सत्य है ।

महाराजा चन्द्रसेन कहने लगे—तुम लोग क्या कह रहे हो ? जो राजकुल को ही समाप्त करने को तुली हो, क्या उनका अपराध क्षमा करने योग्य है ?

पिताश्री उसमे उनका क्या अपराध, अपराध प्रत्येक व्यक्ति के स्वार्जित कर्मो का है । वे माताए तो केवल निमित्त मात्र हे । दूसरी वात यदि पुत्र के जन्मते ही माता मर जाती है तो उस पुत्र का जन्म इतना मंगलकारी कैसे हो सकता है ? अत जव आपश्री मेरा जन्मोत्सव मना रहे हो तो क्या इस खुशी मे मेरी उन माताओ को सम्मिलित नही रहना चाहिये । मेरे जन्म (प्रकट होने मे) मे यदि माताओ पर संकट आता है तो मेरा यह जन्म मगलकारी नही मानता ।

महाराजा विश्वसुन्दरी एव आनन्दसेन की ऐसी विशुद्ध भावना देखकर गद्‌गद् हो उठे । वे विचार करने लगे—कहा तो उन ग्यारह रानियो के विचार और कहा इनके विचार । आखिर विश्वसुन्दरी एव आनन्दसेन के विचारो को सन्मान देते हुए महाराजा ने ग्यारह महारानियो से कहा यद्यपि तुम लोगो का अपराध भयकर है जिसे माफ करना न्याय के अन्तर्गत नही है तथापि न्याय व्यक्ति को सुधारना चाहता है । अत तुम लोग यदि विश्वसुन्दरी एव आनन्दसेन आदि से अपनी गल्ती की क्षमा याचना कर लेती हो और ये [illegible] लोगो को क्षमा कर दे तो मृत्यु दण्ड को देश निष्कासन मे परिवर्तित किया जा सकता है ।

महाराज के न्याय पुरस्सर वचन सुनकर ग्यारहो म[illegible] विश्वसुन्दरी एव आनन्दसेन के पास पहुच उनके [illegible] मे [illegible] क्षमा मागने लगी । पर विश्वसुन्दरी एव आनन्दसेन मे ही सम्भाल लिया और कहने लगे आप यह क्या

तो आपकी लघु भगिनी हूं । मैं तो आपका पुत्र हूं आपके लिए यह शोभा नहीं देता ।

रुदन करती हुई सी ग्यारहो महारानियां बोल पड़ी– हमे अब और लज्जित न करे । हमने उच्चकुल मे जन्म अवश्य लिया है पर संस्कारो की दृष्टि से हम एक दम निकृष्ट है । आप हमारे अपराधो को क्षमा कर दे जिससे हमारे मन को कुछ सन्तुष्टि मिल सकेगी ।

विश्वसुन्दरी एवं आनन्दसेन कहने लगे कि आप ऐसे हीन विचार अपने मन में मत लाइये, आप महाराज चन्द्रसेन की महारानियां हो, आपके मन मे बड़प्पन एव गौरव रहना चाहिये । कभी-कभी ऐसा होता है कि चलता हुआ व्यक्ति भी गिर जाता है। पर वह यदि गिरकर पुनः सम्भल जाता है तो वह गिरा हुआ नही कहा जाता । अतः अब आपको किसी तरह का मन मे खेद नही रखना चाहिये ।

महारानी विश्वसुन्दरी एवं आनन्दसेन द्वारा आश्वस्त करने पर उन महारानियों का मन काफी हल्का हो गया ।

महारानी विश्वसुन्दरी एव आनन्दसेन ने महाराजा चन्द्रसेन से काफी आग्रह किया कि इनके देश निष्कासन दण्डादेश को निरस्त कर दिया जाय । पर महाराजा चन्द्रसेन ने वह निवेदन अस्वीकार करते हुए कहा—नही यह दण्डावेश अब निरस्त नही हो सकता । भविष्य मे ऐसी गलती कोई नहीं करे इसलिए यह दण्ड तो उन्हे भुगतना ही पड़ेगा ।

महाराजा के वचनों को सुनकर आनन्दसेन ने घोषणा की कि मेरी ग्यारहो माताओं को महाराजा ने देश निकाला देने का आदेश दिया है, वह दण्डादेश भारी मन मे हमे भी स्वीकार करना ही होगा ? पर मैं मेरी ग्यारहो माताओं से करबद्ध निवेदन करूंगा कि वे चम्पानगरी की सीमा से अलग बसे उस आनन्दपुर के राजमहलों मै सानन्द पधारे और वही पर बिराजे जिससे महाराज की आज्ञा का भी पालन हो जायेगा और मेरी भावना भी पूर्ण हो जायेगी ।

ग्यारहों महारानियों ने कहा—आनन्दसेन तुम्हारी भावना उच्च है पर हमारे पाप का प्रायश्चित करने के लिए हमको इधर-

उधर की खाक छानना ही योग्य है।

आनन्दसेन ने इसका तीव्र विरोध करते हुए कहा—नही ऐसा कदापि नहीं होगा, आपको यहां रहना ही होगा? क्या मा अपने लड़के के घर रहना नही चाहेगी? क्या मैं इतने वर्षों के वाद भी अपनी इतनी माताओं के स्नेह से वंचित रहूंगा?

दृश्य वड़ा करुणाप्रद था। सारी जनमेदनी की आंखो मे मोती छलक रहे थे। चम्पा एवं आनन्दपुर की जनता आनन्दसेन के विराट व्यक्तित्व पर मुग्ध थी, और स्वयं को गौरवान्वित मान रही थी।

वावा ब्रह्मानन्द भी उस दृश्य से द्रवित हो उठे। ये विचार करने लगे—अहो! यह संसार क्या है? इसका कही ओर छोर भी है या नही? कुछ समय पहले जो एक के प्राण हरने की कलुपित भावना सजोये थी उन्ही के हृदय में अव वात्सल्य का झरना निर्झर रहा है। इस तरह वे इस संसार की मोहमाया आदि के स्वरूप का चिन्तन कर ही रहे थे कि इतने में उद्यान रक्षक द्वारा दी सूचना उनके कर्ण मे पडी। उद्यान रक्षक महाराजा चन्द्रसेन से निवेदन कर रहा था कि जय हो, विजय हो, महाराजा चन्द्रसेन की जय हो। स्वामी तरण तारण की जहाज, मन के उद्वेगो से शात, इन्द्रियो का दमन करने वाले, सागर के समान गम्भीर, निर्मल ज्ञान दर्शन चारित्र के आराधक, तप से तेजस्वी, भव्य प्राणियों के आधार गुणो के भण्डार आर्य जिन सेन का शिष्य मण्डली सहित उद्यान मे पदार्पण हुआ है।

उद्यान रक्षक द्वारा दी गयी जानकारी से महाराज चन्द्रसेन आनन्दसेन एवं अन्य सभी लोग वड़े प्रमुदित हुए। महाराज ने अपने सिंहासन से उठकर जिस दिशा मे आर्य जिनसेन विराज रहे थे उस दिशा मे भाव वन्दन किया। जनता ने भी महाराज का अनुकरण किया। इसके पश्चात् महाराजा ने कहा—ऐसे वीतरागता के ... संत महात्माओं के दर्शन वडे पुण्योदय से ही प्राप्त होते हैं। ... तो क्या ऐसे संत महात्माओ का नाम गोत्र श्रवण भी ... होता है। इतना कहकर महाराजा ने उद्यान रक्षक को ... पुरस्कार दिया।

फिर महाराजा ने मुनि दर्शन जाने की घोषणा की।

जनता भी मुनि दर्शन को लालायित थी। महाराजा चन्द्रसेन एवं आनन्दसेन चतुर्गिणी सेना सजाकर आर्य जिनसेन के दर्शनार्थ जाने लगे ।

बन्धुओ, आप लोग विचार कर रहे होंगे कि महाराजा को मुनि दर्शन के लिए ही जाना था तो इस प्रकार आडम्बर की क्या आवश्यकता थी ? क्या लोगो को यह देखना था कि महाराजा मुनि दर्शन को जा रहे हैं ? आप सोचते हो न, सोचते हो पर आज के कई व्यक्ति ऐसा सोचते है, कई प्रश्न भी करते है कि महाराज बाहर से इतने दर्शनार्थी आते हैं । वे सब आपके दर्शन के निमित्त आते है तो क्या उनका आवागमन से होने वाला पाप आपको नही लगेगा ? मै उनको उत्तर भी देता हूं । आज मै आप से पूछ रहा हू कि क्या आपको मैने बुलाया या आप लोग अपने मन से आये ?

सभासद—अपने मन से

तो बन्धुओं विचार कीजिये आपके आने जाने का पाप हमको क्यों लगेगा । भगवान महावीर के दर्शनार्थ भी हजारो हजार मानव जाते थे । देव भी देवलोक से हजारो योजन पार कर भगवान की सभा में उपस्थित होते थे । उनके आवागमन से हिसा होना सुनिश्चित था । ज्ञाता धर्म में उल्लेख भी आया है । महाराजा श्रेणिक जब भगवान के दर्शनार्थ जा रहा था तो एक घोडे के टाप से नन्दन मणिहार का जीव जो उस समय मेढक के रूप मे था, समाप्त हो गया । इस प्रकार की हिसा जानते हुए भी भगवान ने किसी को ऐसा नही कहा कि मेरे दर्शन करने क्यो आते हो अथवा नही आना चाहिये ।

भगवान महावीर ने सूत्रकृतांग सूत्र मे स्पष्ट फरमाया है कि जिस कार्य में पुण्य पाप दोनों होते हो ऐसे कार्य में साधु को मौन रहना चाहिये । क्योकि ना करने से व्यक्तियों के पुण्य में अन्तराय आती है । हां कहने से आरम्भ समारम्भ का अनुमोदन लगता है । अत: ऐसे कार्य जिसमें पुण्य भी होता हो, और पाप भी हो, साधु को हां या ना नही कहना चाहिये ।

बन्धुओं, यह विषय काफी लम्बा है । अधिक विस्तार मे जाना

उचित नहीं समझता फिर भी महाराज चन्द्रसेन अथवा अन्य राजा महाराजा सत दर्शन जाते समय जो सेना सजाकर जाते थे उसके पीछे उनका उद्देश्य जिनशासन की प्रभावना का भी रहा हुआ था ।

महाराजा चन्द्रसेन एवं आनन्दसेन के साथ उपस्थित जनता भी उनके पीछे-पीछे चलने लगी । उद्यान के निकट पहुचने पर महाराजा आदि सवारी से नीचे उतरे और पांच अभिगमन को ध्यान में लेकर आर्य जिनसेन की सेवामे पहुचे । उस विशाल परिषद् को आर्य जिनसेन ने धर्म का उपदेश दिया ।

आर्य जिनसेन बतला रहे थे कि हे भव्य प्राणियो, यह ससार क्षण भगुर है, क्षण भगुर का तात्पर्य—ससार के भौतिक सुखो से है जिसके पीछे मानव रात–दिन पडा रहता है । वे सुख वस्तुत सुख नही—सुखाभास मात्र है । उनसे कभी शाश्वत सुख मिल नही सकता । यदि किसी को सच्चा सुख प्राप्त करना हो तो वीतराग मार्ग का अवलम्बन लेना श्रेयस्कर है ।

आर्य जिनसेन ने यह भी फरमाया कि ससार का मूल क्रोध, मान, माया, लोभ, राग-द्वेष आदि है । इन्ही के कारण यह जीव पुन - पुनः जन्म–मरण के चक्कर में पड़ा रहता है । इसलिए व्यक्ति को प्रत्येक क्रिया के पहले सोचना चाहिये कि कौनसी क्रिया पुण्योपार्जन कराने वाली है और किस क्रिया से पाप की वृद्धि होने वाली है । क्योंकि बतलाया गया है कि जो भी शुभाशुभ क्रिया की जाती है, वह फल दायिनी होती है । जो व्यक्ति दूसरे के प्रति द्वेष भाव रखता है तो उससे कभी-कभी वैरानुबन्धी वैर कर्मो का भी उपार्जन कर लेता है । और जब तक उन पूर्वार्जित कर्मो का क्षय नही हो जाता तब तक आत्मा शाश्वत शाति को वर नही सकती ।

❀ ❀ ❀

: १९ :

प्रवचन सभा में एक जिज्ञासु खड़ा हुआ और विनयपूर्वक पूछने लगा—महारानी गुरुदेव, आपने फरमाया सो परम सत्य है कि संसार में घटित होने वाले घटनाचक्रों में प्राणिथों के पूर्वार्जित कर्मों का फल भोग ही अधिकांशतः दृष्टिगत होता है। किन्तु मेरी जिज्ञासा है कि चन्द्रसेन-आनन्दसेन के घटना चक्र में ग्यारह रानियो तथा सलखू नाइन के कार्यो में प्रतिशोध की आग क्यों जलती रही तथा वे निरन्तर आनन्दसेन की हत्या करने के षड्यंत्र क्यो रचती रही ? कृपा करके इस तथ्य का स्पष्टीकरण फरमावे ताकि व्यक्तियो के प्रत्यक्ष आचरण का रहस्य समझ मे आ सके।

भद्रजनों, जिज्ञासु ने जो प्रश्न किया है, वह जीवन के रहस्यो को समझने की दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। यह सब एक प्रकार से कर्मो का ही चक्र है। सामान्य जन तो जो कुछ भी बाहरी वातावरण में घटित होता है, उसे ही अपनी स्थूल दृष्टि से देखता है लेकिन ज्ञानीजन उन घटनाओ की आन्तरिकता में अपनी ज्ञान दृष्टि फैलाते है, उनके मूल कारणों को समझते हैं तथा जीवन विकास की समीक्षा करके आत्मोत्थान की प्रक्रिया उपदेशित करते हैं। चन्द्रसेन-आनन्दसेन के इस घटना चक्र को इसी दृष्टि से समझाने के लिये हम आपको सभी सम्बन्धित व्यक्तियों के पूर्व भव का विवरण सुना रहे है।

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में तिलकपुर नाम से एक शहर था जहां के राजा का नाम समती था। उसके एक राजकुमार था जिसका नाम राघव था। राघव राजपुत्र था और युवावस्था के कुसंगति मे पड़ गया जिसके कारण वह अतीव दुराचारी एवं उद्दण्ड हो गया। उसके बारह पत्नियां थीं किन्तु उनके बावजूद वह पर-स्त्रियो को ताकता रहता था तथा अपनी वासना पूर्ति के हेतु उनके पीछे भटकता रहता था।

तिलकपुर मे ही एक सेठ रहते थे जिनका नाम सुदत्त था। इन सेठ की पत्नी अत्यन्त सुन्दरी तथा रूपवती थी। उसका नाम गुणसुन्दरी था। एक बार राजकुमार राघव ने गुणसुन्दरी को देख

लिया और देखते ही उसके रूप पर वह मोहित हो उठा । तव मुग्ध भाव से वह गुणसुन्दरी को प्राप्त करने की कल्पना करने लगा । एक दिन मौका पाकर वह गुणसुन्दरी के पास पहुचा और प्रणय याचना करने लगा । इस गुणसुन्दरी ने समझाने की दृष्टि से कहा । किन्तु उसकी वाणी मे शील रक्षा की दृढता भरी हुई थी कि वे राजकुमार है, राजवंश की गरिमा को जानते हुए उन्हे ऐसा निकृष्ट व्यवहार नही करना चाहिये । राघव तो अपनी वासना मे अन्धा हो रहा था, उसने वलात्कार करने की कुचेष्टा की । इस पर सतीत्व का तेज प्रस्फुटित हो गया और गुणसुन्दरी ने ऐसी ललकार लगाई कि राघव तो वहा से भागते ही वना । वह भाग तो गया किन्तु उसकी वासना ने उसको अधिक क्रूर वना दिया । वह किसी भी तरह गुणसुन्दरी को अपने अधीन करने के उपाय सोचने लगा ।

उधर गुणसुन्दरी ने सारी घटना अपने पति सुदत्त सेठ को वताई और यह सुझाव दिया कि उस उद्दण्ड राजकुमार का हम सामना नही कर सकेगे और वह इस सम्वन्ध मे फिर कोई मुसीवत खडी कर सकता है, इसलिये हमको यह नगर छोडकर कही अन्यत्र जा वसना चाहिये । लेकिन सुदत्त सेठ को यह सुझाव अच्छा नही लगा क्योकि उसने इस तरह भाग जाने को कायरतापूर्ण माना । उसने स्वय ने नवकार मत्र का जाप आरम्भ कर दिया तथा गुण-सुन्दरी को भी वैसा ही करने की सलाह दी । दोनो एक चित्त से महामंत्र का जाप करने लगे ।

ठीक उसी समय राजकुमार राघव रात के घने अंधकार मे चमचमाती नंगी तलवार थामे सुदत्त सेठ की हवेली पर जा पहुंचा और द्वार खटखटाने लगा । सुदत्त सेठ और गुणसुन्दरी ने जव यह देखा कि राजकुमार राघव क्रूर वनकर अपने मलिन उद्देश्य को पूरा करने के लिये आ ही पहुंचा है तो उन्हे उस समय उसने वचाव करने का यही उपाय समझ मे आया कि हवेली के सभी दरवाजो को भीतर से अच्छी तरह वन्द कर लिया जाय और वे दोनो तलघर मे जाकर छिप जाय । उन्होने ऐसा ही किया । हवेली के सभी दरवाजे तथा खिड़कियां वन्द हो जाने के कारण राजकुमार हवेली मे प्रवेश नही कर पाया और हवेली के चारो ओर रात भर चक्कर लगाता

रहा । सुबह होते–होते निराश होकर राजकुमार महलों को लौट गया ।

सुदत्त सेठ ने प्रातःकाल विचार किया कि राघव राजकुमार को उसके कुकृत्य की उचित शिक्षा देनी चाहिये । इस विचार से उसने स्त्री का सुन्दर वेश धारण किया और वह उसी अन्दाज में महल मे पहुंचकर राजकुमार राघव से मिला । वहा औरतो सी झीणी बोली बनाकर सेठ इस तरह बोला जैसे कि घूंघट मे मुंह छपाए गुणसुण्दरी ही उससे बोल रही हो—राजकुमार, मै जानती हू कि मै भी आपसे प्रेम करती हूं लेकिन जिस तरीके से आप आए उससे भारी लोकनिन्दा का भय जानकर मैने आपको डाटा फटकारा। आप मुझे उसके लिये माफ करे । आज रात को उचित अवसर देखकर मै आपकी सेवा मे उपस्थित होऊंगी। यह कहकर प्रसन्न मन स्त्री वेशधारी सुदत्त सेठ अपने घर लौट आया तो राजकुमार राघव भी प्रसन्नता से फूल उठा कि अब तो गुणसुन्दरी उसे प्राप्त हो जायगी ।

सुदत्त सेठ ने घर पहुंचकर अपना वेश बदला । अब उसने इत्र बेचने वाले की पोशाक पहन ली । फिर इत्रो से भरी पेटी लेकर वह पुनः राजकुमार के अन्तःपुर में पहुच गया । उसने राजकुमार की सभी रानियो को ऐसे मनमोहक इत्र की शिशीया भेट की कि जिसकी सुगन्ध से वे मदमस्त हो गई । फिर सेठ भी परम स्वरूपवान था सो उसके प्रति वे आसक्त भी बन गई । रानियो ने कहा—इतना मस्त इत्र तो हमने पहली बार सूंघा है, इसकी क्या कीमत होगी ? गंधी का रूप धरे सुदत्त ने अपनी मस्ती बिखेरते हुए जवाव दिया—मूल्य की कोई बात नही । इससे भी बढ़िया इत्रो का मजा लूटना हो तो आप सब आज रात मे उद्यान मे पहुंच जावे । उस समय हम सव आनन्द रस मे गोते लगा सकेंगे ।

राजकुमार राघव जैसे चरित्र का था, वैसे ही चरित्र की उसकी रानिया भी थी । जैसा वे देखती थी, वैसा ही चरित्र उन्होंने अपना भी बना लिया था । गधी पर वे आसक्त तो हो ही चुकी थी, अब उसके प्रेम-निमन्त्रण पर तो वे निहाल हो गई और उन्होंने रात समय उद्यान मे पहुच जाने का वादा कर लिया ।

उधर रात होने पर सुदत्त सेठ ने पुन. स्त्री वेश धारण किया और महल मे राजकुमार राघव के पास पहुंच गया । वह अपने साथ तेज नशे वाली मदिरा ले गया था जो सुगन्ध से भरपूर थी । सेठ ने वह मदिरा राजकुमार को अतिशय मात्रा मे पिला दी जिसका राजकुमार पर ऐसा नशा छाया कि वह गहरी वेहोशी मे डूब गया। तव सुदत्त ने उसे रस्सियो से वाधकर अपनी पीठ पर उठाया और अधेरे-अधेरे घर ले आया । वहा पहुचकर उसने राजकुमार को अपने तलघर मे वन्द कर दिया ।

तव सेठ ने पुन: गधी का वेश धारण किया और उद्यान मे पहुच गया । वारहो रानिया विषय भाव से गधी की इन्तजार कर रही थी अत उसके वहां पहुचते ही वे खुशी से नाच उठी । वे सव गधी से प्रणय निवेदन करने लगी तव उसने साफ-साफ कह दिया कि वह परस्त्री को मा बहिन मानता है इसलिये अपने चरित्र का पतन वह कतई नही करेगा । जैसी कि उन्होंने माग रखी थी यदि उन्हे वढिया इत्र की चाहना हो तो वे उसके घर पर चली चले सो वह उनमे उससे भी वढिया किस्म के भाति-भाति के इत्र भेट करेगा । वासनाग्रस्त रानियो ने उसकी वात मंजूर कर ली यह सोचकर कि गधी अपने मकान पर ले जाकर उनकी इच्छा पूरी कर देगा । हवेली पर सव रानियो को ले जाकर सुदत्त ने उन्हे भी राजकुमार के साथ ही तलघर मे वन्दी वना ली । अट्ठारह माह तक वे सेठ के तलघर मे वन्दी वने रहे । राजा ने राजकुमार व उसकी रानियो की चारो ओर खूव खोज कराई किन्तु उनका जव अता-पता नही चला तो राजा यह समझकर चुप वैठ गया कि उनका दुश्चरित्र राजकुमार न जाने किसी प्रलोभन मे किसी दूरस्थ राज्य मे सपरिवार वस गया है ।

अट्ठारह माह वाद केवलज्ञानी भगवान् तिलकपुर मे पधारे । वहा उन्होने अपनी देशना मे कर्म विपाक पर प्रकाश डालते हुए फरमाया कि अज्ञानवश जीव हंसते-हंसते पाप कर्मो का वंध करते है लेकिन उन्हे फिर रोते-रोते उनका फल भोगना पडता है । अत. कर्मो को वाधते समय उनके कटु फल भोग की कल्पना करके अशुभ कर्म वधन से भव्य जीवो को वचना चाहिये । यह देशना सुनकर सुदत्त सेठ तथा गुणसुन्दरी को अपने कृत्य पर वहुत ही पश्चाताप हुआ

और उन्होंने राजकुमार राघव तथा उसकी बारहों रानियो को तत्काल बधन से छोड़ देने का निश्चय कर लिया। उन्होंने यह भी निर्णय लिया कि इस प्रकार से बांधे गये कर्मो को क्षय करने के लिये वे साधु धर्म भी ग्रहण कर लेगे। तब वे अपनी हवेली पर पहुंचे और तलघर में जाकर राजकुमार राघव से बोले—आपके राक्षसी कृत्यों से आपको सावधान बनाने के लिये हमने यह व्यवहार किया जिसके लिये हम क्षमाप्रार्थी है। आप भविष्य में ऐसे कृत्य नही करेगे—यदि आप ऐसा हमे आश्वासन दे तो हम आपको बन्धन मुक्त कर देगे। उनसे प्रतिज्ञा कराकर सेठ ने सबको छोड दिया।

राजकुमार राघव तथा उसकी बारह रानियां वहां से उद्यान मे पहुंचे तथा महाराजा को खबर करवाई कि वे विदेशो मे भ्रमण करने चले गये थे सौ लौट आये हैं। संयती ने सबका स्वागत किया और बिना पूछे जाने के लिये उलाहना दिया। तब सभी राजमहल में आनन्दपूर्वक रहने लगे।

सुदत्त सेठ और गुणसुन्दरी ने संयम अंगीकार करने के बाद कठोर तपाराधना की और आत्म विकास के पथ पर अग्रगामी बन गये। विहार करते-करते वर्षो बाद उनका तिलकपुर मे आगमन हुआ। तब संयती की मृत्यु के बाद राघव राजा बन चुका था। दोनों के नगर मे आने पर राघव राजा भलीभांति पहिचान गया कि उनको बन्दी बनाने वाले सेठ दम्पत्ति ये ही है। इससे उसके हृदय मे वैर भावना जाग उठी जिसके फलस्वरूप उसने मुनिजी महाराज एव महासतीजी को जहर डालकर तैयार किये गये लड्डु वहराये। उन्होने समभाव से उन लड्डुओ का आहार किया और मृत्यु प्राप्त कर देवलोक मे उत्पन्न हुए।

देवलोक की आयु समाप्त करके वे ही सुदत्त व गुणसुन्दरी के जीव यहां आनन्दसेन तथा चम्पकमाला के रूप मे उत्पन्न हुए हैं। राजकुमार राघव को सलखू नाइन का जन्म मिला है तो उसकी रानियां महाराजा चन्द्रसेन की रानियां बनी हैं। पूर्वभव के वैर के कारण ही इस भव में इन सब सम्बन्धियो द्वारा यह ज्ञात घटना चक्र उपस्थित हुआ है। महाराजा चन्द्रसेन की पहली महारानी सत्संग का संयोग मिलने से समता भाव की आराधना मे तत्पर रही। योगी

ब्रह्मानन्द और शीलावती के जीव पूर्वभव मे सुदत्त सेठ से मित्र थे अतः इस भव मे भी उन्होने आनन्दसेन की भलाई की और विपदाओ के समय सहायता पहुंचाई ।

अतः भव्य जीवो, यह सब कर्मो का ही खेल है किन्तु इस खेल को तोड़ने की क्षमता भी इसी आत्मा मे है । जब वह कर्मो के जोर पर नाचती रहने की बजाय कर्मो की लगाम अपने हाथ मे थाम लेती है और उनसे अपने को मुक्त बना लेती है तो वह स्वयभू हो जाती है । कर्मो के इस खेल के रहस्य को बहुत गहराई से समझने की जरूरत है जिससे आत्मा उन पर अपना नियन्त्रण स्थापित कर अपनी वृत्तियों को समता के सम्बल से सचालित कर सके । मूल रूप से कर्मो पर आत्मा का नियन्त्रण समता की साधना मे सम्भव होता है अन्यथा विषमता की दुर्भावनाओ मे जकडकर आत्मा बेभान बनी कर्मो के हाथो मे नाचती रहती है । इसलिये विषमता को त्यागकर भव्य जीवो को समता की साधना की ओर अग्रसर बनना चाहिये ।

बाबा ब्रह्मानन्द ने जो ससार के घटना चक्र को सुनकर द्रवित हुए जा रहे थे, खड़े होकर कहा—पूज्य गुरुदेव वैसे मैं देशतः संसार से हटकर साधना मार्ग मे लगा हू । किन्तु उसमे भी कुछ मात्रा मे तेरा मेरा रह ही जाता है । इसलिए अब से आपश्री के चरणो मे सर्व विरति चारित्र अगीकार करना चाहता हू ।

आर्य जिनसेन ने जनता को सम्बोधित करते हुए कहा—वैसे आप बाबा ब्रह्मानन्द को अन्य लिग मे देखकर अन्य कुछ कल्पना कर रहे होगे पर इन्होने अन्य लिग में रहते हुए अणुव्रत आदि श्रावक धर्म स्वीकार कर रखा है । जैसा कि प्रभु महावीर के समय अम्बड संन्यासी ने देशचारित्र स्वीकार कर रखा था । इन्होने देशव्रत की आराधना करते हुए अपने जीवन को साधना मार्ग पर आरूढ कर रखा है । इनकी साधना से चम्पानगरी एव आस-पास के गाव अच्छे खासे प्रभावित है । अब सर्वविरति चारित्र को स्वीकार करने को तत्परित है ।

महाराजा एव उपस्थित जन समुदाय ने अनुमति प्राप्त हो जाने पर आर्य जिनसेन ने बाबा ब्रह्मानन्द को अणगार धर्म मे प्रव्रजित किया ।

महाराजा चन्द्रसेन ने जिनके हृदय से वैराग्य की लहरे हिलोरे ले रही थी आर्य जिनसेन से निवेदन किया—भत्ते ! मैं भी इस संसार से उबरना चाहता हू । ये बाबा ब्रह्मानन्द जी तो स्वतन्त्र थे इसलिए इन्होने तत्काल प्रव्रज्या स्वीकार करली । पर मुझे तो अपने उत्तरदायित्व का निर्वहन भी करना पड़ेगा । अतः मेरा सानुरोध निवेदन है कि मै राज्य की समुचित व्यवस्था कर शीघ्र ही आपके श्री चरणो मे उपस्थित होने की मेरी भावना है । इसलिए आप चम्पा नगरी को भी पावन करने की महत्ती कृपा करे ।

महाराजा चन्द्रसेन अपनी पहली महारानी, आनन्दसेन, विश्वसुन्दरी, चम्पकमाला, शीलावती आदि सभी के साथ चम्पानगरी के लिए प्रस्थान करते है । स्वयं के पहुंचने के पूर्व जनता को पहुंचने के आदेश देते है । साथ ही चम्पा को नई हवेली की तरह सजाने की आज्ञा भी प्रसारित करते हूं । तदनुसार चम्पा को सजाया सवारा गया ।

महाराजा के पहुचने पर भव्य समारोह के साथ चम्पा मे प्रवेश करवाया ।

महाराजा ने राजसभा में प्रवेश कर सिहासन पर आरूढ होते ही आनन्दसेन को अपना उत्तराधिकारी बनाने की घोषणा की । साथ ही शीघ्र राज्याभिषेक कर स्वयं के दीक्षित होने की भावना भी व्यक्त भी ।

चम्पानगरी मे आज सौभाग्य की शहनाईया बज रही है । चारों तरफ मनुष्यो मे खुशहाली नजर आ रही थी । मानो घर-घर में मंगल कार्य हो रहा हो । वस्तुतः प्रत्येक के लिए मंगल कार्य होने जा रहे थे । वह यह है कि—आज महाराजा चन्द्रसेन का स्थान युवराज आनन्दसेन ग्रहण कर रहे थे । यानी आज युवराज का राज्याभिषेक होने जा रहा था । अतः घर-घर मंगल वाद्य एव गीत लहरियां गूंज रही थीं । बड़े उल्लासमय वातावरण के अन्दर शुभ मुहूर्त मे आनन्दसेन को चम्पानगरी का उत्तरदायित्व सौप दिया गया । महाराजा चन्द्रसेन की वैराग्य भावना अब द्रुतगति से हिलौरें ले रही थी । वे संत महात्माओं का इन्तजार कर रहे थे ।

एकदा वे धर्म जागरण करते हुए पिछली रात्रि के समय चिन्तन करने लगे व वह नगर, पुर पाटन धन्य है जहा सर्वज्ञ सर्वदर्शी अरिहन्त अथवा भावितात्मा अणगार भगवन्तो का विचरण हो रहा हो । वे राजा, मन्त्री, सेठ, साहूकार, तलवार माडविक धन्य है जो वीतराग वाणी को अपने जीवन में साकार रूप देते हो । यदि अर्हत महाप्रभु या उनके आज्ञानुवर्ती अणगार भगवन्तो का यहा पदार्पण हो जाय तो मैं भी ससार से उपरत हो, उनकी चरण शरण कर वीतराग मार्ग का अनुसरण करू ।

सूर्योदय के पश्चात् वे दैनिक कार्य से निवृत्त हुए ही थे कि उद्यान रक्षक द्वारा आर्य जिनसेन का सपरिवार चम्पानगरी के उद्यान मे पदार्पण के समाचार मिले । महाराजा को अत्यन्त आह्लाद हुआ ।

महाराजा सपरिवार आर्य जिनसेन के दर्शनार्थ पहुचे । नव अभिषिक्त महाराजा आनन्दसेन भी आर्य जिनसेन के चरणो मे सभक्ति पहुंच पर्युपासना करने लगे ।

आर्य जिनसेन ने मानव जीवन को क्षण भगुर बतलाते हुए कहा - हे भव्य प्राणियो, यह मानव जीवन अत्यन्त दुर्लभता से मिलता है । अनन्त-अनन्त पुण्य कर्मो के सयोग से प्राप्त यह मानव का चोला भी कुछ अवधि के लिए ही है । जैसे ओस का बिन्दु कुशाग्र पर कुछ समय का ही मेहमान होता है, वैसे ही यह मानव जीवन सावधि तक ही टिकने वाला है । समय रहते जो सावधान हो जाता है, विषय भोगो से उपरत हो जाता है उसी का जीवन धन्य-धन्य होता है । अन्यथा यह आत्मा इस ससार समुद्र मे पुन. निमज्जित हो जाती है । अत भव्य प्राणियो को पानी के पहले पाल बाधने की उक्ति को चरितार्थ कर बुद्धिमानी का परिचय देना चाहिये आदि ।

आर्य जिनसेन का उद्बोधन क्या था मानो महाराजा चन्द्रसेन की भावना का ही प्रवाह चल रहा हो । प्रवचन की परिसमाप्ति के साथ ही महाराजा उठ खड़े हुए, और कहने लगे—भगवान् ! ‘मै” इस ससार सागर की विषयरूपी आग मे झुलसता रहा हूं । मै इस आग से बचने के लिए वीतराग वाणी रूपी सलील का आश्रय हू । इसलिए मुझे अपनी शरण मे लेकर कृतार्थ करे ।

महाराजा के साथ तेरहों महारानियां एवं राजकुमारी चम्पक-माला एवं अन्य कई मन्त्री, सेठ, सभासद आदि जैन भागवती प्रव्रज्या ग्राहण करने को तत्परित हुए ।

महाराजा आनन्दसेन ने सबका भव्य निष्क्रमण महोत्सव मनाया । हजारो हजार मानवों से परिवृत हो, महाराजा चन्द्रसेन आदि मुमुक्षु महिलाओ को आर्य जिनसेन ने यथाविधि सबको सर्व विरति चारित्र स्वीकार करवाया । नवदीक्षित श्रमणियो को महाश्र-मणी सोमवती ने अणगार धर्म की शिक्षा दी ।

चारित्र स्वीकार कर गुरुचरणो में रहकर उसका यथा विधि पालन कर महाराजा चन्द्रसेन आदि ने जीवन का श्रेष्ठ विकास सम्पादित किया ।

महाराजा आनन्दसेन ने श्रावक व्रतों को स्वीकार करते हुए पूछा भते ! मै श्रमण जीवन स्वीकार कर पाऊगा या नही ?

हे अखण्ड सोभागी ! तुम इस जीवन में चारित्र धर्म स्वीकार करोगे पर अभी तुम्हारे कुछ भोगावली कर्मो का उदय भाव चल रहा है । अतः वे जव क्षय हो जायेगे तो शीलावती की कुक्षी से जन्म लेने वाले कुमार रत्नों का यथायोग्य लालन-पालन कर उनका राज्या-भिषेक कर तुम दोनो वीतरागता की ओर कदम वढ़ाओगे और यथा समय अपने जीवन मे चरम लक्ष्य प्राप्त करोगे ।

❀ ❀ ❀